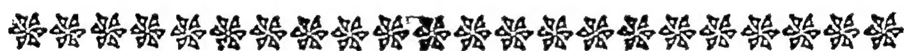


प्रकाशकः —

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार ब्यावर (राजस्थान)



श्री मोतीलाल शर्मा के प्रबन्ध से गीता आर्ट प्रि० प्रेस, ब्यावर में मुद्रित।



युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥



सहायक गण की शुभ नामावली

(प्रथम संस्करणकी)



दिवाकर दिव्य ज्योति के नाम से स्व० श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली व्याख्यान सीरिज रूप में प्रकाशित कराने के लिए निम्नलिखित महानुभाओं ने सहायता देकर अपूर्व लाभ लिया, इसके लिए सहर्ष धन्यवाद हैं:—

रुपये:—

१००१) श्री श्वे स्था जैन महावीर मंडल, उदयपुर

५०१) श्रीमान् सेठ सिरेमलजी नन्दलालजी पितलिया, सिहोर की छावनी

५००) श्रीमान् सेठ गुलराजजी पूनमचन्दजी, मदनगंज

३००) ,, ,, चौथमलजी सुराणा नाथद्वारा

२५०) ,, ,, कुँवर मदनलालजी संचेती, ब्यावर

२५०) ,, ,, सेठ जीवराजजी कोठारी, नसीराबाद

२००) ,, ,, शंभूमलजी गंगारामजी बंबई फर्म की तरफ से श्रीमान् केवलचंदजी सा० चौपड़ा, सोजत सीटी

२०१) श्रीमान् सेठ साहबलालजी मेहता फर्म० गुलाबचन्द भंवरलाल मेहता धानमन्डी उदयपुर

१५१) श्रीमान् सेठ चन्दनमलजी मरलेचा शूलाबाजार,
बैंगलोर केन्ट

१५१) श्रीमान् सेठ गेन्दालालजी मोतीलालजी सा० पोरवाड़,
इन्दौर

१५१) श्रीमान् सेठ हजारीमलजी अम्बालालजी सगरावत
मु० निम्बाहेड़ा (राज०)

१५०) श्रीमान् सेठ राजमलजी नन्दलालजी, भुसावल

१५०) „ „ हस्तीमलजी जेठमलजी, जोधपुर

१२५) „ जिनगर अमरचंद्रजी इन्दरमलजी गौतमचन्द जैन,
गंगापुर

१२५) श्रीमान् सेठ कस्तूरचन्दजी पूनमचन्दजी जैन „

१२५) „ ठेकेदार तोलारामजी भंवरलालजी, उदयपुर

१२५) „ „ धनराजजी फतहलालजी, „

१२१) „ सेठ माणकचंदजी छगनलालजी गोठी जयपुर

१२१) श्रीमती सोभाग्यवती तारादेवी बाई कोटेचा
फर्म श्रीमान् सेठ मांगीलालजी केसरीचन्दजी कोटेचा,
भूसावल (पू० खा०)

१०१) श्रीमान् सेठ रंगलालजी झामड़ नादूँरा वालों की धर्मपत्नी
श्रीमती सोभाग्यवती तुलसाबाई (बरार)

१०१) श्रीमान् जिनगर तेजमलजी रोशनलालजी गंगापुर (मेवाड़)

१०१) „ पन्नालालजी बाफणा की पूज्य मातेश्वरी मोहनबाई
उदयपुर

१०१) श्रीमान् सेठ मोतीचन्दजी रतनचन्दजी चोरड़िया
मु० कटंगी (बालाघाट)

१०१) श्रीमान् सेठ गणेशलालजी भँवरलालजी पंसारी कोटा

१०१) ,, ,, अमोलकचन्दजी जैन

फर्म रखबचन्दजी लालचन्दजी जैन,

रामगन्जमन्डी

१०१) ,, ,, जसराजजी मोहनलालजी वोहरा

मु० सुरापुर बेंडर

१०१) ,, ,, सूरजमलजी सा० वोथरा

फर्म कन्हैयालालजी इन्दरमलजी जैन

मु० रामगंजमन्डी

१००) श्रीमान् सेठ लालचंदजी पुखराजजी मुणोत सिकंदराबाद

१००) ,, प्राणलालजी सा. सांखला, उदयपुर

५१) ,, जिनधर छोगालालजी, गंगापुर (मेवाड़)



दो शब्द



शास्त्रों में द्रव्य और भाव भेद से ज्योति दो प्रकार की बतलाई गई है। द्रव्य ज्योति से सूर्य,चन्द्र, बिजली दीप और अग्नि आदि का प्रकाश संगृहीत होता है। और भाव ज्योति आत्मा में अवस्थित दिव्य ज्ञान विभूति का संसूचक है।

द्रव्य ज्योति द्रव्य अन्धकार के विनाश का कारण बनती है जब कि भाव ज्योति भाव अंधकार के विलय का। द्रव्यान्धकार के विनष्ट होने से पदार्थ दृष्टिगोचर होने लगते है कान्तिपूर्ण बन जाते हैं एवं जगमगा उठते हैं। तथा पथिक अपने गन्तव्य पथ पर सुविधा पूर्वक गमन कर सकता है और अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इसी भांति भावान्धकार के विलय से अन्तर्जगत की पवित्रता का प्रादुर्भाव होता है, मानस शान्ति पथ का पथिक बनता है, क्रोध, मान, माया और लोभादि आत्म शत्रुओं का दमन होना आरंभ हो जाता है, वास्तविकता सम्मुख आ खड़ी होती है, हृदयसिंहासन पर शुक्ल ध्यान का देव विराजमान हो जाता है और अन्तरात्मा कैवल्य के आलोक से जगमगा उठती है।

धार्मिक उत्क्रान्ति का अन्तिम लक्ष्य है-भाव ज्योति की पराकाष्ठा को उपलब्ध करना। इसी की उपलब्धि में जीवन की परिपूर्णता है, सफलता है एवं कृतकृत्यता है। इसी की प्राप्ति से

हमारे पतित पावन तीर्थङ्कर देवों ने संसार को सन्मार्ग दिखाया। आधि, व्याधि और उपाधि के त्रिताप से सन्तप्त जगत् के अन्तर स्वास्थ्य को सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः, के दिव्य औषध से सुरक्षित रखा और इसी दिव्य ज्योति से वे "तिण्णाणं तारयाणं" एवं "बुद्धाणं बोहयाणं" इत्यादि विशेषणों से संसार में विख्यात हुए।

जीवन-निर्माण के लिये आवश्यकता है-भाव ज्योति को उपलब्ध करने की। भावज्योति को सम्प्राप्त किये बिना अन्तर्जगत का विकास कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव है। इस को प्राप्त करने के अनन्तर ही पुरुष संसार में महापुरुष का महान् एवं पावन पद पा सका है, और आध्यात्मिक संसार का नेतृत्व भी इसी के बल पर ही निभाने में वह सफल हो पाया है। अतः सुखाभिलाषी एवं कल्याणाभिलाषी मानव को भाव ज्योति को अधिगत करने के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये। और उसको (भाव ज्योति को) प्राप्त कराने वाली योग्य सामग्री को अपनाने में भी बड़ी तत्परता एवं चतुरत्ता से काम लेना चाहिये। जिससे आत्मा भविष्य, उज्ज्वल, समुज्ज्वल एवं अत्युज्ज्वल बनाया जा सके। अस्तु।

प्रस्तुत दिवाकर-दिव्य-ज्योति नाम की जो पुस्तक आपके कर कमलों में है, इस में ऐसे ही विशिष्ट प्रवचनों का संग्रह है, जो भावज्योति के स्वरूप को अवगत कराने में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। इस पुस्तक में परम्परा से भावज्योति का क्या स्वरूप है? उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है,? इत्यादि प्रश्नों का समाधान बड़ी बुद्धिमत्ता एवं सुन्दरता से किया गया है और वह भी सीधी सादी भाषा में। विषय गंभीर होने पर उसे सरल शब्दों

में अभिव्यक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है, जो कि प्रवचनकार की विशिष्टता एवं योग्यता का परिचायक है।

प्रवचन कार हैं – स्वर्गीय जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी महाराज। जैन दिवाकरजी जैन समाज के विराट कार्यकर्त्ता एवं सफल व्याख्याता मुनिवर रहे हैं। आपके प्रवचन अत्यन्त रोचक सरस एवं मधुर हुआ करते थे। आपकी वाणी में एक विलक्षण ओज रहता था यही कारण है कि आपके प्रवचनों ने राजमहलों से लेकर श्रमजीवियों के कुटीरों तक सम्मान पाया है। और शान्ति के अग्रदूत अहिंसा धर्म का सर्वत्र प्रचार एवं प्रसार किया।

सहमंत्री मुनि श्री प्यारचंदजी को मैं धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने श्री दिवाकरजी की दिव्य ज्योति को दिवाकर-दिव्य ज्योति के रूप में लाकर बुद्धिशुद्ध एवं स्तुत्य प्रयास किया है जिससे भाव ज्योति के जिज्ञासु एव अभिलाषुकों को युग युगान्तर तक दिव्य प्रकाश मिलता रहेगा।

अन्त में मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि दिवाकर दिव्य ज्योति के पवित्र स्वाध्याय से अपने हृदय मंदिर को उज्ज्वल एवं समुज्ज्वल बनाते हुए दूसरों को भी इससे प्रतिलाभित करें जिससे यह प्रवचन संग्रह अधिकाधिक हितावह और लोक भोग्य बन सके।

जैन स्थानक लुधियाना]
ता० ५-८-५२]

आचार्य आत्माराम

प्रेषक – गुज्जरमल बलवन्तराय जैन
चौडाबाजार लुधियाना



विषयानुक्रमणिका





आध्यात्मिक औषध

()—()—()—()

स्तुतिः—

छत्र त्रयं तव विभाति शशांककान्त—
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि — हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

जब आदि तीर्थंकर भगवान् नाभिनन्दन ऋषभदेवजी समवसरण में विराजमान होते थे, उपदेश देते थे, देवों और मनुष्यों

की परिषद् भरी हुई होती थी, भगवान् अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिला पर विराजमान होते थे तब उनके सिर पर तीन छत्र होते थे। तीनों छत्र एक दूसरे के ऊपर-नीचे होते थे और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं प्रकाशमान थे। सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने वाली गर्मी को वे रोक देते थे। मोतियों के समूह की जो झालरें उन छत्रों में लगी हुई थीं, उनसे उनकी शोभा में अत्यन्त वृद्धि हो गई थी। वे तीन छत्र भगवान् के त्रिलोकीनाथपन को सूचित करते थे। जो सिर्फ एक लोक या एक लोक के किसी एक भाग पर राज्य करता है, उसके सिर पर एक छत्र होता है, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि राजाओं के एक ही छत्र हुआ करता है किन्तु तीर्थङ्कर महाराज के सिर पर तीन अनुपम छत्र रहते हैं, इससे सूचित होता है कि भगवान् तीर्थङ्कर ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक एवं अधोलोक तीनों लोकों के नाथ हैं।

"योगक्षेमकरो नाथ." अर्थात् जो अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा दे और प्राप्त वस्तु का वियोग न होने दे, उसे नाथ कहते हैं। तीर्थङ्कर महाप्रभु पहले कभी न पाये हुए रत्नत्रय रूप धर्म को प्राप्त करवाने वाले हैं और जिन्हें पहले प्राप्त हैं, उनके रक्षक हैं। इस प्रकार योग और क्षेम के कर्त्ता होने से प्रभु नाथ हैं।

यहां 'तीन लोक के नाथ' का अर्थ है 'तीन लोक में विद्यमान प्राणियों के नाथ।' जैसे हिन्दुस्तान का अर्थ हिन्दुस्तान के निवासी लिया जाता है, उसी प्रकार यहां लक्षणा वृत्ति से लोक का अर्थ लोक में स्थित जीव ही समझना चाहिये। कहने का आशय यह है कि भगवान् तीर्थङ्कर तीन लोक के समस्त प्राणियों के नाथ हैं।

आशंका की जा सकती है कि जगत् के सभी जीव प्रभु को प्रभु के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। बहुत-से जीव नासमझ हैं और जो समझदार हैं उनमें भी मिथ्यात्व की प्रबलता के कारण अनेक लोग भगवान् को अपना नाथ नहीं मानते। ऐसी स्थिति में भगवान् को तीन लोक का नाथ कैसे कहा जा सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भगवान् वीतराग हैं। उन्हें किसी से प्रीति और किसी से अप्रीति नहीं है। एकेन्द्रिय से लगाकर पंचेन्द्रिय तक, प्रत्येक जीव पर उनका समभाव है। भगवान् जो उपदेश देते हैं, वह भी समस्त जीवों के हित के लिए ही देते हैं अतएव वे सभी के नाथ हैं। ऐसे ऋषभदेव भगवान् को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भगवान् तीन छत्र के धारी क्यों हुए ? तीन जगत् के नाथ कैसे हुए ? इसलिए कि उन्होंने तीन बातें धारण की हैं—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यकचारित्र। इस रत्नत्रय को धारण करने वाला लोकत्रय का नाथ बनता है। जो पूर्ण रूप से रत्नत्रय को धारण करते हैं, वे तीन लोक के परिपूर्ण नाथ होते हैं, अर्थात् अविकल रूप से समस्त जीवों के स्वामी होते हैं और जो आंशिक रूप में रत्नत्रय को धारण करते हैं वे आंशिक रूप में ही नाथ कहलाते हैं।

श्रीस्थानांगसूत्र में जगत् का परमेश्वर बनने की तरकीब बतलाई है कि यथार्थ ज्ञान, शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध चारित्र के द्वारा ही आत्मा अपनी समस्त मलिनता को दूर करके, पूर्ण निर्मलता प्राप्त करके जगत का नाथ बन सकता है।

सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान से विचार की शुद्धि होती है और सम्यकचारित्र से आचार पवित्र हो जाता है। इस प्रकार जब आचार और विचार दोनों पवित्र एवं उच्च कोटि के हो जाते हैं, तो जीवन ऊंचा उठता चला जाता है और अन्त में आत्मा एकदम निर्मल हो जाती है।

भगवान् ऋषभदेवजी भी अपनी ही कोटि के सामान्य मनुष्य थे। जैसे अपनी आत्मा ने चौरासी में भटकते-भटकते मनुष्य-जन्म पाया है, उसी प्रकार उनकी आत्मा ने भी पाया था। उन्हें भी चौरासी के चक्कर में भटकना पड़ा था। जैसी व्यवस्था जगत् के जीव भोगते हैं, वैसी ही उन्होंने भी भोगी थी। प्रकृति के नियम सब के लिए समान रूप लागू पड़ते हैं। चाहे कोई गरीब हो या अमीर हो, राजा हो या रंक हो, प्रकृति किसी के साथ पक्षपात नहीं करती। वह सब के लिए एक रस है-एक ही रूप है।

बुखार के कारण उपस्थित होने पर अमीर क्या और गरीब क्या, सब को एक-सरीखा बुखार चढ़ता। प्रकृति यह नहीं देखती कि राजा को कुछ और तरह का बुखार चढ़ाया जाय सेठ-साहूकारों को कुछ भिन्न प्रकार का चढ़ाया जाय और गरीबों को कुछ और ही प्रकार का चढ़ाया जाय। कोई फर्क नही होता है। किसी गरीब की पत्नी को प्रसूति के समय जैसी तकलीफ होती है वैसी ही तकलीफ राजा की रानी और सेठानी को भी होती है। उस तकलीफ में कोई फर्क नहीं होता है। वह तो समान भाव से सभी को भोगनी पड़ती है।

यह संसारी जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की पर्याय में भ्रमण कर रहा है । एकेन्द्रिय में भी कभी पृथ्वीकाय में, कभी जलकाय में, कभी वायुकाय में, कभी अग्निकाय में और कभी वनस्पतिकाय में जन्म ले-लेकर मरता है। इन प्रत्येक कायों में असंख्यात-असंख्यात काल व्यतीत कर देता है। फिर पृथ्वी भी तो एक तरह की नहीं, छत्तीस प्रकार की होती है, जैसे-हीरा, पन्ना, माणक, आदि-आदि । इसी प्रकार पानी भी तरह-तरह का होता है। हरी वनस्पतियों की तो बात ही न पूछो। चौमासे में अनेक प्रकार का घास-फुस आदि उग आता है। इसी तरह वायुकाय आदि में भी बहुत-से भेद-प्रभेद हैं।

केवली भगवान् ने सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अपकाय, सात लाख अग्निकाय और सात लाख वायुकाय, इस प्रकार चार कायों के कुल अट्ठाइस लाख भेद फर्माये हैं । इनमें दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय के और चौदह लाख साधारण वनस्पति-काय के भेद और मिला दिये जाएँ तो कुल बावन लाख एकेन्द्रिय-योनि के भेद हैं ।

आलू, रतालू, गाजर, मूली आदि जमीन के भीतर होने वाली सब्जी साधारण वनस्पति कहलाती है। जमीन के ऊपर की लीलोतरी भी कोई-कोई साधारण वनस्पति हो सकती है परन्तु जमीन के भीतर होने वाली तो साधारण ही होती है।

साधारण वनस्पति का अर्थ यह है कि उसमें अनन्तानन्त जीव होते हैं। एक ही शरीर को अपना आश्रय बनाकर अनन्त जीव रहते हैं। उन सब जीवों का आहार और श्वासोच्छ्वास

साधारण (कॉमन) होता है। एक मृत्यु होने पर सब की मृत्यु हो जाती है। हम लोगों को एक श्वास लेने में जितना समय लगता है, उतने थोड़े से समय में वे अठारह वार जन्म-मरण कर लेते हैं और महान् वेदना का अनुभव करते हैं।

जो वनस्पति तो हो किन्तु जिसके एक शरीर का स्वामी एक ही हो, उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

लट आदि द्वीन्द्रिय जीवों की दो लाख, चिउंटी आदि त्रीन्द्रिय जीवों की दो लाख, मक्खी मच्छर आदि चौइन्द्रिय जीवों की दो लाख, इस प्रकार छह लाख जीव योनियों को और मिला देने से ५८ लाख जीव योनियाँ होती हैं।

अव रह गये पचेन्द्रियजीव। वह चार प्रकार के हैं—देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारक। देव, मनुष्य और नारक सब के सब पंचेन्द्रिय ही होते हैं और तिर्यञ्च सभी प्रकार के होते हैं। इनमें देवों की चार लाख, नारकों की चार लाख, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख जीव योनियाँ हैं। इन सब को पूर्वोक्त ५८ लाख में जोड़ देने से समस्त संसारी जीवों की चौरासी लाख योनियाँ होती हैं।

इसी को चौरासी का चक्कर कहते हैं। संसारी जीव इस चौरासी के चक्कर में पड़ा हुआ है। एक एक जीव योनि में अनन्त अनन्त वार जन्म-मरण कर चुका है। फिर भी उसका अन्त नहीं आया है। रत्नत्रय की प्राप्ति जब तक न हो जाय तब तक अन्त आता भी नहीं है।

भाइयो ! जिस प्रकार और-और जीवों ने अनन्त-अनन्त वार चौरासी में चक्कर लगाये हैं, उसी प्रकार भगवान् ऋषभदेवजी

की आत्मा ने भी चक्कर लगाये थे और आवागमन किया था। लेकिन रत्नत्रय को प्राप्त करके उन्होंने अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया। जैनधर्म की बड़ी-बड़ी विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि वह उत्कर्षवादी धर्म है। वह आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग बतलाता है। जैनधर्म का आश्रय लेने से साधारण से साधारण और नीचे गिरा हुआ आत्मा भी परमेश्वर और तीन लोक का नाथ बन जाता है। दूसरे धर्म जब परमात्मा को भी अवतार लेकर आत्मा बन जाने की बात कहते हैं अथवा परमात्मा को एक मात्र सत्ता मान कर किसी भी आत्मा का परमात्मा न हो सकना स्वीकार करते हैं, तब जैनधर्म आत्मा को परमात्मा होने का संदेश सुनाता है। यह संदेश कितना प्रेरक और उद्बोधक है। आचार्य महाराज ने भक्तामर-स्तोत्र में ही कहा है—

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ,
भूतेगुणैभु वि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननुतेन किंवा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति?

अर्थात्—हे जगत् के भूषण। हे जगत् के जीवों के नाथ। जो आपकी स्तुति करते हैं, वे आपके समान ही हो जाते है। यह कोई अद्भुत बात नहीं है। इसमें आश्चर्य ही क्या है? अरे, ऐसा स्वामी किस काम का जो अपने सेवक को अनन्य भाव से सेवा करने पर भी अपने समान न बना ले?

जैन धर्म की यह महत्ता है कि वह प्रत्येक आत्मा को सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचाता है। तीर्थङ्कर देव अपने भक्त को

अनन्त काल तक भक्त ही नहीं बनाये रहते वरन् अपने समान बना लेते है। इसलिए हे भव्य जीव! तू अनन्य भाव से, सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ ऋषभदेव भगवान् की शरण में जा। उनके समान अन्य कोई भी देव जगत् में कल्याणकारी नहीं है।

मेरे कथन का आशय यह समझना ठीक नहीं होगा कि तुम्हे कुछ भी करने-धरने की आवश्यकता नहीं है; तुम मौज करो, मस्त पडे रहो और भगवान् आकर तुम्हे उठा कर मोक्ष में ले जाएँगे! भगवान् शास्त्र या धर्म तुम्हारी मुक्ति में निमित्त कारण वन सकते है, परन्तु उपादान कारण तो तुम स्वयं ही रहोगे। 'परो ददातीति विमुञ्चशेमुर्पाम्' अर्थात् इस खयाल को छोड़ दो कि दूसरा तुम्हे कुछ भी दे सकता है। दूसरों से कुछ भी पाने की आशा रखना एक प्रकार की दीनता है और जो जैन धर्म त्रिलोकी-नाथ बनने की प्रेरणा देता है, वह दीनता धारण करने का आदेश कैसे दे सकता है? जैन धर्म कहता है कि तुम स्वयं अपनी मुक्ति के कर्ता हो, सिर्फ भगवान् के पथ का अनुसरण करते हुए चलो। स्वयं तीर्थङ्कर देव जिस मार्ग पर चल कर अनन्त सुख और अनन्त शक्ति के स्वामी बने हैं, वही मार्ग उन्होंने जगत् के जीवों की करुणा से प्रेरित होकर जगत् को बतलाया है। उस मार्ग पर चलने से कोई भी आत्मा उस सुख और शक्ति का अधीश्वर बन सकता है।

भाइयों! तुम अपने को महाभाग्यशाली समझो कि तुम्हें कुछ परम्परा से ही वीतराग प्रभु का मार्ग मिल गया है। इस मार्ग को प्राप्त करके और इसके महत्त्व को जान करके भी अगर आगे कदम न बढ़ाओ तो इसमे किसका दोष है? सावधान होओ,

जागृत होओ, आगे बढ़ो और मुक्ति के महामंगलधाम के द्वार में प्रवेश करो। सम्यग्दर्शन को सुदृढ़ बनाओ, सम्यग्ज्ञान के द्वारा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक करो और फिर कर्त्तव्य का आचरण करो, तो तुम्हारा निस्तार हो जायगा। यह जीवन धन्य बन जायगा और अनादि काल से व्यथा पहुंचाने वाली बीमारियां सदा के लिए दूर हो जाएंगी।

सम्यग्दर्शन से जन्म, जरा, मरण आदि नये रोग नहीं बढ़ते हैं। सम्यग्दर्शन की ऐसी महिमा है कि उसके प्राप्त होते ही नरकगति और तिर्यञ्चगति के द्वार पर ताला लग जाता है, अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव नरक गति और तिर्यञ्चगति में नहीं जाता है। सम्यग्ज्ञान पुराने रोगों की चिकित्सा करता है और नये रोगों को भी रोकथाम करता है। सम्यक् चारित्र समस्त रोगों को दूर कर देता है और इतना दूर कर देता है कि फिर भविष्य में कभी कोई भी रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। भगवान् ऋषभदेव इन्हीं तीन बातों को धारण करके अलौकिक पदवी को प्राप्त कर सके थे। तुम्हारी मर्जी हो तो तुम भी इन्हें धारण कर सकते हो।

भाइयो! यह विचार मत करो कि मैं ओसवाल हूं, जाट हूं गूजर हूं अथवा माली हूं। किसी भी जाती में उत्पन्न हुए होओ, तुम्हारे लिए सिद्धि का द्वार खुला हुआ है। किसी भी जाती का मनुष्य रत्नत्रय की आराधना कर सकता है। अगर उसमें उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह तीन लोक का नाथ बन जायगा। विश्वविद्यालय के नियम के अनुसार किसी भी जाति का व्यक्ति क्यों न हो उचित पढ़ाई करके और उसमें उत्तीर्णता प्राप्त करके पदवी का अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार विद्या

में जाति का कोई सवाल नहीं है। धन के भी जात-बिरादरी का कोई प्रश्न नहीं है। एक ढेड़नी ईसाई बन गई और फिर पढ़-लिख कर डाक्टरनी बन गई तो बड़े-बड़े तिलक-छापा लगाने वाले लोग भी इलाज कराने के लिए उसके पास आने लगे। विद्या बड़ी चीज है। वह नीच समझी जाने वाली जाति में उत्पन्न हुए व्यक्ति को भी आदरणीय बना देती है। हिटलर किस जाती का था ? वह जाति से लुहार था मगर उसकी विद्या-बुद्धि ने उसे जर्मनी जैसे प्रबल और महान् राष्ट्र का सर्वेसर्वा बना दिया। उसने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करली कि एक बार तो सारे संसार में उसके नाम की धूम मच गई थी। समस्त संसार उसकी शक्ति के सामने काँप उठा था। आज भारतीय मंत्रिमण्डल में जगजीवन-राम कौन है ? मनु का पार्ट अदा करने वाले कानून मंत्री कौन है ? ये उसी जाति में उत्पन्न हुए हैं जिन्हें जन साधारण निम्न कोटि की समझते हैं। मगर विद्या के बल पर आज वे प्रतिष्ठित पद पर आसीन हैं। संस्कारों की दृष्टि से वे किसी से भी हीन नहीं हैं। मतलब यह है कि व्यक्ति अगर सद्गुण प्राप्त कर लेता है तो वह आदर का पात्र बनता ही है। जाति उसके मार्ग में आड़ी नहीं आती और न आनी ही चाहिए। भारत के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः।

अर्थात् वास्तव में गुण ही सत्कार के पात्र होते हैं, न वेश मात्र से कोई सत्कार का पात्र बनता है और न उम्र के कारण ही। नाटक में राजा का अभिनय करने वाला अभिनेता राजा का वेष धारण करता है तो क्या वह राजा की तरह माननीय हो सकता

है ? यही बात उम्र के संबंध में है। निर्गुण व्यक्ति उम्र से वृद्ध होने पर भी आदर नहीं पाता।

जैनधर्म के अनुसार विद्या और धर्म के कोई जाति नहीं है। जाति का संबंध शरीर के साथ हो सकता है, पर आत्मा की कोई जाति नहीं होती। जाति नाशशील है और आत्मा अविनाशी है। जाति कल्पित वस्तु है और भव-भव में बदलती रहती है। अनादिकाल से संसार में भ्रमण करते हुए प्रत्येक जीव ने अनन्त अनन्त बार समस्त जातियों में जन्म लिया है। अतएव धर्म और विद्या के लिए जाति का कोई महत्त्व नहीं है।

अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों में भी बड़े-बड़े उच्च आत्मा ऋषि-मुनि हो चुके है। ऋषिवर हरिकेशी को कौन नहीं जानता ? उनका जन्म चाण्डाल कुल में हुआ था। मेतार्य मुनि जैसे महात्मा भी उच्च जाति के नहीं थे। गौतम स्वामी सरीखे ब्राह्मण अगर भगवान् महावीर स्वामी के चेले बन सकते है और उन्हें संघ में स्थान मिल सकता है तो हरिकेशी महाराज भी भगवान् के शिष्य हो सकते हैं और उन्हें भी जैनसघ में वही स्थान मिल सकता है। जैनधर्म ने सदैव जाति मद को हेय समझा है और सब जातियों के लिए अपना द्वार खुला रक्खा है। धर्म के विशाल प्रांगण में सभी को समान स्थान प्राप्त है। धर्म कल्पवृक्ष के समान है वह कल्पवृक्ष की भांति सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। उसकी शीतल छाया अगर पतितों और अधमो को शांति न दे सकी तो उसकी क्या उपयोगिता है ? अतएव धर्म सभी को समान रूप से शांति प्रदान करता है। अतएव भाइयो ! चाहे किसी भी जाति में और किसी-भी कुल में तुम्हारा जन्म क्यों न हुआ हो, तुम्हें धर्म-

साधना करने का वही अधिकार प्राप्त है जो दूसरों को है। अतः संकोच मत करो, झिझक मत लाओ। उत्साह और हिम्मत के साथ तीर्थङ्कर देव के चरण-शरण में आओ। तुम्हारे कल्याण में संसार की कोई भी शक्ति बाधा नहीं डाल सकेगी। कल्याण का पथ सब के लिये खुला है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि इस नगर की सड़कें सब के लिये खुली हैं।

धर्म के मार्ग पर चलने का अर्थ है—रत्नत्रय को धारण करना। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करने से ही जन्म, जरा मरण रूप रोगों का विनाश होता है। शारीरिक बीमारियाँ तीन प्रकार की गिनी जाती हैं—वातज, पित्तज और कफज बीमारी। इन बीमारियों की दवाएँ भी तीन मानी जाती हैं—हरड़, बहेड़ा और आँवला:—

श्रीजिन वाणी रे २ तू सुन थारी सुधरे जिन्दगानीरे ।।टे।।
त्रिफला त्रिदोष हरे श्रद्धा अघमेल हटानी रे,
सूचि सरस्वति भागवती विद्या वर दानी रे।

कहने का आशय यह है कि जैसे वात पित्त और कफ रूप त्रिदोष का त्रिफला से नाश होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप रत्नत्रय से जन्म, जरा, मरण रूप, भव-रोगों का नाश होता है।

दूसरे प्रकार से देखें तो विदित होता है कि मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयम रूप तीन दोष भव-भ्रमण के प्रधान कारण हैं। दूसरे कारण भी हो सकते हैं, किन्तु उन सब का इन तीन कारणों में ही समावेश हो जाता है। यह तीन दोष क्रमशः

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से उत्पन्न होते हैं। इनको नष्ट करने के लिए रत्नत्रय रूप त्रिफला अमोघ है जहां सम्यग्दर्शन का सेवन किया कि मिथ्यादर्शन हटा और मिथ्यादर्शन के हटते ही मिथ्यात्व हट जाता है। मिथ्यात्व के हटते ही भव भ्रमण की अनन्तता हट जाती है—संसार परीत-सीमित-हो जाता है। अर्थात् एक प्रकार की ऐसी मर्यादा बंध जाती है कि फिर अर्ध पुद्गलपरावर्त्तन से अधिक इस जीव को संसार में भ्रमण नहीं करना पड़ता।

इतना ही नहीं, सम्यग्दर्शन के प्रभाव से, जैसा कि अभी कहा था, नरकगति, तिर्यञ्चगति, स्थावरयोनि, विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय और चौइन्द्रिय पर्याय) भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों की गति रूप संसार का भी अन्त आ जाता है। सम्यग्दृष्टि इन सब पर्यायों में उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार देखा जाय तो सम्यग्दर्शन की बड़ी भारी महिमा है। अकेले सम्यग्दर्शन का ही इतना महान् प्रभाव है।

सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र मुक्ति को और भी अधिक नजदीक ला देते हैं सम्ग्ज्ञान के उत्पन्न होते ही अज्ञान भाग जाता है। और जब अज्ञान भाग जाता है तो जीव अपने शुद्ध और असली स्वरूप को पहचानने लगता है। उसे मालूम हो जाता है कि मैं वास्तव में कौन हूं? मेरा असली स्वरूप क्या है? यही नहीं, जीव जब अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है तो उसकी अपने स्वरूप में ही रमण करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। जीव का ज्योतिमय, चेतनामय स्वभाव इतना आकर्षक होता है कि ज्ञानीजन

उसमें रमण करता हुआ संसार के बड़े से बड़े सुखों को भी तुच्छ समझने लगते हैं। ज्ञानी पुरुषों को पौद्गलिक सुख फीके और निस्सार प्रतीत होते हैं। उसकी रुचि उनको भोगने की नहीं होती। यद्यपि वह गृहस्थावास में रहता है और सांसारिक कार्य भी करता है, फिर भी उनमें निमग्न नहीं होता, लिप्त नहीं होता। जल में कमल की भांति अलिप्त रह-कर ही वह दुनियादारी का व्यवहार करता है।

सम्यक्चारित्र के प्राप्त होने पर असंयम का नाश हो जाता है। असंयम के नष्ट होते ही अविरतिजन्य कर्मों का आश्रव होना बंद हो जाता है। ज्ञानी पुरुष या तो गृहस्थधर्म अर्थात् देश चारित्र का या मुनिधर्म अर्थात् सकल चारित्र का पालन करता हुआ अपनी आत्मा का कल्याण करता है। इस प्रकार रत्नत्रय रूप त्रिफला तीन प्रकार के भव-रोगों का अन्त करके आत्मा को अन्त में सदा के लिए नीरोग बना देता है।

अलबत्ता, बीमारी को पहचानने वाले और साथ ही दवा को भी समझने वाले कोई अच्छे वैद्य का संयोग मिलना आवश्यक है। जैसे शारीरिक रोगों को हटाने के लिए वैद्य की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक रोगों का अन्त करने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के अभाव में मनुष्य को पद-पद पर खतरा बना रहता है। रास्ता चूक जाने का भय रहता है। अतएव पथप्रदर्शन के लिए गुरु की आवश्यकता है। वैद्य की सहायता लिये बिना अगर आप अपने मन से ही औषध का सेवन करने लगेंगे तो संभव है कि कभी बीमारी को और भी अधिक बढ़ालें, इसी प्रकार गुरु के बिना जो आत्म-रोगों

को दूर करने का प्रयत्न करते हैं, वे स्वयं अगर विशिष्ट ज्ञानी न हों तो और भी अधिक रोगों के पात्र बन जाते हैं। अतएव कोई अच्छे वैद्यराज न मिलें तो काम नहीं चलता है।

आए वैद्य गुरुजी लेलो दवाई बिना फीस की।

भाइयो! वैद्य को तो फीस देनी पड़ती है किन्तु सद्गुरु रूपी वैद्य कोई फीस नहीं लेते! लेना उनका काम नहीं, देने के लिए ही हैं। वे अपना सर्वस्व त्याग कर इस पथ पर चले हैं तो अब उन्हें लेने की आवश्यकता ही नहीं है। उनकी समस्त शक्तियाँ आत्मकल्याण के लिये हैं और जगत् के कल्याण को उन्होंने आत्मकल्याण का साधन माना है।

सुगुरु रूपी सुवैद्य की दवाई सुखदाई है, अतः ले लो, जरा भी देर मत करो। नब्ज दिखा दो और अपने तन-मन का सच्चा-सच्चा हाल बतला दो। वे पर्दे वाली और बिना पर्दे की सभी नारियों को और नरों को समान अनुकम्पा भाव से दवा देते है। उनका दवाखाना दोपहर के समय भी खुला रहता है।

सत्संगत की शीशी के अन्दर दवा ज्ञानगुणकारी।
एक चित्त हो पिओ कान से सकल मिटे बीमारी॥

सत्संगति रूपी स्वच्छ शीशी में दया और ज्ञान रूपी दवा रहती है। एक तो जीव-रक्षा करना और एक ज्ञान रूपी दवा है। यह दोनों दवाइयाँ समस्त रोगों को दूर कर देती है। वैद्य की दवाई तो एक बीमारी को दूर करती है और वह दूर हुई बीमारी थोड़े ही दिनों में फिर भी आ जाती है, किन्तु सद्गुरु रूपी वैद्य की

दवाई समस्त रोगों का अचूक इलाज है और सदा के लिये रोगी को निरोग बना देती है। गुरु मुंह के द्वारा दवा नहीं खिलाते जिससे कि वह कड़वी लगे और उसे थूक दो। वे दवा को कान डाल देते हैं; जिससे वह सीधी उतर जाती है। परन्तु दवा का सेवन करने के लिये रोगी को एकाग्र चित्त अवश्य होना चाहिये अगर उसका चित्त एकाग्र न हुआ, चंचल बना रहा तो दवा असर नहीं करेगी।

ठिटिसकोप और थरमामीटर मति श्रुत ज्ञान लगावो।
साध्य असाध्य भवि अभवि भेद रोग का पावो रे ॥

सद्गुरु बिना जाँच-पड़ताल किये ही दवा नहीं देते। वे रोगी की शक्ति को जाँच लेते हैं और उस शक्ति के अनुसार ही दवा की मात्रा निर्धारित करते हैं। उनके पास मतिज्ञान का तितिस्कोप है और श्रुतज्ञान का थर्मामीटर है। अपने विशिष्ट मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से वे समझ लेते हैं कि यह प्राणी भव्य है या अभव्य है? अगर भव्य है तो मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि है अगर मिथ्यादृष्टि है तो साध्य है अथवा असाध्य है? अर्थात् इसका मिथ्यात्व-रोग उपदेश रूपी दवा से दूर हो सकता है या नहीं? यह सब जान कर वे सभी को उसके अनुरूप दवा देते हैं। जो असाध्य हो उसे भी जैसे डाक्टर दवा से वंचित नहीं रखते, उसी प्रकार सद्गुरु अभव्य को और असाध्य मिथ्यात्वी को भी दवा से वंचित नहीं रखते। वे परम दयालु हैं। प्राणी मात्र के परम कल्याण की पवित्र भावना से उनका अन्तःकरण विभूषित है। परोपकार को स्वोपकार मानते हैं। अतएव सभी को, बिना किसी भेदभाव के, वे दवा देते हैं।

भव्य जीव की आत्मा भीतर से स्वभावतः निर्मल होती है, उसे देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा होती है, परमात्मा का नाम सुहाता है, अभव्य जीव को परमात्मा राक्षस के समान और गुरु काले साँप के समान प्रतीत होते हैं। उसे धर्म का नाम नहीं सुहाता। कदाचित् उसके सामने कोई ईश्वर का नाम ले ले तो वह कहता है—क्यों फिजूल माथा-मोड़ कर रहे हो ? ईश्वर और धर्म की सब बातें ढोंग हैं। ये सब स्वार्थियों का कपट जाल है।

भव्य के मन में आता है कि मेरी आत्मा का संसार-सागर से कब निस्तार होगा ? परन्तु अभव्य के मन में ऐसी लहर आती ही नहीं है।

भव्य के दिल में दया होती है, जब कि अभव्य के हृदय में कठोरता होती है।

अगले जमाने का जिक्र है। एक राजा ने रात्रि के समय एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि ४९९ गजराजों की कतार चली आ रही है और उसके आगे-आगे एक पाड़ा चल रहा है। स्वप्न देखने के अनन्तर राजा की नींद खुल गई। वह विचार में पड़ गया कि यह बात क्या है ? आखिर इस स्वप्न का आशय क्या है ? गजराज पीछे और पाड़ा आगे है तो इसका क्या मतलब होना चाहिये ?

सुबह हुआ। रात्रि का स्वप्न उसके दिमाग में चक्कर काट ही रहा था। उसे संवाद मिला की अपने ५०० परिवार से एक आचार्य महाराज पधारे हैं। यह संवाद सुनकर राजा समझ गया कि इन पांच सौ मुनियों के नेता आचार्य पाड़े के समान होना

चाहिये और शेष ४९९ गजराज के समान धैर्यशाली भाग्यवान् साधु होने चाहिये। राजा उस दिन दर्शन करने नहीं गया। शाम को उसने कोयले के वारिक-वारिक टुकड़े करवाये और मुनिराजों के ठहरने के स्थान के वाहर विखरवा दिये। वह टुकड़े ऐसी जगह विखेरे गये थे जहाँ परठने की जगह थी। साथ ही राजा ने कुछ सिपाही वहाँ मुकर्रर कर दिये और उन्हें सूचना दे दी कि रात्रि के समय जो घटना घटे, उसे सावधानी के साथ देखते रहें और प्रातः-काल मुझे वतलावें।

रात्रि में एक साधु परठने के लिये आये किन्तु वहाँ काले-काले टुकड़ों को देखकर विना परठे ही वापिस लौट गये। उन्होंने दूसरे साधुओं से कहा-वहाँ वहुत मकोड़े हैं, अतः मैं वहाँ जाने में असमर्थ हूं। तदनन्तर दूसरे, और तीसरे साधु भी आये और वे भी कोयले के उन टुकड़ों को मकोड़ा समझकर वापिस लौट गये। इस प्रकार जव सभी साधु देख-देखकर लौट गये तो आचार्य ने कहा-तुम महामूढ़ लोग कुछ भी नहीं समझते हो। अव मैं जाता हूं। आखिर आचार्य गये। परठने की जगह पाँव पड़े तो चर्र-चर्र की आवाज हुई। आचार्य समझे-मकोड़े मर रहे हैं। उन्होंने भन्नाते हुए कहा-तुम साले यहाँ मरने को क्यों आये थे? जानते नहीं थे कि यहाँ साधुओं को आना पड़ेगा। इस प्रकार मकोड़ों को वहाँ अनधिकार प्रवेश की सजा देकर तथा परठ कर वे लौट गये।

सवेरा हुआ। राजा के सिपाहियों ने जो हाल देखा था, सव राजा के समक्ष निवेदन किया। राजा को अव निश्चय हो गया कि इस संघ का आचार्य इन ४९९ गजराजों के आगे पाड़े

के समान है। वह अभव्य है और दुर्गतिगामी है।

तात्पर्य यह है कि अभव्य के हृदय में करुणा का एक कण भी नहीं होता। वह पूरी तरह निर्दय होता है। वह ऊपर से भले ही नखरा करता हो कि कीड़ा मकोड़ा न मर जाय, मगर उसके अन्तःकरण में करुणा नहीं होती। ऐसा अभव्य जीव कदाचित् साधु बन जाय! और द्रव्य करनी करे तो देवलोक में भी चला जाय। मगर देव होने में कोई विशेषता नहीं है। देवता तो गधेडे और मगरमच्छ भी हो सकते हैं। देवता बन जाने से आत्मा का उत्थान नहीं हो जाता। संसार के बड़े-बड़े सुख और भोगोपभोग वहाँ मिल सकते हैं, मगर आत्मा का कल्याण वहाँ नहीं हो सकता। जैसे संसार में मनुष्य आदि की अवस्थाएँ हैं, उस प्रकार देव भी एक अवस्था है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो विदित होगा कि देवगति की अपेक्षा मनुष्यगति तो श्रेष्ठ है ही, तिर्यञ्चगति भी उससे श्रेष्ठ है। मनुष्य चौदहों गुणस्थानों को पाकर और फिर उससे ऊँचा उठ कर मुक्ति भी पा सकता है, तिर्यञ्च पाँचवे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है, जब कि देवता चौथे गुणस्थान से ऊपर नहीं उठ सकते। आध्यात्मिक दृष्टि से देवगति का कोई मूल्य नहीं, सब से बड़ी बात है। मुक्ति प्राप्त करना। अनन्त बार देवता बन जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ।

दया सत्य दत्त ब्रह्मचर्य है, निर्ममत्व फिर खास।
शम दम उपशम कई किसम की दवा हमारे पास॥

सद्गुरु कहते हैं— हमारे पास ज्ञान और दया (चारित्र) की जो दो मूल औषधियाँ हैं, उनसे हम अनेक दवाएँ तैयार कर

लेते हैं । दया पालना, असत्य भाषण न करना, अदत्तादान (चोरी) न करना, ब्रह्मचर्य पालना और परिग्रह अर्थात् ममता न रखना आदि-आदि दवाएँ देते हैं । काने, खोड़े अंधे, कोढ़ी आदि दिखाई देते हैं और जब वे दीनता दिखलाते हुए कहते हैं— महाराज, बुरी हालत है, क्या करें ? तब हम यही कहते है – दया पालो । अर्थात् दया पालने से यहाँ भी दुख मिटेगा और आगे के जन्मों में भी दुःख नहीं पाओगे । कोई कहता है – महाराज, छोरा-छोरी नही होते । उनसे कहते हैं भाई, तुम भी दया पालो । देखो, राजा दिलीप के सन्तान नहीं होती थी । वह ऋषि की सेवा में गया और पूछने लगा क्या करूँ ? ऋषि ने कहा— राजन् ! मेरे पास तो छोरा छोरी है नहीं कि तुम्हें दे दूं । बन सकते तो बना कर दे देता पर ऐसा भी नहीं हो सकता। फिर भी सन्तान चाहते हो तो गायों की दया करो । दया पालने से एक क्या सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

राजा दिलीप ने उसी दिन से शिकार करना छोड़ दिया और गायों की दया करने लगा । उसके यहां रघु उत्पन्न हुए, जिनके नाम पर पर रघुवंश चला और जो आज भी प्रसिद्ध है। रघुवंश महाकाव्य का यह उल्लेख है ।

भाइयो ! दया करो और सत्य ही भाषण करो । कष्ट आ पड़े तो भी राजा हरिश्चन्द्र की तरह धर्म पर दृढ़ रहो कभी किसी की चीज उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना मत लो । किसी का हक छीन कर कोई भी वस्तु प्राप्त मत करो । ब्रह्मचर्य का पालन करो । हो सके तो सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य ही पालो । इतनी शक्ति न हो तो भी कम से कम परस्त्री सेवन का त्याग करो । ममता को मारो ।

लौलुपता से बचो। आसक्ति पापों का मूल है। अनासक्त भाव से कार्य करोगे तो गाढ़े कर्मों का वन्ध नहीं होगा। विरक्ति की ओर अग्रसर होते चले जाओगे।

ममता और उसमें भी फिर क्षुद्र ममता से कितने अनर्थ होते हैं, यह तो प्रत्यक्ष देख सकते हो। घर में देवरानी और जेठानी में खटकती रहती है, सास और बहू के बीच जंग छिड़ा रहता है, भाई-भाई में मनमुटाव रहता है, इन सब का कारण क्षुद्र ममता ही तो है। ममता के बदले अगर समता आ जाय तो सारे झगड़े उसी समय समाप्त हो जाएँ। अतएव ममता के स्थान पर समता को धारण करो जिससे मनप्रसन्नता आनन्द मिले और आत्मा में अनन्त क्षमता आ जाय।

भाइयो! समता को धारण करने के साथ इन्द्रियों का दमन करो, जीभ को वश में करो और क्षमा भाव धारण करो। क्षमा भाव धारण करोगे तो किसी के साथ कदाचित् झगड़ा हो भी गया तो वह तत्काल शान्त हो जायगा। अन्यथा झगड़ा मिटने में देरी लग जायगी।

यह सब सद्गुरुओं द्वारा दी जाने वाली दवाएँ हैं। इन दवाओं का सेवन कर लोगे तो कुन्दन बन जाओगे। कचहरी का मुँह भी नहीं देखना पड़ेगा और न वकील की आजीजी करनी पड़ेगी। ये सब चाहते होओ तो न लो, दवा की एक पुड़िया ले लो और उसे खा लो। सद्गुरुओं के पास बड़ी-बड़ी दवाएँ हैं। उनके सेवन का यही सुअवसर है। इस अवसर को मत चूको। फिर पछताना पड़ेगा!

किसी गाँव के बाहर एक महात्मा रहते थे। उनके कई चेले थे। चेले पढ़े-लिखे थे किन्तु उनमें एक चेला मूर्ख भी था। वह केवल गुरुजी की सेवा ही करना जानता था।

महात्माजी को राजा की ओर से प्रतिदिन कुछ रुपया मिलता था और जागीरी से भी कुछ आ जाया करता था। रोजाना एकादशी-सी हुआ करती थी। कभी लड्डू, कभी माल-पुवा, कभी खीर और कभी रबड़ी बना करती थी। कई गरीब भी वहाँ जा पहुंचते थे और उन्हे भी भोजन मिल जाया करता था।

एक बार महात्मा सख्त बीमार हो गये। तब वह सेवा करने वाला चेला बोला—गुरुजी, जब तक आप हैं तब तक तो मेरी कद्र है और मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है, आपके बाद मेरी क्या दशा होगी? दूसरे चेलों के ज्ञान के पंख उग गये हैं। वे अपने पंखों के बल पर उड़ जाएँगे और मौज करेंगे। पर मैं तो पंख-विहीन हूँ। मुझे कौन पूछेगा?

गुरु ने कहा—चेला, चिन्ता न करो। सेवा की है तो मेवा पाओगे।

शिष्य को सन्तोष नहीं हो सका। उसने कहा—महाराज, मगर मेवा आएगा कहाँ से? आपके नेत्र मूंदते ही सारी मक्खियाँ उड़ जाएँगी।

भाइयो! सब का अपना-अपना पुण्य होता है। साधु-साधु का पुण्य भी अलग-अलग होता है। किसी को गहरा जोग लग जाता है और कोई-कोई खाली झोली हिलाता हुआ आ जाता है।

अब वह शिष्य रोने लगा तो महात्मा ने कहा—तुझे एक दवा बतलाए देता हूं। वह यह है कि किसी भी मर्ज का कोई भी मरीज आवे, तू उसे हरड़े, बहेडे और आँवले के चूर्ण की पुड़िया दे दिया करना।

इतना कहकर महात्मा चल बसे। सब चेलों ने मिलकर इसको गादी पर बिठला दिया! मगर पढ़ाई-लिखाई के नाम सीताराम है! उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है।

राजा की ओर से मिलने वाली रकम बंद हो गई। मठ में मातम-सा छाया रहने लगा। धीरे-धीरे सब काम बिगड़ता गया। पुण्य की बात जो ठहरी!

संयोगवश उस राजा पर किसी शत्रु ने आक्रमण कर दिया। सब लोग सोचने लगे—जब तक पहले वाले महात्मा थे, तब तक कोई विघ्न उपस्थित नहीं हुआ, लेकिन अब तो हवा ही बदल गई है। अपने पास काफी फौज भी नहीं है। क्यों नहीं उन महात्मा के चेले के पास चलें? शायद वह कोई युक्ति बतला दें। उनके पास सेवा का मेवा है।

आखिर पाँच-पच्चीस आदमी मिलकर उस चेले के पास पहुंचे और सारा वृत्तान्त सुनाकर बोले आप इस विपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय बतला सकते हैं।

चेले ने कहा—देखो, छह मन हरड़े, बहेड़ा और आँवला लो। उसे कूट-पीस कर चूर्ण बना डालो। उसे तीन बोरियों में भर लेना और सिपाहियों को वर्दी पहना-पहना कर उस चूर्ण की फक्की दे दो। उनसे कह दो कि दस्त की हाजत हो तो जिस ओर शत्रु है

उसी ओर के दरवाजे से जावें और वापिस दूसरे दरवाजे से आवें। नगर के लोगों को भी यही चूर्ण दो और उन्हें भी ऐसा ही करने को कह दो।

राजा को यही कहा। उसने दवा तैयार करवा ली और सब को वर्दी पहना कर दवा खिला दी। दवा के असर से हर एक आदमी चार-चार और पाँच-पाँच वार टट्टी जाता है और जाने का कभी अन्त नहीं आता है।

शत्रु की सेना ने यह हाल देखा और आक्रमणकारी राजा ने भी देखा। राजा यह देखकर विस्मित हो गया। उसने अपने दीवान से कहा—देखो, कब से सिपाहियों के टट्टी जाने का तांता लग रहा है। न मालूम कितनी बड़ी फौज है कि अभी तक सिपाही ही नहीं निपट पाये हैं। जहाँ इतनी बड़ी फौज है वहाँ अपनी दाल नहीं गल सकती। हम लोग इससे नहीं जीत सकते। भलाई इसी में है कि अपनी आबरू लेकर भाग चलें। नहीं तो मारे जाएँगे, या कैद कर लिये जाएँगे! राज्य जायगा सो तो जायगा ही, इज्जत भी चली जायगी! इस प्रकार सोच-विचार कर हमला करने वाला राजा अपनी फौज लेकर वापिस चला गया!

इधर राजा अपने को निष्कंटक पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रही! उसने कहा—वाह रे गुरु वाह! तेरी आसीम कृपा से हमारे प्राणों का और सारी प्रजा का संकट कट गया!

और अब उसने पहले से दुगुना रुपया देना शुरु कर दिया मठ की भरम्मत करा दी और चार गाँव जागीरी में दे दिये। इस प्रकार उसे सेवा का मेवा मिल गया। कहा है:—

गुरु जब नयन मिलाते हैं, हथेली में त्रिलोक दिखाते हैं ।

अरे, गुरु की कृपा-दृष्टि हो जाय तो वे हथेली के ऊपर तीन लोक दिखा देते हैं, मगर जो गांजा पीता है और लुगाई रखता है वह क्या तारेगा ? गुरु तो कनक-कामिनी का त्यागी होना चाहिये । त्यागनिष्ठ गुरू ही स्वयं तरता है और दूसरों को तारता है।

आखिर उस राजा के राज्य में आनन्द हो गया । तो उस हरडे, बहेड़े और आँवले की तरह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का सेवन करने से समस्त कर्मों की फौज भाग जाती है।

रावण कंस मरे इस कारण, रोग हुआ अभिमान ।
लोभ-रोग ने भी पहुँचाई, अनन्त जीवों को हान रे ।।

देख लो, रावण और कंस को अभिमान का तीव्र ज्वर चढ़ा था। उन्होंने दवा नहीं ली तो उन्हें मरना पड़ा। याद रक्खो संतों की संगति करके रत्नत्रय को धारण नहीं करोगे तो कुत्ते की मौत मरोगे और चौरासी में भटकते फिरोगे । क्रोध, मान, माया और लोभ की यह चतुरंगी सेना आत्मा रूपी राजा को निर्बल पाकर अपदस्थ कर देती है और गर्भवास रूपी कारागार में बंद कर देती है।

संसारी जीव नाना प्रकार की बीमारियों में फँसे हुए हैं । फिर भी वे दवा नहीं ले रहे हैं। उनकी बीमारियाँ क्या है ?

जुआ मांस मदिरा वेश्या है चोरी बुरी शिकार ।
परनारि ये सब बद परेहजी बचे रहो हुशियार ।।

प्रथम तो दया की दवा लो—जान-बूझकर किसी भी जीव को कष्ट मत पहुँचाओ। किसी पर दुर्भावना मत लाओ, क्रोध मत करो। वहू चाहे तो सासू का और बेटा चाहे तो बाप का जीवन भी सुधार सकता है। भाइयो दवा ले लो और अपना तथा दूसरों का जीवन सुधार लो। सुखी बनो और बनाओ। मगर याद रखना, प्रत्येक दवा के साथ परहेज की भी आवश्यकता होती है। जो रोगी दवा तो ले लेता है किन्तु परहेज नहीं रखता, उसे दवा का पूरा लाभ नहीं मिलता। अगर तुम परहेज न रख सके तो हम दवा देने वाले क्या करेंगे? तो मैं जो दवा दे रहा हूं उसके साथ सात बातों का परहेज रखना आवश्यक है—(१) जुआ न खेलना (२) मांस नहीं खाना और अंडे न चूसना (३) शराब न पीना (४) वेश्या के सम्पर्क से बचना (५) शिकार न खेलना (६) चोरी नहीं करना और (७) परस्त्रीगमन नहीं करना। याद रख लो:—

जुआ खेलना मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार।
चोरी पररमणी रमण, सातों व्यसन निवार॥

भाइयों! हमारी दवा खाओ। यह दवा हमने ईजाद नहीं की है, किन्तु अनन्त ज्ञानियों की ईजाद की हुई है। इस दवा से अनन्त जीव नीरोग होकर सदा के लिये सुखी बन गये हैं, बन रहे है और भविष्य में बनेंगे। जिनका कल्याण हुआ, इसी दवा से कल्याण हुआ है, और इस दवा के विना किसी का भी कल्याण नहीं हो सकता। बोलो, कौन हमारी दवा का सेवन करने को तैयार है? कौन सात पथ्य पालता हुआ दवा का सेवन करना चाहता है? अरे, यह दवा लौकिक नहीं, लोकोत्तर है, यह शरीर

के ही नहीं, आत्मा के भी प्रबल रोगों का विनाश कर देती है। थोड़े दिनों के लिए नहीं, सदा काल के लिए नीरोगता देने वाली है। एक नहीं समस्त रोगों का एक ही साथ नाश कर देती है। यह रोगों के मूल को ही उखाड़ कर फैंक देती है। कोई खाकर देखे तो सही इस दवाई को।

त्याग तप से ताव तिजारी रोग शोक मिट जावे।
हो निरोग शिव-महल सिधावे मन-इच्छित फल पावे रे॥

त्याग और तपस्या की दवा का सेवन करने से समस्त रोग-शोक दूर हो जाते हैं। ताव और तिजारी जैसे रोग उसके पास भी नहीं फटक सकते। इस दवा का सेवन करने से निरंजन पद की प्राप्ति होती है और अनन्त अक्षय एवं अव्याबाध आनन्द भी प्राप्त होता है। भाइयो! तप और त्याग के बिना काम नहीं चलता। अतएव इसका सेवन करो। जल्दी न सही, अभी तो महीने का समय और है।

चर्चा चूरण बड़ा तेज है जो कोई इसको खावे।
बदहजमी संशयरूपी तो तुरत-फुरत मिट जावे॥

हमने प्रभु के धर्म को जिस रूप में समझा है, उसी रूप में तुम्हें सुनाते हैं। कदाचित् आपकी समझ में न आवे तो आप उस पर चर्चा कर सकते हैं। जैसे भोजन हजम न होने पर आप पाचक चूर्ण की फक्की ले लेते हैं, उसी प्रकार हमारा उपदेश आपको हजम न हो तो चर्चा रूपी चूर्ण का सेवन कर लीजिए। तब वह जल्दी हजम हो जायगा।

संवत् उगणी से अस्सी साल में, देवास शहर मुझारी
गुरु प्रसादे चौथमल यह दवाखाना किया जारी रे ॥

पहले छोटी-मोटी दवा देते थे, लेकिन संवत् उन्नीस सौ अस्सी की साल मे यह बड़ा दवाखाना खोला है। देवास के राजा ने दवा खाई और फिर दूसरे बड़े-बड़े राजाओं ने भी दवा का सेवन किया। जीवदया के पट्टों के रूप में उनके सर्टिफिकेट हमारे पास हैं। किसी को जबर्दस्त बीमारी होती है तो उसे सम्यक्दर्शन की दवा दे देते हैं। उससे बहुत सी बीमारियाँ हट जाती हैं, उसका कोठा साफ हो जाता है, जिससे बाद में दी जाने वाली दवा जल्दी और अच्छा असर कर सके। कुशल वैद्य रोगी की चिकित्सा करते समय पहले-पहल उसका कोठा साफ करता है और फिर रोग को शान्त करने के लिए दवा देता है। आध्यात्मिक रोगों की चिकित्सा का क्रम भी ऐसा ही है। सम्यग्दर्शन या शुद्ध श्रद्धा से पहले रोगी का अन्तःकरण रूपी कोठा साफ किया जाता है। कोठा जब साफ हो जाता है तो चारित्र रूपी औषध जल्दी असर करता है। कोठा साफ न हो और दवा दे दी जाय तो वह पूरा प्रभाव नहीं दिखलाती है मतलब यह है कि सम्यग्दर्शन के बिना ही अगर चारित्र का पालन करवाया जाय तो वह चारित्र मुक्ति का कारण नहीं होता। उससे संसार का उत्तम सुख भले ही मिल जाय, पर इससे प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती। अतएव पहले हम सम्यग्दर्शन रूप दवा देकर कोठे को साफ शुद्ध कर देना ही ठीक समझते हैं।

हमारा दवाखाना चलता-फिरता है। वह हमेशा एक ही जगह कायम नहीं रहता। वह बड़े-बड़े नगरों में भी घूमता है

और छोटे-छोटे गाँवों में भी जाता है। भाइयो ! इस दवाखाने में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीनों प्रकार के ताप दूर करने की दवा है, आधि, व्याधि और उपाधि हटाने की औषध है और जरा, मरण एवं जन्म के त्रिविध दुःख को दूर करने वाली दवा भी है। यह दवाखाना बड़े-बड़े अनुभवी महा-पुरुषों ने खोला है और उन्हीं के प्रताप से आज मैं उसे लिये घूम रहा हूँ। इच्छा हो तो आओ। कल्याण चाहते हो तो आओ निर्विकार और निरामय होना चाहते हो तो आ जाओ। यह दवाखाना सब के लिये खुला है, सब दिन खुला है। पथ्य पालन करने के लिये तुम्हें कुछ त्याग करना पड़ेगा, परन्तु हमें एक फूटी कौड़ी भी नहीं चाहिए।

जम्बूकुमार की कथाः—

सुधर्मा स्वामी भी इसी दवाखाने को लिये विचरते थे। जम्बूकुमार को जब अपनी बीमारी असह्य हो उठी तो उनकी सेवा में पहुचे। सुधर्मा स्वामी ने उन्हें दवा बतला दी। उस दवा का प्रभाव इतना अधिक था कि अप्सराओं के समान सुन्दरी स्त्रियाँ उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना चाहती हैं, भोग की ओर प्रेरित करना चाहती है किन्तु जम्बूकुमार उल्टे उन्हें ही योग की तरफ ले जाना चाहते हैं। चौथी स्त्री हार मान कर जब बैठ गई तो पाँचवी अपनी बात कहने को तैयार हुई। वह बोली—प्रियतम ! हमारे हृदय के हार ! मेरी प्रार्थना सुनो। आप अपनी जिद पर अड़े हुए हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। जिद पर अड़ने से आपकी भी वही दशा होगी जो दो स्त्रियों की हुई थी।

एक जंगल में दो स्त्रियाँ लकड़ी-कंडे बीनने को गई। एक का नाम सिद्धि और दूसरी का नाम बुद्धि था। दोनों सिर पर भारा लिए, पसीने से तर-बतर होती हुई गाँव के पास आई और किसी पेड़ के नीचे विश्राम लेने के लिए ठहर गई। दोनों थकी हुई थीं, अतः उन्हें नींद आ गई। जब जाग कर उठीं तो उन्होंने देखा कि सामने एक बगीचा है और उसमें तंबू लगे हैं। तंबू के भीतर कुर्सी और टेबिल सुशोभित हैं। टेबिलों पर कई-कई तश्तरियाँ रक्खी हैं और उनमें बादाम, पिश्ता आदि मेवा, गुलाब-जामुन आदि मिठाइयाँ, अंगूर, सेव आदि फल भरे हुए हैं। पास ही अनमोल आभूषणों से लदी हुई सेठानी बैठी है और वह अपने पति की मनवार कर रही है। पत्नी पति को खाने का आग्रह कर रही है और पति, पत्नी को खाने के लिए मजबूर कर रहा है।

यह दृश्य देखकर दोनों स्त्रियाँ रोने लगीं। रोती-रोती कहने लगीं—देखो न अपनी तकदीर! एक हम हैं जो चोटी से एड़ी तक पसीना बहा कर भी भरपेट भोजन नहीं पातीं और दूसरी ओर यह सेठानी है! हम इसी मर्त्यलोक में मानों नरक भोग रही हैं और यह सेठानी मानों स्वर्गीय सुख भोग रही है। हम भी मनुष्य है और सेठानी भी मनुष्य ही है! फिर भी दोनों की हालत में कितना अन्तर है। हम कितनी मिहनत करती हैं और सेठानी तिनका भी उठाकर इधर से उधर नहीं रखती! फिर भी हम कितना कष्ट भुगत रही हैं और यह कैसे मजे उड़ा रही है!

दोनों स्त्रियाँ आपस में इस प्रकार कह-सुन रही थीं और एक महात्मा पुरुष पेड़ की ओट में खड़े होकर उनकी दुःख-भरी बातें सुन रहे थे उनके दिल में दया उमड़ आई। वे उनके पास

आये और बोले—बहिनो ! क्या बात है ? तुम क्यों रोती हो ? कोई हानि न हो तो अपने दुःख का कारण मुझे बतलाओ।

महात्मा के सहानुभूति से भरे हुए वचन सुन कर उनमें से एक स्त्री ने कहा—महात्माजी ! आप हमारा दुखड़ा-सुनकर क्या करेंगे ? इस संसार में गरीबों का कौन है ? भगवान् भी तो अमीरों का ही है ! गरीब तो रो-रो कर जिंदगी खत्म करके मर जाने के लिए हैं।

महात्माजी के अन्तःकरण से करुणा का जो भाव पहले उत्पन्न हुआ था, वह उस स्त्री की दयाजनक बातें सुन कर और भी तीव्र हो गया। उन्होंने कहा–बहिन ! तुम ईश्वर को व्यर्थ ही दोष दे रही हो ! ईश्वर तो वीतराग है। वह न गरीबों से कुछ लेता है, न अमीरों को कुछ देता है। उसके सामने सभी समान हैं। गरीब और अमीर का जो महान् अन्तर है, वह ईश्वर का बनाया हुआ नहीं है। वह अन्तर तो मनुष्यों ने ही उत्पन्न किया है और स्वयं ही उसे मिटा सकता है। मगर गरीबों और अमीरों की बात छोड़ कर मूल बात पर आओ। तुम तो अपने दुःख का कारण बतलाओ।

दूसरी स्त्री ने कहा—महात्माजी ! गरीबों और अमीरों की बात को छोड़ कर और रोना ही क्या है ? इसी बात का तो रोना है। हम दिन-रात मजदूरी करती हैं, लकड़ियाँ चुगती चुगती मरी जा रही हैं, जंगल में भटकती हैं, सिर पर भारा लाद कर लाती हैं। देखो न, भारा लादते-लादते खोपड़ी के बाल तक उड़ गये हैं। मगर एक दिन भी सुख से कभी भोजन नहीं पाया ! हमारी सारी जिंदगानी इसी तरह बीती जा रही है। पर सामने की ओर जरा

नजर डालिए। वहाँ कैसी मजा-मौज उड़ रही है। एक सेठ है, एक सेठानी है। दोनों में से किसी को कुछ भी नहीं करना पड़ता दोनों आनन्द भोग रहे हैं! आखिर मनुष्य-मनुष्य में ही इतना अन्तर क्यों होना चाहिए? इसे भाग्य का विधान मानें या मनुष्य का अत्याचार समझें।

महात्मा—हो सकता है कि यह मनुष्य का अत्याचार ही हो और यह भी संभव है कि यह भाग्य का विधान हो। परन्तु सवाल यह है कि क्या मान लेने से तुम्हे शान्ति मिलेगी? अगर तुम इस अन्तर को मनुष्य का अत्याचार मान लोगी तो मनुष्य-जाति के प्रति तुम्हारे हृदय में घृणा और द्वेष की भावना उत्पन्न होगी। इससे मनुष्य-जाति की चाहे कुछ हानि हो या न हो, पर तुम्हारे चित्त का क्षोभ जरूर बढ़ जायगा और तुम्हारा जीवन अशांति का अखाड़ा बन जायगा। इसके विपरीत, अगर इस अंतर को भाग्य का विधान स्वीकार कर लोगी तो चित्त को एक प्रकार का समाधान मिलेगा, सान्त्वना मिलेगी, सन्तोष मिलेगा। इस-लिए मनुष्य के लिए यही उचित है कि गरीबों को वह अपने भाग्य का विधान स्वीकार करके चले। अलबत्ता अपने भाग्य के विधान को पलटने की वह कोशिश कर सकता है, क्योंकि भाग्य का प्रत्येक विधान आजीवन स्थायी नहीं होता।

लक्कड़हारिनें महात्माजी की बात को शायद पूरी तरह नहीं समझी। उन्होंने कहा—महाराज, बातों से पेट नहीं भरता। आराम से पेट भर खाने को मिल जाय तो आप जो कहे वही हम मानने लगें।

महात्माजी ने कहा—अच्छी बात है। रोओ मत। रोने से पेट नहीं भरेगा। मैं तुम्हें एक मन्त्र देता हूँ। छह महीनों तक इसका जाप करना। छह महीने बीत जाने पर एक देव प्रकट होगा। उससे यही माँगना कि जितना मेरे हो, उतना ही मेरी बहिन के हो!

दोनों ने छह महीने तक मन्त्र जपा। छह माह पूर्ण होने पर देवता ने प्रकट होकर कहा माँगो, क्या चाहती हो? दोनों ने माँगा हम दोनों के बराबर-बराबर होना चाहिए। 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार वरदान देकर देवता अदृश्य हो गया।

कुछ दिनों बाद दोनों ने मन्त्र की आजमाइश करने की सोची। उन्होंने मन्त्र जप कर कहा—एक-एक हजार रुपये आएँ! उसी समय हजार-हजार की दो थैलियाँ आ पड़ीं। दोनों स्त्रियों ने बढ़िया कपड़े बनवाए और घर को ठीकठाक करवा लिया। वह रुपये जब समाप्त हो गये तो उन्होंने दस-दस हजार रुपये और माँगे। अब वह रईसों की तरह रहने लगीं। फिर एक-एक लाख माँगा और विशाल हवेलियाँ बनवालीं। अब उनके यहाँ नौकर-चाकर काम करते हैं। खूब खाती-पीती और मौज करती है। महात्मा की दया से उन्हे यह सब वैभव प्राप्त हुआ, मगर किसी को मुट्ठी भर आटा भी वे नहीं देतीं। धर्म को भूली हुई हैं और ईश्वर का नाम लेने की फुर्सत नहीं है। माल खाने से और सुख में रहने से शरीर की रंगत ही बदल गई। साथ ही दिल और दिमाग भी बदल गया है। बाग-बगीचो में सैर करने जाती है, मगर उन मूर्खाओं को अपनी पहले वाली स्थिति का स्मरण नहीं रह गया है! जब वे स्वयं गरीब थी तब अमीरों से उन्हें शिकायत

थी कि वे गरीबों की ओर ध्यान नहीं देते, मगर आज वे खुद अमीर होकर गरीबों को भूल गई है !

उन दोनों में से एक स्त्री की अधिक प्रशंसा हुई । दूसरी के मन में ईर्षा उत्पन्न हुई । उसने सोचा— मैं देवता को बुला कर उससे दुगुना क्यों न माँग लूं । और सचमुच ही उसने देवता को बुलाकर यह माँग की कि जितना उसके हो, उससे दुगुना मेरे होना चाहिये । देवता ने उसकी माँग स्वीकार कर ली । अब उसके यहाँ दूसरी औरत से दुगुनी-दुगुनी सब चीजें होने लगीं । उसका ठाठ ही निराला हो गया ।

दूसरी को इस बात की खबर लगी तो वह पालकी में बैठ कर उसके घर आई । आते ही वह बोली—क्यो री सखी, यह क्या मामला है ?

मगर वह अब पहले वाली नहीं रही थी । उसे दुगुना धन होने का अभिमान हो गया था । अतः भर्त्सना करती हुई कहने लगी चल, चलमँगती कहीं की ! मेरे पास तुझसे दूना धन है ! मुझे सखी नहीं, सेठानी कहो ।

दूसरी ने कहा—अच्छा, सेठानीजी ही सही । यह तो बतलाइए कि आपके पास दूना धन कैसे हो गया ?

उसने देवता से दुगुना धन पाने के वरदान की बात बतलादी । तब दूसरी ने मन ही मन कहा—अच्छी बात है । अब मैं देख लूंगी ।

वह अपने घर लौट गई । घर जाकर उसने भी देवता का स्मरण किया । देवता आया तो उसने कहा-मेरी एक आँख फूट जाय

उसकी एक आँख फूट गई पर उसकी सखी की दोनों फूट गई। फिर उसने माँगा—मेरी एक टांग टूट जाय। उसकी दोनों टांगें टूट गई। फिर माँगा-मेरे एक कुआ खुद जाय। इस माँग से उसके यहाँ दो कुए खुद गये। उनमें से किसी में पड़ कर वह दुर्गति के साथ मर गई।

भाइयो! कोई लालच मत करना। जम्बूकुमार की पत्नी कहती है–प्राणनाथ! देखिये, अतिशय लालच करने का कैसा दारुण परिणाम होता है। जैसे सिद्धि और बुद्धि की जोड़ी थी, उसी प्रकार हमारी और आप की जोड़ी है। हम को और आपको पूर्व जन्म के पुन्य के उदय से सब सुखी–सामग्री मिली है। मगर आप साधु बन कर, हमारे साथ कपट करके दुगुने होना चाहते हैं! यही अतिशय लालच है। इस लालच का परिणाम अच्छा न होगा। अतएव उचित यही है कि जो सुख–सामग्री हमें प्राप्त हुई है उसी को सन्तोष के साथ भोगें और अधिक आशा में पड़ कर इसे भी न गंवा दें। अधिक लोभ करोगे तो इससे भी हाथ धोना पड़ेगा।

हे नाथ! हमारी मानो। दुगुने बनने मत जाओ। चौबेजी छब्बे बनने चले, तो दुबे ही रह गये। यह लोक में मशहूर कहावत है। इसे अपने ऊपर चरितार्थ मत करो। आप अपने जीव को स्वाभाविक गति से ही बहने दो। उसे कृत्रिमता की ओर मत जाने दीजिए। अपने मन पर बलात्कार मत कीजिए। जिंदगी को कष्टपूर्ण, कंटकमय और नीरस मत बनाइए।

आज विवाह करके कल प्रातःकाल ही अगर आप साधु बनेंगे तो यह हमारे साथ धोखा करना होगा। विश्वासघात करना होगा। पियतम! यह पहली रात है सुहाग की और आप बैठे

हैं ज़िद् पकड़ कर ! संसार में शायद ही किसी पुरुष ने अपनी पत्नियों के साथ ऐसा अनोखा व्यवहार किया हो ! आज का दिन जीवन में अमृत भरने वाला समझा जाता है, सब से महत्वपूर्ण और धन्य दिवस माना जाता है, किन्तु आपने इसे और इसके साथ ही हमारे समस्त भावी जीवन को अभिशापमय बनाने का विचार कर लिया है ! आप समझते हैं कि आपके दिल में दया उत्पन्न हुई है, मगर वह दया नहीं, निर्दयता है । जिस भावना के फल स्वरूप आठ रमणियों की जिंदगी सदा के लिये बर्बाद कर दी जाती है, उस भावना को दया कैसे कहा जा सकता है ? नहीं यह दया नहीं है धोखा है, दगाबाजी है, विश्वासघात है निर्दयता है आप हमारे साथ कपट कर रहे हैं ।

नाथ ! पूर्वकृत पुन्य रूपी देव आपके ऊपर प्रसन्न है । उसने सभी कुछ दे दिया है । किसी वस्तु की कमी नहीं है । अब दूना पाने के लिये देवता की साधना मत करो !

याद रखना, आज कपट करके साधु बनना चाहते हो कल को अगर साधुपन न पल सका तो फिर भोग और योग दोनों का वियोग हो जायगा । फिर न इधर के न उधर के रहेंगे । पश्चात्ताप ही शेष रह जायगा । अतएव मेरे नम्र निवेदन पर विचार कीजिए । मेरी सलाह मान कर अपने दुराग्रह का त्याग कर दीजिए ।

ता० २२-६-४८



संघ-सम्मिलन

()—()—()—()

स्तुति:--

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार—
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवान् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ।

भगवान् आदिनाथ ने धर्म की भी विधि बतलाई है और संसार की भी विधि बतलाई है । इस जगत् पर भगवान् ऋषभदेव का असीम उपकार है । जब विश्व संकट में पड़ा हुआ था तब

उन्होंने उसके उद्धार का मार्ग बतलाया था। प्रभु ऋषभदेव के बतलाये लौकिक और लोकोत्तर पथ पर चल कर मानव अपने जीवन को सुखमय और शान्तिमय बनाता है।

भगवान् जब समवसरण में विराजमान होकर धर्मोपदेश फरमाते थे तो उनके शरीर के दोनों ओर चामर ढुरते थे। भगवान् का शरीर स्वर्ण के समान कान्ति वाला था और चामर कुन्द के पुष्प की भाँति एकदम धवल। उन श्वेतवर्ण के चामरों के ढोरे जाने से, सहज सुन्दर भगवान् का शरीर और भी अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगता था। उस समय का दृश्य अनोखा ही था। ऐसा जान पड़ता था मानो सुमेरु पर्वत से, उदीयमान चन्द्र के सदृश स्वच्छ निर्झर की जलधारा प्रवाहित हो रही हो।

यह भी भगवान् का प्रतिहार्य है। चँवर नीचे से ऊपर जाते हुए दुनिया को यह शिक्षा देते है कि जैसे हम पहले नमते है और फिर ऊपर उठते है उसी प्रकार तुम भी अगर भगवन् के सामने नमोगे तो ऊँचे उठ जाओगे अर्थात् सर्वोच स्थान को प्राप्त कर लोगे। ऐसे भगवान् श्री ऋषभदेवजी हैं, जिनको नमस्कार करने से आत्मा का लोकोत्तर कल्याण होता है! उन्हीं को हमारा बार-बार नमस्कार।

भाइयो! नमना बड़ा भारी धर्म है, पर नमना बड़ा ही कठिन भी है क्योंकि इस जीव के पीछे एक ऐसा दुश्मन लगा हुआ है कि वह नमने ही नहीं देता। वह दुश्मन है अभिमान। अभिमान नमस्करणीय पुरुष को भी नमस्कार नहीं करने देता। अभिमानी पुरुष भले ही ठोकर खाकर धड़ाम से नीचे गिर पड़ेगा किन्तु नमेगा नहीं। मगर नमना दुनियाँ में लायकी का चिन्ह समझा जाता है। जो नमता है वह लायक समझा जाता है।

अतएव अगर कोई कहता है कि हम क्यों नमें ? तो उसे यही उत्तर दिया जा सकता है कि अगर लायक बनना है तो नमो। दो आदमी आमने-सामने खड़े होकर तकरार करते हैं। तीसरा मध्यस्थ आदमी उनका बीच-बचाव करता है। एक आदमी मध्यस्थ का कहना मान कर झुक जाता है और दूसरा उसके कहने की परवाह न करके अकड़ता रहता है। अब आप किसे लायक और किसे नालायक कहेंगे ? वास्तव में लायक वही होगा जिसने अभिमान का त्याग कर दिया है। भगवान् ने अभिमान कषाय को त्यागने का उपदेश इसी कारण दिया है कि अभिमान के रहते हुए मनुष्य में मृदुता नहीं आती और मृदुता के अभाव में धर्म का अंकुर नहीं उगता। किसी किसान के पास जाकर पूछो कि वह अपने खेत को बार-बार जोत कर कोमल क्यों बनाता है ? बिना जोते ही उसमें धान्य क्यों नहीं बो देता ? आप पूछेंगे तो वह आपको यही उत्तर देगा कि कठोर भूमि में अंकुर नहीं उग सकते। यही बात मनुष्य के हृदय की है। मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा— उसकी अभिमान रूपी कठोरता हट जायगी, तभी उसमें धर्म का अंकुर उग सकेगा। अभिमान को छोड़े बिना आत्मा उन्नत नहीं बन सकती। जो जीव अभिमान का त्याग करेगा वही सुखी बनेगा। वह दूसरे के सद्गुणों को ग्रहण करके सद्गुणी बन सकेगा। देख लो न इंद्रभूतिजी कितने विद्वान और कितने बड़े पण्डित थे ? मगर उन्होंने अभिमान छोड़ते तनिक देरी नहीं की भगवान् ने समझाया तो झट डंड कमंडल एक तरफ डाल कर भगवान् के चेले बन गए। अगर उन्होंने अभिमान का त्याग न किया होता तो आत्म कल्याण का ऐसा सुअवसर उन्हें कदापि नहीं मिल सकता था।

पहले के लोगों में और आजकल के लोगों में बहुत अन्तर है। मुख्य रूप से तीन जमाने गुजरे हैं। पहला भगवान् ऋषभ-देवजी का दूसरा भगवान् अजितनाथजी से लेकर भगवान् पार्श्व-नाथ तक का और तीसरा चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के शासन का। शास्त्र में कहा है—

पुरिमा उज्जुजडाउ, वंकजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धमे दुहा कए।

श्री उत्तराध्ययन, अ. २३, गा. २६

श्री भगवान् महावीर के शासन के समय भी, तेईसवें तीर्थ-ङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के शासन के एक आचार्य मौजूद थे। उनका नाम केशी श्रमण महाराज था। पार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के वाद ये पाट (गादी) पर वैठे थे। एक वार विचरते-विचरते वे अपने शिष्यों के साथ श्रावस्ती नगरी में पधारे और वाहरी भाग मे तिन्दुक नामक वगीचे में ठहरे। संयोगवश उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम स्वामी भी अपने शिष्यवृन्द के साथ, ग्राम नगर पुर पाटन आदि में विचरते-विचरते वहाँ पधारे। वे किसी दूसरे कोष्टक नामक उद्यान में ठहरे।

उत्तराध्ययनसूत्र में केशी स्वामी के विषय में कहा है—

तस्स लोगपदीवस्स, आसि सीसे महाजसे।
केसी कुमारसमणे, विज्जाचरणपारगे॥
ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले।

अर्थात्—लोकप्रदीप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशी स्वामी वड़े ही यशस्वी थे। ज्ञान और चारित्र के पारगामी थे। अवधिज्ञानी थे और शिष्य-समूह से आवृत थे। वड़े-वड़े ही तत्वज्ञ थे।

इसी शास्त्र में गोतम स्वामी के विषय में भी यही उद्गार प्रकट किये गये हैं। इससे विदित होता है कि दोनों तीर्थङ्कर के ये दोनों प्रधान शिष्य वड़े जबरदस्त थे। अकस्मात् दोनों एक ही समय पर श्रावस्ती में आ पहुँचे। दोनों आचार्यों के शिष्यों ने एक दूसरे को देखा होगा आपस में परिचय हुआ होगा। पर उनके आचार मे कुछ भिन्नता थी। उस भिन्नता को देख कर दोनों आचार्यों के चेलों को संदेह उत्पन्न हुआ। उनके संदेह को शास्त्र में इस प्रकार प्रकट किया गया है—

केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो ?
आयारधम्मपणिही, इमा वा सा व केरिसी ॥
चाउज्जामो य जो धम्मो जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥
अचेलओ य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
एगकज्जपवन्नाणं विसेसे किं नु कारणं ? ॥

दोनों संघों के शिष्य सोचने लगे-भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर दोनों ही तीर्थङ्कर थे। दोनों ही अलौकिक ज्ञानी थे। दोनों का अभिष्ट (मोक्ष) एक ही था। फिर उसकी साधना में इतना अन्तर क्यों है ? यह धर्म कैसा है और वह धर्म कैसा

है ? हमारी आचार-पद्धति और उनकी आचार-पद्धति में भेद क्यों है ? पार्श्वनाथ भगवान् ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की और भ० महावीर स्वामी ने पाँच महाव्रतों की प्ररूपणा। की यह संख्या-भेद क्यों हुआ ? महावीर स्वामी का अगर धर्म ठीक है तो पार्श्वनाथ भगवान् का धर्म भी क्या ठीक नहीं है ? मगर तीर्थङ्कर की प्ररूपणा अन्यथा नहीं हो सकती । फिर इस अन्तर का कारण क्या है ?

इस प्रकार के तर्क वितर्क दोनों आचार्यों के शिष्य परिवार में होने लगे। यह बात जब केशी और गौतम स्वामी को मालूम हुई तो उन्होंने आपस मे मिलने और वार्त्तालाप करने का निश्चय किया। तदनुसार—

श्री केशी श्रमण अणगारी हो, मुनिवर की जोड़ी प्यारी।
सावत्थी नगरी के तिन्दुक वन में हुओ समागम भारी ॥

दोनों महानुभाव तिन्दुक वन में विराजमान हुए । गौतम स्वामी, केशी स्वामी के पास पहूँचे । दोनों यह चाहते थे कि शिष्यों के मन मे जो सन्देह उत्पन्न हो गया है उसे आपस में मिल कर और वातचीत करके, सब के सामने दूर कर दिया जाय। जब गौतम स्वामी, केशी स्वामी को बड़ा समझ कर, अभिमान की भावना को स्पर्श भी न करते हुए उनके यहाँ पधारे तो केशी स्वामी के समस्त शिष्यों ने उनका हार्दिक स्वागत किया और सब को आसन प्रदान किये ।

भाइयो ! शास्त्र में उल्लिखित यह घटना साधारण नहीं नहीं है। इस उदाहरण से आज हमें बहुत बड़ी शिक्षा लेने की

आवश्यकता है। आज हमारे यहाँ साधु-समाचारी में कई छोटी-छोटी बातों का अन्तर आ गया है। वह अन्तर बहुत मामूली है। वह उतना बड़ा नहीं है, जितना केशी गौतम की समाचारी में था। कहाँ चार यम और कहाँ पाँच महाव्रत ? कहाँ सचेलक धर्म और कहाँ अचेलक धर्म ? कितना बड़ा अन्तर है ? फिर भी दोनों महानुभाव सरल भाव से आपस में मिलते हैं और इस अन्तर को दूर करने के लिए बात चीत करते हैं और बात चीत करके अन्तर को मिटा डालते हैं। यह है सच्ची धार्मिकता। यह है सच्ची निष्पक्षता ! जहां मान कषाय का अभाव होगा और आत्मकल्याण की गहरी लगन होगी, वहाँ दुराग्रह को स्थान नहीं मिल सकता। आज जैन संघ अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया है और उन सम्प्रदायों में भी अनेक अवान्तर सम्प्रदाय बन गये हैं इसके कारण वीर प्रभु के संघ की शक्ति कम हो गई है और परस्पर में ईर्षा द्वेष का वातावरण फैला रहता है। आज इस संघ के अग्रणी चाहें तो क्या केशी-गौतम की भांति मिलकर किसी निष्पक्ष निर्णय पर नहीं आ सकते ? वे चाहें तो कम से कम अवान्तर सम्प्रदायें तो एक हो ही सकती हैं। समाचारी की साधारण बातों का अन्तर मिटा देना छोटी-सी बात है। पर उसके लिए सच्चा और गहरा धर्मप्रेम, शासनप्रेम, निरभिमानता एवं उदारता की आवश्यकता है गौतम स्वामी के पाट पर बैठने वाले आचार्य-महानुभाव क्या गौतम स्वामी का इस विषय में अनुकरण नहीं कर सकते ? पर आज की हालत ही कुछ दूसरी है। समाचारी में जरा-सा अन्तर देखकर आज दूसरों को ढीले होने का प्रमाण पत्र दे दिया जाता है ! और इसी बहाने अपनी उच्चता का ढोल पीटा जाता है। मानों एक सम्प्रदाय तभी ऊंचा

सिद्ध हो सकेगा जब दूसरों को नीचा दिखलाया जाय। दूसरे को नीचा दिखला कर अपनी उच्चता प्रकट करने वालों में, वास्तविक उच्चता नहीं होती। जिसमें वास्तविक उच्चता होगी वह अपनी उच्चता प्रकट करने के लिये किसी दूसरे की हीनता साबित करने नहीं बैठेगा! अतएव जब कोई साधु दूसरे साधु की हीनता प्रकट करता हो, उसे ढीला बतलाता हो और अपने आचार-विचार की श्रेष्ठता की डींगे मारता हो समझ जाओ कि इसमें वास्तविक उच्चता नहीं है। यही बात सम्प्रदायों के संबन्ध में समझ लेनी चाहिए।

साधुमार्गी समाज को ही ले लीजिए। इस समाज में कई उपसम्प्रदाय है और दिनों-दिन उनकी संख्या बढ़ती जाती है। परन्तु इस सम्प्रदाय भेद का आधार क्या है? किस बात को लेकर यह सब अलग-अलग सम्प्रदाय बने हुए हैं? एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय से किस बात में मतभेद है? अगर गम्भीर भाव से विचार करें तो कुछ भी महत्वपूर्ण भेद है? नहीं प्रतीत होगा। फिर भी अलग-अलग अखाड़े बने हुए हैं! यही हाल दूसरे समाजों का भी है। इस निराधार भेदभाव का कारण यही है कि आज जैन संघ केशी-गौतम के उस महान् और उच्च आदर्श को भूल गया है। आज उसे अपने व्यवहार में प्रतिबिंबित करने की बड़ी आवश्यकता है।

हाँ, तो दोनों महाभाग आचार्य अपने मतभेदों का निरा-करण करने के लिए एकत्र हुए। उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर कई देव और विद्याधर अपने-अपने विमानों मे बैठ कर आये। कई लोग कुतूहल से भी आये। पाखंडी लोग झगड़ा की कल्पना-

करके मजा देखने आये। कोई किसी विचार से आये, कोई किसी भाव से आये।

दोनों मुनिराज अपने शिष्यों के सामने प्रश्नोंतर करने लगे। केशी श्रमण- ने गौतम स्वामी से कहा—हे महाभाग! मैं आपसे प्रश्न करना चाहता हूँ।

गौतम स्वामी-भगवन्! जो आपकी इच्छा हो सो पूछिये।

भाइयो! दोनों महात्माओं की शिष्टता और निरभिमानता पर ध्यानता दीजिए। केशी स्वामी को 'महाभाग' शब्द से सम्बोधित करते हैं और गौतम स्वामी को ''भंते' (भगवन) कह कर उत्तर देते हैं और। कैसा उत्तम व्यवहार है! कितनी आदर्श और उज्जवल नम्रता है। दोनों की समाचारी में वहुत अन्तर होते हुए भी एक दूसरे का कितना आदर करते हैं! हे मुनियों! इन महात्माओं के उदाहरण से तुम भी कुछ सीखो! उदारता का यह मूर्तिमान् उदा-हरण तुम्हे जवर्दस्त शिक्षा देता है।

केशी श्रमण पूछते हैं—भगवान् पार्श्वनाथ ने जो फर्माया है वह सत्य है और भगवान् महावीर ने जो फर्माया है, वह भी सत्य है। फिर आपके और हमारे वीच वस्त्रों संवंधी यह अन्तर क्यों है ?

गौतम स्वामी ने कहा—महाभाग, वाह्य वेष तो साधु की पहचान के लिए है। एक-सा वेष हो तो लोग जल्दी पहचान लेते हैं कि यह साधु इस धर्म को मानने वाले हैं। वस, वाह्य वेष का यही प्रयोजन है। इसका मुक्ति के साथ अभिनाभाव संवंध नहीं है। अमुक प्रकार का वेप धारण करने से ही मोक्ष मिलेगा और

दूसरे वेष से मोक्ष नहीं मिलेगा, ऐसी कोई बात नहीं है। गुण-स्थानों का चढ़ाव-उतार तो कषायों की मन्दता और तीव्रता पर निर्भर है। मुक्ति चारित्र से होती है, वेष से नहीं होती। फिर भी वाहरी वेष एक-सा हो तो लोकोंगों पहचानने में सुभीता होती है। इस दृष्टि से वेष का मूल्य है। मुंहपत्ति बाँधकर कोई साधु किसी गृहस्थ के घर जाता है तो गृहस्थ को किसी प्रकार का संदेह नहीं होता और देखते ही वह समझ जाता है कि यह साधु है! साधु का वेष न हो तो गृहस्थ के सामने साधु को अपना परिचय देना पड़े। उसे कहना पडे कि हम साधु है और अमुक सम्प्रदाय के साधु हैं। व्यवहार में यह अच्छी बात नहीं है। साधु के निमित वेष को धारण किये हुए हम लोग निस्संकोच रूप से गृहस्थो के घर मे चले जाते हैं। वहू-बेटियों के सामने भी चले जाते हैं। सभी को मालूम है कि जैन साधु ब्रह्मचारी होते हैं। अतएव किसी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता।

एक बार, कहते हैं, नारदजी कृष्णजी के पास आये और बोले मैं आपका अन्तःपुर में जाकर सत्यभामा का रूप देखना चाहता हू। श्री-कृष्ण ने कहा -निस्संकोच भाव से पधारिये महाराज! कोई और ऐसा वैसा होता-तो उसे पहले तो उसे ऐसा कहने का साहस ही न होता, कदाचित् कहता भी तो कृष्णजी उसे कब जाने देते? मगर उन्हे मालूम था कि नारद जी पक्के ब्रह्मचारी हैं, लँगोट के सच्चे हैं। नारदजी ऐसे पक्के ब्रह्मचारी थे कि अगर देवाङ्गना भी आकर उन्हें डिगाना चाहती तो वे अपने ब्रह्मचर्य से नहीं डिग सकते थे। सारांश यह है कि लौकिक दृष्टि से वेष का भी महत्व है, पर आध्यात्मिक दृष्टि से तो चारित्र का ही महत्व है।

जैनधर्म में किसी प्रकार के पक्षपात को स्थान नहीं है। वह गुणों की पूजा की प्रेरणा करता है। आचार्य ने कहा है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।

अर्थात्— मेरे हृदय में न तो महावीर स्वामी के प्रति पक्षपात है और न कपिल, सुगत आदि के प्रति द्वेषभाव है।

जैन धर्म के अनुसार जिसमें गुण हैं वही पूजनीय है ।

नारदजी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। स्वप्न में भी कभी उनके मन में विकार नहीं आया था। इसी कारण वे उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर सके । वे महाभाग्यवान् थे । उन्हें मैं तो कोटिशः वन्दन करता हूँ । मतलब यह है कि जैन धर्म के अनुसार आत्मा की शुद्धि होने से ही मुक्ति होती है और किसी भी उपाय से नहीं होती । यह वेष तो लोकप्रतीति के लिए है। किस साधु की आत्मा कितनी शुद्ध है या नहीं है, यह बात या तो वह स्वयं जानता है या केवली भगवान् जानते हैं। सर्व साधारण किसी दूसरे की आत्मशुद्धि को नहीं जान सकते । अतएव वेष को ही नमस्कार किया जाता है और यह उचित ही है। यही व्यवहार धर्म है । ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता । मैंने अपने पिछले व्याख्यान में एक अभव्य आचार्य का उदाहरण दिया था । वह साधुवेषी ही नहीं, बड़े साधुसमुदाय के नायक भी थे। परन्तु कैसे पहचाना जाय कि वह केवल वेषधारी ही हैं या सच्चे साधु हैं ? जिन भक्तों ने आचार्य समझ कर उन्हें नमस्कार किया, वे नहीं डूबे। उन्होंने तो आचार्य या साधु पदवी को ही नमस्कार किया । डूबेगा वही जो भगवान् की आज्ञा में न चलता हुआ भी, साधु के चारित्र का पालन न

करता हुआ भी साधु का वेप धारण करके जगत् को धोका देता है।

आपको मालूम ही है कि नकली कबूतर का रूप धारण करके एक देव राजा मेघरथ की गोदी में आकर पड़ा था। उन्होंने असली कबूतर समझ कर ही उस पर करुणा की। नकली कबूतर को भी असली समझ कर दया करने से राजा मेघरथ को वही लाभ हुआ जो असली कबूतर की रक्षा करने से होता है। इसी प्रकार आप किसी को असली और सच्चा साधु समझकर उसे वन्दना करते हैं और वास्तव में वह सच्चा साधु नहीं है तो भी आपको तो वही लाभ मिलने वाला है जो सच्चे साधु को वन्दना करने से होता है! हानि उसी की है जो असाधु होकर भी साधु के योग्य वन्दना को स्वीकार करता है।

अलबत्ता जब आपको मालूम हो जाय कि अमुक व्यक्ति वास्तव में साधु तो नहीं है फिर भी वह साधु का वेप धारण किये फिरता है, तो उसे साधु के योग्य वन्दना करना उचित नहीं है। जैसे उस राजा ने परीक्षा करके उन आचार्य को संघ से पृथक् कर दिया था, उसी प्रकार आपको भी करना चाहिए, जिससे साधुपदवी की पवित्रता बनी रहे और धर्म के नाम पर अव्यवस्था न फैलने पावे और साधु-वेप की प्रतीति भी बनी रहे।

केशी स्वामी ने वेप संबंधी चर्चा करके फिर व्रतों के संबंध में प्रश्न किया। कहा— भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में चार और भगवान् महावीर के शासन में पांच महाव्रत क्यों हैं ? उत्तर में गौतमस्वामी बोले— इस संबंध में बात यह है कि व्रतों में तो कोई अन्तर नहीं है सिर्फ उनके वर्गीकरण में अन्तर होने से

संख्या में अन्तर आ गया। हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, अदत्तादान न लेना और परिग्रह न रखना, यह पार्श्वनाथ-तीर्थ के चार यम हैं। भगवान् पार्श्वनाथ ने स्त्री को भी परिग्रह में गिनकर परिग्रह त्याग और स्त्री त्याग को एक ही व्रत कहा है, जब कि महावीर स्वामी ने स्त्री त्याग अर्थात् ब्रह्मचर्य को अलग और परिग्रह त्याग को अलग कह कर व्रतों की संख्या पाँच बतलाई है।

संख्या संबंधी भेद का कारण यह है कि भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य ऋजु और प्राज्ञ थे। ऋजु का अर्थ है सीधे-साधे। प्राज्ञ का अर्थ है बुद्धिमान्। जो बात जिस अभिप्राय से कही जाती थी, वे उसे उसी अभिप्राय से समझते थे और थोड़ा कहने से ही बहुत कुछ समझ लेते थे। वे साधु भगवान् की आज्ञा में खोटे तर्क वितर्क करके रास्ता नहीं निकालते थे। जैसे वकील कानून के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर, जैसे-तैसे अपने लाभ के लिए अर्थ खींचने की कोशिश करते हैं, वैसे वे मुनि नहीं करते थे। अतएव परिग्रह के त्यागी होने से ही वे स्त्री के भी त्यागी हो जाते थे। मगर समय का परिवर्तन हुआ तो साधुओं पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। अन्तिम तीर्थङ्कर के शिष्य ऋजु के बदले वक्र हो गये और प्राज्ञ के बदले जड़ हो गये। वे भगवान् के कथन में मन कल्पित तर्क वितर्क करके अपने आराम के लिये रास्ता निकालने वाले और जड़ बुद्धि हो गये। अतएव भगवान् को ब्रह्मचर्य व्रत की अलग स्थापना करनी पड़ी।

प्रथम तीर्थङ्कर के साधु ऋजु और जड़ थे। इस संबंध में बड़ों का एक उदाहरण दिया जाता है जिससे मालूम होगा कि

प्रथम तीर्थङ्कर के साधु कितने सीधे और कम समझ वाले होते थे। वह उदाहरण इस प्रकार है:—

एक जगह गुरु और चेला पधारे। आहार का समय आया तो गुरु की आज्ञा लेकर चेला गोचरी के लिये गया। वह एक गृहस्थ के यहाँ गया तो गरम-गरम बड़े बन रहे थे गृहस्थ ने उसे बड़े बहराए। बड़ों मे बड़ा अच्छा मसाला डाला गया था और सुहावनी गंध आ रही थी। चेलाजी ने रास्ते में विचार किया—बड़े अभी गरम है और उपाश्रय तक पहुंचते-पहुंचते ठंडे हो जाएँगे। फिर इनके खाने में कोई मजा नहीं रहेगा। उन्होंने पात्र में देखा कि ३२ बड़े हैं। फिर विचार किया-गुरुजी मुझे १६ बड़े देंगे ही, फिर इन १६ को मैं यहीं क्यों न खा लूं ? बस, चेले ने वहीं सोलह बड़े खा लिये। कुछ आगे चले तो फिर विचार किया-इनमें से भी गुरुजी आधे देंगे, तो वे आधे भी क्यों न खा लूं ? यह सोचकर उसने आठ बड़े फिर खा लिये। इसी प्रकार सोचकर फिर चार, फिर दो और फिर एक बड़ा खा लिया। अब उसके पात्र में सिर्फ एक ही बड़ा शेष रह गया। वही एक बड़ा लेकर वह गुरुजी के सामने पहूँचा। गुरुजी ने पूछा—चेला! ऐसा कौन दातार मिला जिसने केवल एक ही बड़ा बहराया ? तब निष्कपट चेले ने कहा— भगवन्! गृहस्थ ने तो बत्तीस बड़े दिये थे।, मगर मैंने ऐसा सोचकर खा लिये हैं और सिर्फ एक बड़ा बचा लाया हूँ।

गुरु बोले— अरे चेला! मुझे दिखलाए बिना तेरे गले कैसे उतर गये ? तब चेले ने बचे हुए एक बड़े को कर, उठा मुंह में डालते हुए कहा—भगवन्! इस तरह उतर गये!

यह देख कर गुरुजी ने कहा—आयुष्मन् ! आगे फिर कभी गुरु को दिखलाये विना कोई भी चीज काम में नहीं लाना। नहीं तो तीसरे महाव्रत में दोष लगता है।

चेला ने विनीत भाव से उत्तर दिया—अच्छा, भगवन् ! अब ऐसा ही किया करूंगा।

यह पहले तीर्थङ्कर के जमाने की बात है। उस समय के साधु भद्र परिणामी, निष्कपट और जड़ थे। जड़ता के कारण दोष लग जाने पर वे कभी छल-कपट करके उसे छिपाने का प्रयत्न नहीं करते थे। जितनी बात उन्हें समझा दी जाती उतनी ही समझते थे उस एक बात के आधार पर अधिक कल्पनाएँ नहीं कर सकते थे।

इसके पश्चात् भगवान् अजितनाथजी से लेकर पार्श्वनाथ तक के शिष्य निष्कपट और समझदार थे। वे थोड़े में ही बहुत समझ लेते थे।

अन्तिम तीर्थङ्कर के शिष्य वक्र और जड़ हैं। वे अपने मतलब के लिए रास्ता निकालने की फिराक में रहते हैं। कल्पना करो कि अगर ब्रह्मचर्य महाव्रत अलग न गिना होता और स्त्री को परिग्रह में ही शामिल रक्खा होता तो वे इस बात को लेकर अनेक तर्क-वितर्क करते। वे कहते—स्त्री पर ममत्त्वभाव रखना परिग्रह है। बिना ममत्त्व के स्त्री सेवन करने में क्या हानि है ? इस कुतर्क को ध्यान में रखकर भगवान् ने ब्रह्मचर्यव्रत की अलग प्ररुपणा कर दी है।

प्राचीन काल में राज्य की ओर से इतने व्यापक एवं विस्तृत कानून नहीं बने थे। मगर ज्यों-ज्यों तर्क-वितर्क बढ़ते गये

त्यों-त्यों कानून भी बढ़ते चले गये। ज्यों-ज्यों चोरबाजारी बढ़ती जाती है, कानून भी सख्त बनते जाते हैं। फिर भी लोग रास्ता निकाल लेते हैं।

मूल ध्येय और उसका मूल मार्ग सुरक्षित रखते हुए, उसकी साधना के नियम और उपनियम देश-काल के अनुरूप बदलते रहते हैं। उदाहरण के लिए गोचरी की बात लीजिए। पहले के साधु तीसरे पहर में आहार के लिए निकलते थे, मगर आज अगर तीसरे पहर निकलें तो आहार ही नहीं मिले। अतः एव श्रीसयंभवसूरि न कहा है:—

कालेण निक्खमे भिक्खू कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे॥

—श्रीदश०अ० ५ उ० २, गा० ४

देश-काल का खयाल रखकर काम करो। अकाल में गोचरी के लिए जाना उचित नहीं है। जिस देश-काल में आहार के के लिए जो उपयुक्त समय हो, उस देश-काल में उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिये। अगर साधु आज मध्याह्न के पश्चात् अहार के लिए निकलेगा तो अहार न मिलने के कारण उसके चित्त में संक्लेश होगा और गृहस्थ को भी लज्जित होना पड़ेगा और उस वस्ती की भी बदनामी होगी। अतएव जिस समय पर गृहस्थ को अहार देने की अनुकूलता हो वही समय गोचरी के लिए उपयुक्त है।

हाँ, तो गौतम स्वामी ने दोनों तीर्थङ्करों की प्ररुपणा में जो भिन्नता है, उसका कारण शिष्यों की कालप्रभाव से जनित मनो-

द्युति बतला कर उसका समाधान किया । केशी स्वामी के हृदय में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं था । अपनी बात को जैसे तैसे सिद्ध करने की भावना नहीं थी । वे सच्चे मुमुक्षु थे । अतएव गौतम स्वामी का किया हुआ समाधान उन्होंने स्वीकार कर लिया वे अपने समस्त शिष्यों के साथ भगवान् महावीर के शासन में सम्मिलित हो गए ।

भाइयो ! इन दोनों महापुरुषों के इस सम्मेलन से आज बहुत-सी बातें सीखी जा सकती हैं । पहली बात यही है कि आत्मकल्याण के मार्ग में किसी भी प्रकार का पक्षपात, दुराग्रह या कुतर्क नहीं करना चाहिए । सरलभाव से शुद्ध चित्त से, सत्य को ही अपनाने की तत्परता होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि जिनेन्द्र भगवान् की प्ररुपणा में से अगर कोई बात समझ मे न बैठे तो मन में अन्यथा कल्पनाएँ कर लेना उचित नहीं है । अधिकारी ज्ञानी पुरुषों से पूछकर उसका निर्णय कर लेना चाहिये । मनचाही गप्पें हाँकने से आत्मकल्याण नहीं हो सकता । ऐसा करने से दूसरों को भी हानि पहुंचती है तीसरी बात यह है कि देश-काल को देख कर संघ के अग्रगण्य महापुरुष जो भी निर्णय करें उसे आप सहर्ष स्वीकार करलें । भगवान् केशी स्वामी ने जब भगवान् महामीर स्वामी के संघ में सम्मिलित होने का निर्णय कर लिया तो वे अकेले ही उस संघ में सम्मिलित नहीं हुए, उनका विशाल शिष्य-परिवार भी, विना किसी विरोध के उनके साथ सम्मिलित हो गया । किसी भी शिष्य ने उनका विरोध नहीं किया । इसका परिणाम यह हुआ कि दो अलग-अलग हिस्सों में विभक्त श्रमण संघ एक हो गया । संघ की शक्ति बढ़ गई ।

जब बड़ी-बड़ी बातों के मतभेद को दूर करके केशी गौतम मुनि एक हो सकते हैं तो आज हमारे विभिन्न सम्प्रदाय एक क्यों नहीं हो सकते ? इन सम्प्रदायों में तत्त्वज्ञान संबंधी अथवा चारित्र संबंधी कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं है। अत्यन्त साधारण, नगण्य सी बातें भिन्न-भिन्न हो सकती है, पर उनके विषय में एकमत होना कोई कठिन बात नहीं है। हृदय में उदारता हो, सच्चा शासन प्रेम हो और संघ की शक्ति बढ़ाने की भावना हो तो आज ही एकता कायम हो सकती है। भाइयो ! इन महापुरुषों का अनुकरण करो समस्त संघ से मैं आग्रह करता हूँ कि वे केशी-गौतम संवाद से कुछ प्रेरणा ग्रहण करें और जैन संघ के इतिहास में एक नया महत्त्वपूर्ण पृष्ठ जोड़ें। किन्तु यह होगा तभी जब अभिमान कषाय का त्याग कर दिया जायगा। नम्रता आये बिना झुकना संभव नहीं है और झुके बिना संघ का संघठन भी किस प्रकार हो सकता है ?

मुनिवर की जोड़ प्यारी, श्री केशी गौतम अणगारी हो ।
मोटा अर्थ को निर्णय जो कीनो हुई समान समाचारी हो ।
चन्द सूरज सम प्रभा मुनियों का, सूरत मोहनगारी हो ।
चौथमल कहे दोनों मुनियों के, चरणे धोक हमारी हो ॥

भाइयो ! दोनों महामुनियों के मध्य अनेक प्रश्नोत्तर हुए। दोनों ने निर्णय करके एक समाचारी बना ली और जब समाचारी एक हो गई तो दोनों एक ही गच्छ में आ गये। आत्मा का कल्याण करना उनका प्रधान लक्ष्य था। वे अपनी आत्मा का उद्धार करने निकले थे। उन्हें यह मेरा और यह तेरा का पक्ष-

पात नहीं था। अपनी उत्तमता और दूसरे की हीनता प्रकट करने की क्षुद्र भावना उनमें लेश मात्र नहीं थी। जिनेन्द्र भगवान् के पावन शासन की प्रभावना वे अवश्य चाहते थे, जिससे कि भव्य जीवों का उद्धार हो सके। इस प्रकार के उच्च आशय से जो सम्मिलन होगा, उसमें असफलता के लिए अवकाश ही नहीं हो सकता।

साधुमार्गी समाज के मुनियों का एक सम्मेलन अजमेर में हुआ था और अब दूसरे सम्मेलन की भूमिका तैयार की जा रही है। परन्तु जिस दिन वह भूमिका कागजों के बदले अन्तःकरण में तैयार हो जायगी उसी दिन सम्मेलन सफल हो जायगा। मेरी आन्तरिक भावना है कि वह दिन शीघ्र आवे। केशी और गौत्तम के उत्तराधिकारी साधुगण उनसे कुछ सीखें और जिनशासन का बल बढ़ाने में निमित्त बनें।

भाइयो। गौत्तम स्वामी के शिष्य सुधर्मा स्वामी थे। इन्हीं सुधर्मा स्वामी के मुखारविन्द से जम्बूकुमार ने उपदेश सुना था।

जम्बूकुमार की कथा—

जम्बूकुमार पर सुधर्मा स्वामी के उपदेश का इतना गहरा असर कैसे पड़ गया? आप प्रतिदिन उपदेश सुनते हैं और सुनकर ज्यों के त्यों चले जाते हैं। आपके जीवन में कोई खास परिवर्त्तन होता हो, ऐसा दिखाई नहीं देता! मगर जम्बूकुमार एक बार ही उपदेश सुनकर विरक्त हो गये। इसका कारण यही हो सकता है कि वे पूर्वजन्म के सुन्दर संस्कार लेकर आये थे। उनके कर्म पतले पड़ गये थे। उन्हें शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त होना था। ऐसे

सौभाग्शाली मनुष्य ही धर्म की ओर उन्मुख होते हैं और शीघ्र ही अपना कल्याण कर लेते हैं। जिनकी आत्मा पाप-कर्मों से कलुषित है, जिनके गाढे कर्मों का उदय हो रहा है उन पर धर्मोपदेश का असर जल्दी नहीं हो सकता। जम्बूकुमार की निर्मल आत्मा पर सुधर्मा स्वामी के उपदेश का ऐसा पक्का रंग चढ़ा कि उनकी स्त्रियाँ लाख उपाय करके भी उसे धो न सकीं।

पाँचवीं स्त्री नभसेना ने कहा—उन दो स्त्रियों में से एक ने अधिक लालच किया तो उसकी दोनों आँखें फूट गईं और आखिर उसे जिंदगी से ही हाथ धोना पड़ा! लालच ऐसी ही हानिकारक चीज है। प्राणनाथ! आप भी लालच के फंदे में पड़ रहे हैं। संसार में हितैषी तो बहुत होते हैं, किन्तु आर्य नारी अपने पति का जितना हित चाहती है, उतना शायद ही और कोई चाह सके। इसलिए आप मेरी बात पर गम्भीरभाव से ध्यान दीजिए। मैं आपके वैराग्य का विरोध नहीं करती। मेरा कहना तो यही है कि उचित अवसर आने पर ही प्रत्येक कार्य ठीक तरह होता है और ठीक समय पर करने से ही करने वाले की शोभा बढ़ती है। अभी आपके साधु होने का समय नहीं आया है। समय आने दीजिए। फिर आप और हम सब साथ ही गृह त्याग कर आत्म कल्याण में लगेंगे।

नभसेना का वक्तव्य सुन कर जम्बूकुमार ने कहा—प्रिये! तुमने अपने कथन को पुष्ट करने के लिए जो उदाहरण दिया है, उसके फलितार्थ पर अगर अच्छी तरह विचार करो तो मालूम होगा कि वह तुम्हारे पक्ष को पुष्ट नहीं करता। उससे तो मेरे पक्ष की ही पुष्टि होती है। देखो, जिस स्त्री ने लालच किया और

लालच करके कपट किया, उसकी दुर्गति हुई। इसमें सन्देह नहीं कि लालच करने वाले की दुर्गति होती है। पर विचार तो करो कि लालच कौन कर रहा है ? क्या मैं लालच कर रहा हूँ ? मैं लालच को लात लगा कर, भोगों को ठुकरा कर अकिंचन अनगार बनने की तैयारी कर रहा हूं और तुम मुझ पर लालच करने का आरोप लगाती हो। अपने किसी दोष को या अपराध को स्वीकार न करना दुर्बलता है तो दोष या अपराध न होने पर भी उसे स्वीकार कर लेना भी एक प्रकार की दुर्बलता है। मैं दोनों प्रकार की दुर्बलताओं को हेय समझता हूँ।

इसके विपरीत तुम अपनी ओर दृष्टि डालो। तुम स्वयं संसार के भोगों का त्याग करने को तैयार नहीं हो और मेरे साधु बनने से तुम्हारे भोग भोगने में विघ्न उपस्थित होता है। क्या इसी कारण तुम मुझे नहीं मना कर रही हो ? अगर यह बात सच है तो क्या यह तुम्हारा लालचीपन नहीं है ? अतएव प्रिये ! वासनाओं से ऊपर उठ कर शुद्ध, चित्त से विचार करो। धर्म के आचरण करने का यही उपयुक्त अवसर है। इस अवसर को गँवा देने के पश्चात फिर दूसरा अवसर मिलेगा या नहीं, यह कौन जानता है ?

प्रिये नभसेना ! मैं भी एक उदाहरण देता हूँ। उसे ध्यान पूर्वक सुनो !

जितशत्रु नामक एक राजा था। किसी समय उसकी राजधानी वसन्तपुर में एक घोड़ों का व्यापारी आया। उसके पास कई अच्छे-अच्छे घोड़े थे। सब घोड़े राजा के सामने पेश किये गये। राजा ने उनमें से एक बहुत ही सुन्दर और सामुद्रिक-शास्त्र

के अनुसार शुभ चिह्नों से युक्त एक बछेड़ा खरीद लिया। बछेड़ा खरीद कर राजा ने उसी नगर के एक श्रावक-दीवान को सौंप कर कहा—इस बछेड़े को सुन्दर से सुन्दर चाल चलना सिखलाओ। इसकी चाल इतनी बढ़िया होनी चाहिये कि अगर इसे कपड़ा बिछाकर उस पर चलाया जाय तो कपडे मे सल न पड़े। साथ ही यह खराब रास्ते पर न चले, गंदगी पर पॉव न रक्खे और सचित्त वनस्पति पर होकर भी न चले। अगर तुम इसे ऐसा उत्तम सिखला दोगे तो इस पर बैठ कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

आगरे की तरफ एक मुसलमान था। वह घोड़े पर बैठ कर गॉव जाता तो शहर से बाहर होते ही लगाम ढीली कर दिया करता था घोड़ा जिस चाल से चलता, उसे उसी चाल से चलने देता था। वह भूल कर भी कभी चाबुक नहीं मारता था और न लगाम खींचता था। वह सोचा करता था—मैं इसे तकलीफ क्यों दूं? जैसी मेरी रूह है वैसी ही इसकी भी रूह है। पहले तो मैं घोड़े के ऊपर चढ़ता हूँ, यही न्याय नहीं है, फिर चढ़कर उसे सताना तो और भी बड़ा अन्याय है—बेइंसाफी है। भाइयो! किसी भी जाति में सब लोग एक सरीखे नहीं होते! कोई बेरहम होते हैं हो तो कोई रहमदिल भी होते हैं।

राजा के दीवान उस श्रावक ने बड़े प्रेम से बछेड़े को ट्रेनिंग दी। राजा ने जैसी ट्रेनिंग देने की हिदायत दी थी, वैसी ही ट्रेनिंग देकर उसे तैयार कर दिया।

जानवरों को जैसी ट्रेनिग देना चाहो वैसी दे सकते हो। सरकस के घोड़े, हाथी और शेर आदि अपने शरीर पर कैसा

कब्जा कर लेते हैं। यह सब ट्रेनिंग का ही फल है।

हाँ, तो जब उस बछेड़े को ट्रेनिंग दी जा चुकी तो दीवान ने एक दिन उसे राजा के सामने उपस्थित कर दिया। राजा ने स्वयं उसकी परीक्षा की। घोड़ा सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुछ दिनों बाद राजा ने समस्त जनता के सामने, ढिंढोरा पिटवा कर, घोड़े की सुन्दर चाल का प्रदर्शन करने का विचार किया। समय और स्थान नियत कर दिया गया। हजारों आदमी नियत समय पर वहाँ जा पहूँचे। जहाँ घोड़ा दौड़ाया जाने वाला था, उस जगह कपड़ा बिछवाया गया। घोड़ा उस पर दौडा और वेग के साथ दौड़ा। किन्तु कपड़े पर एक भी सलवट नहीं पड़ा। दर्शक लोग घोड़े की यह अनोखी चाल देखकर विस्मित और प्रसन्न हुए। राजा को भी बहुत प्रसन्नता हुई। राजा ने अपने दीवान जिनदास की सब के सामने मुक्त कंठ से प्रसंसा की। घोड़ा अश्वशाला के संरक्षक को सिपुर्द कर दिया गया।

धीरे-धीरे दूर देशों तक उस घोड़े की प्रशंसा फैल गई। एक राजा ने भी घोड़े की प्रशंसा सुनी और उसे प्राप्त करने के लिये वह लालायित हो गया। उसने अपने दीवान और दरबारियों को बुलाया और कहा—किसी तरह उस घोड़े को प्राप्त करना चाहिये। मगर लड़ाई किये बिना और लड़ाई में विजय प्राप्त किये बिना घोड़ा मिलना संभव नहीं है। अगर लड़ाई की जायगी तो एक घोड़े के लिये न जाने कितने मनुष्यों का खून-खच्चर हो जायगा। फिर भी क्या पता है कि जीत किसकी होगी ? अपने पास प्रबल शक्ति भी नहीं है कि जिस पर विजय कि आशा बांधी

जा सके। ऐसी स्थिति में वह घोड़ा किस उपाय से प्राप्त करना चाहिये ?

तब एक ने कहा - आपकी आज्ञा हो तो मैं उस घोड़े को उड़ा कर ला सकता हूँ !

राजा ने कहा—अच्छी बात है ले आओगे तो तुम्हें एक गांव जागीरी में मिलेगा।

वह आदमी चला और वसन्तपुर में आया। पूछता हुआ वह अश्वशाला के प्रवंधक के पास पहुँचा। अश्वशाला के प्रवंधक ने उसे अजनवी जान कर पूछा—भाई! कहाँ के हो और यहाँ कैसे आना हुआ।

आगन्तुक ने कहा—पेट पालने के लिये मारा मारा फिरता हूँ। सुना है, यहाँ के महाराज वड़े ही दयालु हैं। क्या यहाँ मुझे पेट भर अन्न पाने योग्य आजीविका मिल सकती है।

आखिर वह आदमी वहीं रहने लगा। उसने चित्त लगाकर मिहनत के साथ काम करना शुरु किया। थोड़े ही दिनों में वह सव का विश्वासपात्र वन गया। नौकर लोग यही समझते थे कि रोटियों के वदले काम करता है तो क्या महँगा है। उस जमाने में आज की तरह अन्न महँगा नहीं था। अतएव एक आदमी का खाना-खिलाना किसी को भारी नहीं पड़ता था। परन्तु उसके मन की बात किसे मालूम थी ? उसकी योजना वड़ी लम्बी थी और चतुराई से उसने अपना भेद किसी पर प्रकट नहीं होने दिया था।

कुण जाने पराया मन की, मन की तन की लगन की रे ।
चोर तो रैन अंधेरी चावै, आशा करे पर धन की रे ॥

धूर्त और कपटी के मन की बात कौन जान सकता है ? सब नौकर चाकर उस पर पूरा भरोसा करने लगे और वह घोड़े को इधर-उधर फिराने के लिये भी ले जाने लगा ।

जो आदमी मकान का बहुत किराया दे और बच्चों को खूब मिठाई खिलावे, उससे सावधान रहना चाहिये । समझ लो कि वह धोका देगा। धूर्त लोग मीठा बोल कर गजब कर डालते हैं। ऐसे दगावाज जो न करें सो थोड़ा है।

दगाबाज तीनों नमे, चीता चोर कमान ।
पहले तो वे नम करें, पीछे हरते प्राण ।

एक बार वह काठी बाँध कर और घोड़े पर सवार होकर चला। आज उसने अपना प्रयोजन सिद्ध करने का निश्चय किया था। मगर वह घोड़े को जिस रास्ते ले जाना चाहता था वह रास्ता खराब था। अतएव घोड़ा अड़ गया और वह आगे नहीं चला। सवार ने उसे चाबुक मारा, फिर भी घोडा टस से मस नहीं हुआ।

यह सब घटना किसी ने देख ली। घुडसाल में खबर दे दी गई। वहाँ के नौकर दौड़े-दौड़े आये। वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने देखा कि घोडा खडा है और वह आदमी नौ दो ग्यारह हो गया है।

नौकर घोड़े को लौटा लाये। राजा जितशत्रु के पास यह समाचार भेजा गया । राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—

वास्तव में यह घोड़ा सराहनीय है, जिसने चाबुक खाने पर भी अपनी चाल नहीं छोड़ी !

उस दिन से घोड़े की महिमा दुगुनी हो गई। नौकरों की तनख्वाह भी दूनी करदी गई। घोड़े की हिफाजत अधिक होने लगी और इस कारण उसकी रौनक बदल गई।

जम्बूकुमार कहते हैं—घोड़े के इस उदाहरण पर जरा बारीकी से, ध्यानपूर्वक विचार करो। यह आत्मा घोड़े के समान है और तीर्थङ्कर भगवान् राजा के समान हैं और उन राजा के दीवान के समान सुधर्मा स्वामी हैं। जिनराज ने भव्य जीवों की आत्मा सुधर्मा स्वामी के जिम्मे कर दी है कि वे इस बात की सावधानी रक्खे कि वह कुपथ में न जाने पावे। अतः सुधर्मा स्वामी ने सम्यक्त्व रूपी सन्मार्ग पर चलने और मिथ्यात्व रूप कुपथ पर न चलने की शिक्षा दी है।

इस शिक्षा की बदौलत आत्मा की प्रशंसा होने लगी तो दूसरे राजा अर्थात् मोह ने आत्मा रूपी अश्व को अपने कब्जे में करने की कोशिश की। उसने कामदेव रूपी धूर्त पुरुष को नियुक्त किया कि वह आत्मा-अश्व को किसी प्रकार मेरे अधीन कर दे। कामदेव रूपी पुरुष बड़े अभिमान से आया कि मैं सब की आँखों में धूल झोंक दूंगा, अपने कौशल से सब को मुग्ध कर लूँगा और आत्मा रूपी अश्व को आपके सिपुर्द कर दूंगा।

पर इस आत्मा ने तो सुधर्मा स्वामी जैसे कुशल शिक्षक की शिक्षा पाई है। उन्होंने सिखला दिया है कि अगर कोई चाबुक का प्रहार करे तो भी कभी खराब रास्ते पर मत जाना। अतएव मैं अब भोगोपभोगों के गंदे रास्ते पर नहीं चल सकता।

जैसे उस घोडे पर कोड़े की मार पड़ी थी, उसी प्रकार तुम मुझे अपने हावभाव दिखला कर और प्रीतिपूर्ण वचन कह कर रिझाना चाहती हो। कोड़े की मार प्रतिकूल उपसर्ग है और यह अनुकूल उपसर्ग है। इतना अन्तर होने पर भी उपसर्ग दोनों हैं। प्रतिकूल उपसर्ग की अपेक्षा अनुकूल उपसर्ग अधिक दुस्सह होते हैं। प्रतिकूल उपसर्गों को सहन कर लेना सरल है किन्तु अनुकूल उपसर्गों को सहन करना कठिन है।

जैसे घोड़ा कोड़ा खाकर भी खराब रास्ते पर नहीं चला, उसी प्रकार मैं भोगोपभोगों के मार्ग पर नहीं चल सकता। भोगोपभोगों का मार्ग बड़ा ही चक्करदार है, विषम है, और नरक एवं निगोद तक जाने वाला है। इस मार्ग पर आत्मा अनादिकाल से चल रहा है, मगर उसे न शान्ति मिली है, न तृप्ति मिली है, न सुख मिला है, न सन्तोष मिला है! इतना ही नहीं, उलटी अशान्ति, अतृप्ति, दुःख एवं असन्तोष की ही प्राप्ति हुई है! इन भोगोपभोगों ने आत्मा के प्रभुत्व को लुप्त कर दिया है, ऐश्वर्य को मिटा दिया है। अनन्त आनन्द, जो आत्मा का नैसर्गिक गुण है इन्हीं भोगों के प्रताप से आत्मा को नहीं प्राप्त हो रहा है। संसारी जीव इनकी तृष्णा में पड़ कर अपने ज्योतिर्मय-अनन्त प्रकाशमय-स्वरूप को भूल गया है। इन्द्रियों के विषय इन्द्र के समान आत्मा को क्रीत दास बनाने वाले हैं। सुधर्मा स्वामी के असीम अनुग्रह से मैंने अब असलियत समझ पाई है। अब यह भोग मुझे निस्सार, निस्वाद और विषमय प्रतीत होते हैं। मैं इनके चक्कर में पड़ने को तैयार नहीं हूँ। मैं तुम्हारा सच्चा कल्याण चाहता हूँ और इसीलिए कहता हूँ कि तुम भी इस सचाई को समझो। तुम भी उसी मार्ग पर चलने को तैयार हो जाओ, जिस

पर मैं चलना चाहता हूँ। वही सुख का मार्ग है, वही महामंगल का मार्ग है, उन मार्ग पर चलने से तुम्हारी आत्मा दिव्य ज्योति को प्राप्त कर सकेगी। प्रिये। अपने अक्षय और अनमोल भंडार को लुटा कर फूटी कौड़ी की चाहना करना बुद्धिमानों को शोभा नहीं देता।

ज्यों ही मालूम हुआ कि वह धूर्त आदमी घोड़े को चुरा कर ले जाना चाहता है, उसी समय राजा के कर्मचारी दौड़े। उनके पहुंचते ही वह धूर्त भाग गया और उन्होंने घोड़े पर कब्जा कर लिया। इसी तरह जब आत्मा में वीतराग भगवान् के उपदेश के शुभ विचार आते हैं, तब कामदेव रूपी धूर्त चौट्टा भाग जाता है। और आत्मा अपने अधीन हो जाता है।

जब घोड़ा कुमार्ग पर नहीं चला तो उसकी चौगुनी बड़ाई हो गई। इसी प्रकार अगर मैं काम के द्वारा प्रेरित होकर कुपथ पर पैर नहीं धरूँगा तो मेरा भी संसार में यश होगा। हालांकि यश की इच्छा मुझे नहीं है, मैं तो सिर्फ आत्मा का कल्याण ही चाहता हूँ, फिर भी जो कुमार्ग पर नहीं जाते और सुमार्ग पर ही चलने का सुदृढ़ संकल्प किये रहते हैं, उनका यश अनायास ही जगत् में फैल जाता है।

भाइयो। जम्बू कुमार के कथन पर गौर कीजिए। आपने भी चातुर्मास में अनेक प्रकार के त्याग किये हैं। उपदेश सुन कर और तत्कालिक भावुकता में आकर नहीं, मगर सोच-विचार कर त्याग एवं नियम को स्वीकार करना चाहिये। एक वार जो त्याग अपना लिया, उसे फिर तोड़ देना अच्छा नहीं है। प्रतिज्ञा भ्रष्ट होना तुच्छ और अप्रामाणिक लोगों का काम है। सत्त्ववान्

व्यक्ति जिस वस्तु का त्याग कर देता है, उसे फिर किसी भी अवस्था में ग्रहण करने को उद्यत नहीं होता। जो अपने त्याग से च्युत होता है, वह कमीना समझा जाता है। रथनेमि अपनी प्रतिज्ञा से जब भ्रष्ट होने को तैयार हुए थे, तब महासती राजीमती ने कितने कठोर शब्दों में उनकी भर्त्सना की थी। उन्होंने कहा था—

> धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
> वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥

अरे अपयश की कामना करने वाले! तुझे धिक्कार है। तू असंयममय जीवन के लिए वमन किये हुए को फिर से पी जाना चाहता है। इससे तो तेरी मृत्यु हो जाना ही श्रेयस्कर है।

कितने कटुक शब्द हैं। परन्तु रोग जब भयानक हो तो कटुक दवा ही असर करती है। जब बीमारी असाध्य प्रतीत होती हो तो वैद्य मीठी दवा खोजने की चिन्ता नहीं करता। वह किसी भी औषध से रोगी को नीरोग करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। इसी में उसकी दयालुता है।

मतलब यह है कि ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा का निर्वाह करना ही वीर-धीर पुरुषों का परम कर्त्तव्य है। अपने शुभ संकल्प से गिर जाने में कायरता है, निर्बलता है। हाँ, अगर कोई अशुभ संकल्प किया हो, पापमय विचार आया हो, तो उसे त्याग देना ही कल्याणकारी है! अत आपने इस चौमासे में या किसी भी अन्य अवसर पर जो प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की हों, जिस नियम को स्वीकार किया हो, उस पर दृढ़ रहिए। मन की दुर्बलता मनुष्य

को पतित कर देती है। आप उस दुर्बलता के शिकार न बनें। कभी मन में कमजोरी न आने दें। अपने आप पर श्रद्धा रक्खें। आपके शुभ संकल्प में अनन्त सामर्थ्य है और समस्त बुराइयों को जीत लेने की शक्ति है, इस गुरुमन्त्र को आप कभी मत भूलना। जब कभी चित्त में विकृति पैदा हो, उसी समय आत्मा पर श्रद्धा रखते हुए, अपनी शक्ति पर विश्वास रखते हुए उसे खदेड़ दीजिये। जैसे दूसरों की बुराई के सामने आप झुकना पसन्द नहीं करते, उसी प्रकार अपनी बुराई के सामने झुकना भी आपको नापसंद होना चाहिए। जिस प्रकार दूसरे के अवगुणों से आप घृणा करते हैं, उसी प्रकार अपने अवगुणों के प्रति भी घृणा रक्खो। सावधान रहो, मन को सावधान रक्खो। ऐसा करने से थोड़े ही दिनों में आपका मन रूपी अश्व पूरी तरह आपके वश में हो जायगा और बुराई से बचने की आपकी शक्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जायगी। फिर आपका मार्ग सरल हो जायगा और कदाचित् गृहस्थी का त्याग न करोगे तो भी आपका कल्याण का पथ सुगम बन जायगा। इस बात पर सन्देह न करना।

जम्बूकुमार अभी नवयुवक हैं। अभी-अभी उनका विवाह हुआ है। साधु बनने को तैयार हैं मगर अभी तक साधु बने नहीं हैं—गृहस्थ ही है। फिर भी उनकी इस दृढ़ता का मूल क्या है? उनमें यह दृढ़ता, जो अनेक मुनियों में भी मुश्किल से हो सकती है, कहाँ से आई है? सुधर्मा स्वामी ने उन्हें संसार का स्वरूप अवश्य समझाया था, मगर यह नहीं कह दिया था कि तुम किसी के समझाये समझना नहीं, किसी के लोभ लालच में आना नहीं और अपनी बात पर पक्के रह कर साधु बन ही

जाता ! फिर भी जम्बूकुमार अपने संकल्प पर चट्टान की तरह अडिग हैं। संसार की सब से बड़ी मोहक शक्तियाँ उन्हें डिगाने में कोई ओर-कसर नहीं रख रही हैं, मगर जम्बूकुमार हैं जो समस्त मोह-ममता और प्रलोभन को मानो परास्त कर चुके हैं। मोह का एक भी बाण उनके हृदय को स्पर्श तक नहीं करता। वास्तव में यह शक्ति जंबूकुमार के ही शुभ संकल्प की अजेय शक्ति है, जिसके सामने संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्ति भी निष्प्रभ हो गई है। इसे कहते हैं संकल्प की दृढता ! यह है आत्मा का असली बल ! जब यह दिव्य और प्रबल आत्मबल जागृत हो उठता है तो समस्त अशुभ संकल्प रूपी निशाचर भाग खड़े होते हैं

जम्बूकुमार में ही यह आत्मबल या संकल्पशक्ति थी और आप में नहीं है, ऐसा अगर आपका खयाल है तो समझना कि अभी आप अज्ञान अवस्था में पड़े हैं। वह अज्ञान भी इतना गंभीर है कि आपने अपने आपको भी नहीं पहचान पाया है। अरे भोले ! तुझमें वही शक्ति विद्यमान है जो सिद्ध परमात्मा में है। तेरा आत्मबल तीर्थङ्करों के आत्मबल से रंच मात्र भी न्यून नहीं है। तेरा सामर्थ्य अप्रतिहत है। तू उसे पहचान तो सही ! तेरे दोनों नेत्र बाहर की तरफ ही देखा करते हैं, इसी से तू अपने आपको देख नहीं सकता। जरा देर के लिये अपने नयनों को अपनी ओर घुमाकर तो देख वहाँ कितना वैभव, कितना ऐश्वर्य, कितनी शक्ति और कैसी ज्योति विद्यमान है ! अरे, उस भीतर के अनुपम और आश्चर्यजनक दृश्य को एक बार भी देख लेगा तो तुझे संसार के सुन्दरतम दृश्य भी फीके दिखाई देने लगेंगे। तेरी प्रचण्ड शक्ति के सामने तेरे शत्रु क्षण भर भी नहीं ठहर सकते। तू उसे पहचान ले।

जम्बूकुमार ने अपने आपको पहचान लिया था। उन्हें अपने ही भीतर अनन्त सौन्दर्य के दर्शन हुए और उस सौन्दर्य के समक्ष भौतिक सौन्दर्य फीका नजर आने लगा। तब वे किसी के कहने पर कैसे उस पर रीझते ? उन्होंने साफ कह दिया—मैं भोगों के कीचड़ में नहीं फँस सकता। आत्मा के स्वाभाविक सुख के सामने नारी का सुख उपहासास्पद है और आत्मा के सौन्दर्य के आगे नारी का सौन्दर्य विद्रूप है!

जंबूकुमार की विचारधारा अगर आपके हृदय में एक वार भी उत्पन्न हो जायगी तो आपको भी आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा। *

ता० २३-६-४८



* गुरुदेव ने इस दिन प्रासङ्गिक रूप से 'वरसा दे राम ! पानी' यह गीत व्याख्यान में फरमाया था और उसी दिन शाम को पाँच वजे पानी वरसना शुरु हो गया ! कौन कह सकता है कि गुरुदेव को वचनसिद्धि प्राप्त नहीं थी ?



खेयन्नए से कुसले महेसो

(महामन्त्र का दिव्यचमत्कार)

()—()—()—()

स्तुतिः--

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानम्,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके गुण कहां तक गाये जाएँ ?

जब भगवान् ग्राम, नगर, पुर, पाटन आदि में विचरण करते थे तो देवगण आकाश में एक दिव्य सिंहासन लेकर चलते

थे। उसी सिंहासन का यहाँ उल्लेख किया गया है। वह दिव्य सिंहासन मणियों की किरणों के समूह से चित्र-विचित्र था। उस पर भगवान् ऋषभदेव का स्वर्ण-वर्ण का देदीप्यमान देह इस प्रकार सुशोभित होता था, जैसे ऊंचे उदयाचल पर्वत पर किरणों से युक्त सूर्य का बिम्ब सुशोभित होता है।

तीर्थङ्कर भगवान् पूर्ण त्यागी एवं वीतराग होते हैं। किसी भी प्रकार की कामना उन्हे स्पर्श नही कर सकती। कामना मोहनीय कर्म के उदय से होती है और तीर्थङ्कर भगवान् पूर्ण निर्मोह दशा को प्राप्त कर चुके होते हैं। ऐसी स्थिति में छत्र, चामर या सिंहासन आदि की चाह उन्हें नहीं हो सकती। किन्तु देवगण भक्ति से प्रेरित होकर ही अष्ट प्रातिहार्यों का निर्माण करते हैं। ऊपर सिंहासन का जो वर्णन किया गया है, वह भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

भगवान् ऋषभदेवजी भी पूर्ण योगीश्वर थे। तीर्थङ्कर नाम कर्म का क्षय करने के लिये, सर्वथा निष्काम भाव से उन्होंने धर्म का उपदेश किया। और जो बात भगवान् ऋषभदेव के संबंध में है वही सब तीर्थङ्करों के विषय में समझनी चाहिए।

भगवान् जब संयम तथा तप के द्वारा केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त करके अनन्त ज्ञानी और अनन्तदर्शी हो गये, तब उन्होंने अखिल चराचर संसारी प्राणियों को दुःखमय स्थिति में देखा। उन्होंने केवल ज्ञान के द्वारा यह भी जान लिया कि इन अज्ञान जीवों के दुःख का वास्तविक कारण क्या है? मालूम हुआ कि पाप करने से यह जीव दुःख के पात्र बने हैं। यह जानकर, अनन्त करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने जगत् में यह

प्रकाशित किया कि संसारी जीव चाहे जानें या न जानें, उनके दुःखों का मूल पाप है। अतएव जो दुःखों से बचना चाहता है उसे पाप से बचना चाहिये।

भगवान् की महिमा का वर्णन करते हुए सुधर्मा स्वामी कहते हैं:—

खेयन्नए से कुसले महेसी,
अणंतणाणी य अणंतदंसी।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहा॥

—सूयगडांग, अ० ६, गा० ३.

अर्थात् श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्यवर्ग से कह रहे हैं—भगवान् तीर्थङ्कर संसार के प्राणियों के दुःख को और उसके मूल कारणों को जानते थे, वे कुशल अर्थात् अष्ट विध कर्मों को समूल नष्ट करने वाले थे, सदा सर्वत्र उपयोग रखने वाले थे, अनन्त-ज्ञानी और अनन्त-दर्शी थे, यशस्वी थे और भवस्थ केवली दशा में जगत् के लोचन-पथ में स्थित थे। उन भगवान् के धर्म को और उनको धीरता को तुम समझो।

इस गाथा में सर्व प्रथम 'खेयन्नए' विशेषण दिया गया है। टीकाकार ने इसके दो अर्थ किये हैं—खेदज्ञ अर्थात् जगत् के जीवों के दुःख को जानने वाले और क्षेत्रज्ञ अर्थात् लोक और अलोक रूप आकाश को जानने वाले।

आकाश अनन्त, असीम और अपरिमित है। उसे अनन्तानन्त योजन का कहें तब भी अन्त नहीं आ सकता। आकाश सर्वत्र है, लोक और अलोक में व्याप्त है। अनन्त आकाश के बीच सम्पूर्ण लोक वैसा ही है जैसे विशाल सागर के मध्य में जल का एक बिन्दु! सागर कितना ही विशाल क्यों न हो, मगर उसकी चारों ओर सीमाएँ होती हैं, किन्तु आकाश की कहीं भी सीमा नहीं है। आकाश पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे सभी दिशाओं में असीम है। आकाश का कहीं भी ओर-छोर नहीं है। मगर भगवान् केवली का ज्ञान आकाश से भी अधिक व्यापक है। सम्पूर्ण लोकाकाश और अलोकाकाश उनके ज्ञान में समाया हुआ है षटद्रव्य रूप अखिल लोक भी केवल ज्ञान में समाया हुआ है। इस प्रकार भगवान् अनन्त ज्ञानी होने के कारण समस्त क्षेत्र-आकाश को जानते हैं।

भगवान् जगत्वर्त्ती जीवों के खेद अर्थात् दुःख को जानते हैं। प्राणी जिन दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं, उनका मूल और वास्तविक कारण क्या है यह बात भगवान् ने जानी और अनन्त दया से प्रेरित होकर उससे बचने का उपाय बतलाया।

मनुष्य के पेट में पीड़ा उत्पन्न हो जाय तो वह कह देता है और उसके कहने से दूसरों को उसकी पीड़ा का पता चल जाता है। किन्तु चार-छः महीने के बालक को यदि पीड़ा हो तो वह कह नहीं सकता। वह रोता है, चिल्लाता है और तड़फता है। उसकी इन चेष्टाओं से अनुमान लगा लिया जाता है कि बालक को कोई कष्ट हो रहा है। इससे भी आगे चल कर देखे। गाय, भैंस, घोड़ा आदि किसी पशु को जब कोई पीड़ा होती है

तो वह न कह सकता है और न मनुष्य की भांति रोता-चिल्लाता है। पर वह खाना-पीना बन्द कर देता है और अनमना दिखाई देता है। इससे उसकी पीड़ा का अनुमान लगाया जाता है अगर किसी कीडे-मकोड़े को कष्ट हो रहा हो तो वह चलना फिरना बन्द कर देता है और इस चेष्टा से उसके कष्ट को समझ लिया जाता है।

परन्तु एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के कष्ट को किस प्रकार समझा जाय ? वे न कह सकते हैं, न रो-चिल्ला सकते हैं, न उनके खाना-पीना बंद कर देने का पता चल सकता है और न वे बेचारे चलते-फिरते ही हैं, जिससे उसके बन्द होने से उनके कष्ट का अनुमान किया जा सके। उन मूक और असहाय प्राणियों के कष्ट को कौन जानता है ? ऐसे जीवों के खेद को अर्थात् कष्ट को तो केवल ज्ञानी ही जान सकते हैं। यही कारण है कि स्थावर जीवों की दया करने का कथन सिर्फ केवलज्ञानियों ने ही किया है। जगम जीवों की दया करने का स्थूल उपदेश तो और जगह भी पाया जाता है, मगर स्थावर जीवों की दया का उपदेश सिर्फ तीर्थंङ्करो की वाणी में ही उपलब्ध होता है। जिसने उन अव्यक्त चेतना वाले स्थावर जीवों को जीव के रूप में ही नहीं जान पाया, वे उनके कष्टों को कैसे जानते ? और जब उनके कष्टो को नहीं जान सके तो फिर उनकी दया पालने का उपदेश तो दे ही कैसे सकते थे ?

प्राचीन काल के वैदिक धर्मावलम्बी लोगों मे हिंसा का बहुत प्रचार था। वे देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्ग पाने के लिए

पशुओं की वलि दिया करते थे । लौकिक उपद्रवों की उपशांति के लिये भी पशुओं के प्राण लिया करते थे और सम्पत्ति आदि प्राप्त करने के वास्ते भी प्राणियों का वध करने में संकोच नहीं करते थे। भगवान् महावीर के समय तक यह रिवाज बड़े जोर के साथ चालू था । हजारों ही नहीं लाखों पशु देवताओं के आगे तलवार के घाट उतार दिये जाते थे । ऐसी स्थिति में यह तो आशा ही कैसे की जा सकती थी कि वे स्थावर जीवों की दया का पालन करते ! जिन्हें पंचेन्द्रिय जीवों का रक्त वहाने में झिझक नहीं होती, वे एकेन्द्रिय की हिंसा करने से कब चूक सकते हैं ? अतएव उनकी वात छोड़िए ।

भगवान् महावीर के समकालीन और कुछ समय तक संभवतः जैन परम्परा में दीक्षित रहने वाले महात्मा बुद्ध के यज्ञ-याग में होने वाली पंचेन्द्रिय पशुओं की हिंसा का तो विरोध किया, मगर एकेन्द्रिय जीवों के कष्ट को वह भी नहीं समझ सका। बुद्ध ने स्वयं स्वीकार किया था कि निर्ग्रन्थ 'नायपुत्त' अर्थात् महावीर अरिहन्त हैं, सर्वज्ञ हैं, मैं जानता हूँ। इसी कारण वे एकेन्द्रिय जीवों के खेद को भी समझने में समर्थ हो सके।

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी और बौद्ध धर्म के आद्य संस्थापक बुद्धदेव एक ही समय में हुए हैं । दोनों का जन्म भी एक ही प्रांत में हुआ है और प्रधान कार्यक्षेत्र भी प्रायः एक ही रहा है। फिर भी जैन धर्म सिर्फ भारत वर्ष में सीमित रहा और बौद्ध धर्म भारतवर्ष से वाहर चीन, जापान, वर्मा, श्याम आदि देशों तक पहुँच गया । इसका कारण यह था कि भारत में, प्राचीनकाल में मजहवी झगड़ा हुआ था और वह

हिन्दु-मुस्लिम दंगों की भांति अल्पकालीन नहीं, वरन् लम्बे समय तक चलता रहा। उसमें खास तौर पर शैव राजाओं ने भी वहुत भाग लिया था। हजारों और लाखों वौद्ध एवं जैनों को कत्ल कर दिया गया था। जब राजा स्वयं अत्याचार पर उतारु हो जाय तो रोकने वाला कौन। और वह अत्याचार जल्दी रुके भी कैसे? जैन साधुओं के नियम इतने कठिन थे कि वे धर्मभूमि भारत को त्याग कर अन्य देशों में नही जा सकते थे। अतएव वे कठिन से कठिन परिस्थतियों का सामना करते हुए भी, इसी देश में वने रहे। मगर वौद्ध भिक्षुओं के नियम इतने कठिन नहीं थे, अतएव वे अत्याचारों को सहन न करके विदेशों में चले गये। वहाँ उन्होंने वौद्ध धर्म के प्रचार की नींव डाली।

वौद्धधर्म में, जैनधर्म की भांति मांस-भक्षण की सख्त मनाई नहीं है। वौद्ध गृहस्थों की वात जाने दीजिए वौद्ध भिक्षु भी मांस खाने से परहेज नहीं करते। ऐसी स्थिति मे मांस भक्षी देशों में विचरने में उन्हे कोई खास आपत्ति नहीं होती थी। अगर जैन मुनि वहाँ जाते तो उन्हें शुद्ध भिक्षा ही न मिलती और नतीजा यह होता कि निराहार रहकर उन्हे प्राण दे देने पड़ते।

इसके अतिरिक्त जैन साधुओं की प्रकृति में कष्टसहिष्णुता की विशेषता पहले ही से चली आई है। भगवान् महावीर ने अपने साधक-जीवन में घोर से घोर कष्ट सहन किये थे। संसार के इतिहास में भगवान् महावीर जैसा कष्टसहिष्णु दूसरा कोई महापुरुष दिखाई नहीं देता। इस कारण उनका नाम यदि महावीर है तो यह उपयुक्त ही है। भगवान् महावीर की सहनशीलता जैन मुनियों को विरासत में मिली थी। अतएव

वे समस्त कष्टों को वीरता और धीरता के साथ सहन करते रहे और अपने नियमों पर दृढ़ रहे। यही कारण है कि इस देश में जैन मुनियों की अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है।

भगवान् महावीर ने केवलज्ञान द्वारा समस्त जीवों के खेद को जान कर उनकी दया पालने का उपदेश दिया था। केवलज्ञान होते ही उन्होंने कहा—

मा हण, मा हण !

अर्थात्—अरे, किसी भी प्राणी का हनन मत करो, मत करो भगवान् ने बतलाया कि 'सव्वेसिं जीवियं पियं' अर्थात् जैसे तुम्हें अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही दूसरे समस्त जीवों को अपना-अपना जीवन प्रिय है। तुम्हें सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है तो दूसरों को भी सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है।

कई लोग आज भी कहते हैं कि अपने खाने पीने और ऐश-आराम के लिए किसी जीव को मारने, काटने में कोई दोष नहीं है ! भाइयो ! इनकी भी समझ देख लो ! अगर इस नियम को सही मान लिया तो इस भूतल पर खून की नदियां वहने लगें ! अपनी सुख-सुविधा के लिए सभी, सभी को मार डालना चाहेंगे। गरीब अमीरों को मारेंगे, सेवक स्वामी के प्राण ले लेगा, सासू बहू की गर्दन उतार लेना चाहेगी और बहू उससे पहले ही सासू की कपाल क्रिया कर देगी ! प्रत्येक सबल, निर्बल को मार डालने को तैयार हो जायगा। ऐसी भयानक स्थिति में संसार मे क्या शान्ति रह सकेगी ? यह जो अमन-चैन आज दिखाई देता है,

वह सब अहिंसा का ही प्रताप है। मनुष्य के अन्तःकरण में करुणा का भाव आज भी मौजूद है और इसी कारण आज मानव जाति शान्ति का स्वास ले सकती है। जिस दिन यह विचार सर्वसाधारण जनता के दिल में घर बना लेगा। कि अपने सुख के लिए दूसरे को मारने-काटने में कोई दोष नहीं है, उसी दिन यह पृथ्वी नरक के समान बन जायगी। गनीमत यही है कि जीव मात्र में करुणा के कुछ न कुछ कण विद्यमान रहते ही हैं।

बकराईद आ रही है और इस अवसर पर लाखों बकरे कत्ल कर दिये जाएँगे। फिर भी कहते हैं कि रहम रक्खो।

दशहरा भी हिन्दुओं की ईद है इस दिन भी हजारों बकरे और भैंसे मार डाले जाते हैं।

कितनी अज्ञानदशा है। जीव सृष्टि का राजा मनुष्य आज भी कितनी गंभीर मूढता के महातिमिर में डूबा हुआ है। वह समझता है कि निरपराध भैंसों और बकरों की हत्या उसे स्वर्ग में भेज देगी! कभी-कभी यह मूढ़ता इतनी प्रचण्ड हो जाती है कि लोग मनुष्य का वलिदान देने तक से नहीं चूकता। कुछ वर्षों पहले जयपुर में एक लड़के को बलि चढ़ा दिया गया था और वह भी ब्राह्मणों के द्वारा। ऐसी घटनाएँ जब-तब घटित होती रहती हैं। यज्ञ की हिंसामय परम्परा यद्यपि अब बहुत अंशों में बंद हो गई है और जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त का लोगों पर गहरा असर पड़ा है, फिर भी बहुत प्राचीनकाल के संस्कार अब भी कभी-कभी उभर आते हैं और अज्ञान-लोग अनर्थ कर डालते हैं। वास्तव में गहरे घुसे हुए संस्कारों का दूर होना बड़ा कठिन होता है।

प्राचीन काल में भारतवर्ष में हिंसा की परम्परा कितनी उग्र और भयानक रूप धारण कर चुकी थी, जिसका भगवान् महावीर ने सफल विरोध किया था, यह बात समझने के लिये एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। वह इस प्रकार है:-

श्रेणिक राजा जब जैन धर्म का अनुयायी नहीं बना था, तब उसने एक महल बनवाना शुरु किया। मगर दिन भर मजदूर उसकी दीवार खड़ी करके जाते और रात्रि में गिरकर वह बराबर हो जाती दूसरे दिन फिर दीवार बनाई जाती और फिर रात को वही हाल होता, ऐसा होते-होते कई दिन बीत गये। तब राजा ने पण्डितों से पूछा-महल की दिवार प्रत्येक रात्रि में किस कारण गिर जाती है? और इसको गिरने से रोकने का क्या उपाय है? पण्डितों ने अपने पोथी-पत्रा सँभाल कर उत्तर दिया- पुरुष के बत्तीस लक्षणों से युक्त एक बालक की बलि दी जाय अर्थात् नरमेध यज्ञ किया जाय तो महल की दीवार गिरने से रुक सकती है।

बस, फिर क्या था। राजा को अपना महल खड़ा करना था उसे किसी बालक को जिंदा आग में जला देने में कोई संकोच नहीं हुआ। उसने नगर में घोषणा करवा दी- मैं किसी के बालक को जबर्दस्ती नहीं लेना चाहता। यदि कोई अपनी इच्छा से बत्तीस लक्षणों वाले अपने लड़के को देना चाहे तो दरबार में हाजिर करे। उसे लड़के की तौल का सोना दिया जायगा।

एक गरीब ब्राह्मण ने राजा की यह घोषणा सुनी। उसके चार लड़के थे और सब से छोटे लड़के का नाम अमरकुमार था।

वह बत्तीस लक्षणों से सम्पन्न था। ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र था। सारा परिवार दरिद्रता के दारुण दुःख से दुखित था। उन्हे कभी भर पेट भोजन तक नसीब नहीं हो पाता था।

भाइयो ! संसार में दरिद्रता भी एक महान् अभिशाप है। दरिद्र मनुष्य जब बेहद परेशान हो जाता है और उसे कोई उपाय नहीं सूझता तो वह भयंकर से भयंकर पैशाचिक कृत्य भी कर बैठता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:-

दुःखं दुःखमिति ब्रू यान्मानवो नरकं प्रति ।
दारिद्र्यादधिकं दुःखं, न भूतं न भविष्यति ॥

मनुष्य समझते हैं कि नरक दुःखमय है, किन्तु वास्तव में दरिद्रता से बढ कर दूसरा दुःख न तो संसार में हुआ है, न होगा। अर्थात् दरिद्रता का दु.ख नरक के दुःखों से भी बढ़कर है। दूसरा कवि कहता है.—

दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरणं संरोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥

दरिद्रता और मौत में से अगर किसी एक को चुनना हो तो मौत ही अधिक रुचिकर है, दरिद्रता नहीं। मरने में कष्ट तो होता है, मगर अल्प कष्ट होता है, और दरिद्रता तो अनन्त कष्टकर होती है।

दरिद्र मनुष्य दया को भूल जाता है, प्रेम की परवाह नहीं करता, कर्त्तव्य को तिलांजली दे देता है, विवेक को विस्मरण कर देता है और औचित्य की अवगणना कर देता है।

दरिद्र ब्राह्मण बड़ी कठिनाई से अपनी जिंदगी के दिन बिता रहा था। किसी-किसी के ऐसे कर्म उदय में आते हैं कि वे भीख माँगने निकलें तो भी भीख न मिले।

ब्राह्मण का बालक अमरकुमार एक दिन बच्चों के साथ खेलता-खेलता किसी बाग में चला गया। वहाँ उसे एक मुनि मिल गये। उसने मुनि को नमस्कार किया। फिर मुनि से उसने कहा—महाराज ! हम बहुत गरीब हैं। हमारी गरीबी किस प्रकार मिट सकती है ? मुनि ने उत्तर दिया—बालक, णमोकार मंत्र सीख लो। इस मंत्र के प्रभाव से तेरी सारी गरीबी दूर हो जायगी।

उस बालक को गुणों के सागर गुरु मिल गये। उन्होंने उसे णमोकार मंत्र के रूप में अलौकिक निधि सौंप दी। बालक णमोकार मंत्र सीख कर घर आ गया। उसका जी खेल में ज्यादा लगता था। माता किसी काम के लिए कहती तो वह टालमटूल करके खेलने चल देता था। तब माता कहती तो - खोज मिटा कहीं का ! जरा-सा कहना ही नहीं मानता है ! उस दिन माता इसी प्रकार चिढ़ रही थी कि राजा श्रेणिक की घोषणा हुई।

भाइयो ! यों तो पशुओं और पक्षियों में भी, जो नासमझ माने जाते हैं, अपनी सन्तति के प्रति प्रीति की भावना देखी जाती है, वे स्वयं अधिक से अधिक कष्ट झेलकर अपने बच्चों को सुखी रखने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करते हैं। छोटी-सी चिड़िया को देखिए। वह अपनी नन्हीं-सी चोंच में एक एक दाना दबा कर लाती है और अपने बच्चे को खिलाकर सुख

मानती है। फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या है ? वह हर प्रकार की मुसीबतें सहन करके अपनी सन्तान को आनन्द पहुंचाने के लिए प्रयास-शील रहता है। पर दरिद्रता ऐसी भयानक चीज है कि वह मनुष्य को कभी-कभी पूरा पिशाच बना देती है। एक तो दरिद्रता का घोर दुःख और फिर मजहब का समर्थन ? दोनों मिलकर कौन-सा अनर्थ नहीं उत्पन्न कर सकते !

ब्राह्मण वैदिक धर्म को मानता था। वैदिक धर्म की मान्यता के अनुसार यज्ञ करने वाले को तो स्वर्ग मिलता ही है, यज्ञ में मारे जाने वाले प्राणियों को भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतएव उस ब्राह्मण ने लोभ में आकर सोचा-अगर इस बालक को यज्ञ के लिए दे दिया जाय तो क्या हानि है ? इसकी तोल का सोना मिल जाने से मेरी दरिद्रता दूर हो जायगी, कुटुम्ब के सभी लोग सुखी हो जाएँगे और लड़का भी स्वर्ग में चला जायगा। सब तरह लाभ ही लाभ है !

आखिर यह सोचकर उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा प्रिये! अपनी सारी जिंदगी दुःख ही दुःख में व्यतीत हुई है। आज भी हम लोगों को न खाने को अन्न मिलता है, न पहनने को कपड़ा ही नसीब होता है। और भविष्य में भी इस हालत के सुधर जाने की कोई संभावना दिखाई नहीं देती। ऐसी हालत को देख कर मैंने एक विचार किया है। अगर तुम भी उसे मान जाओ तो अपने दिन फिर जाएँगे। सारा कुटुम्ब मुसीबत से छूट जायगा।

ब्राह्मणी ने ललचाई आँखों से ब्राह्मण की ओर देख कर कहा-कहो तो सही, बात क्या है ? कौन-सा उपाय आपने सोचा

है ! भला इस भीषण दरिद्रता से छूटने के लिए मैं क्या नहीं मान सकती ?

ब्राह्मण ने कुछ झिझक के साथ कहा—अमरकुमार बत्तीस लक्षणों से सम्पन्न है ! राजा ऐसा ही मनुष्य चाहते है। और बदले में उसकी तोल का सोना देने को तैयार हैं । तुम्हारी सम्मति हो तो इसे दे दें। समझ लेना एक लड़का कम ही जनमा था ! जन्म भर का दुख दूर हो जायगा और सब परिवार सुखी बन जायगा !

हाय दरिद्रता ! ब्राह्मण का प्रस्ताव सुनकर प्रथम तो ब्राह्मणी के हृदय को चोट लगी; मगर वह भी अन्त में सहमत हो गई ।

इधर राजा के सिपाही खड़े हैं और उधर माँ-बाप अमर कुमार को बलि चढ़ाने के लिए देने को तैयार हो गये हैं । अमर-कुमार को जब यह बात मालूम हुई तो उसके प्राण सूख गये ! मर जाने पर तो सभी जलाये जाते हैं, मगर जीते जी जलने की कल्पना मात्र से उसका अन्तःकरण अधीर हो उठा । उसके नेत्रों से नीर बहने लगा । उसके दुःख का अनुमान भी कौन कर सकता है !

अमरकुमार ने अपने माता-पिता से कहा—माँ ! पिताजी ! मुझ पर दया करो। मैं पड़ा रहूँगा और जो कहोगे वही करूँगा । माताजी ! मुझे बचालो । जिंदा जलने की घोर पीड़ा को मैं कैसे बर्दाश्त कर सकूँगा ! इतनी निष्ठुरता मत करो । "धन की प्राप्ति पाप से नहीं होती-पुण्य के उदय से होती है।" अपने उदरजात पुत्र के प्राण लेकर क्या सुखी हो सकता है ?

असरकुमार का रुदन और विलाप वृथा हो रहा है। सोना पाने के लोभ ने ब्राह्मण और ब्राह्मणी के हृदय को पाषाण की तरह कठोर बना दिया है। वह कहता है—

तू मुझे जन्म की दाता है, बचवा दे मेरी माताजी।
मैं चरणे शीश नमाता हूँ, बचवा दे मेरी माताजी॥

—हे माँ! तू ने नौ महीने तक पेट में रखकर मुझे जन्म दिया है। तू ने अपने हृदय का रस मुझे पिलाया है और जीवित रक्खा। अब इतनी निर्मम क्यों होती है? मुझ पर दया कर। हे जननी मैं तेरा बालक हूँ!

ब्राह्मणी का कलेजा फौलाद का हो गया था! इस अनुनय विनय का भी उस पर कोई असर नहीं हुआ। तब उसने अपने पिता की ओर मुड़कर इसी प्रकार दीनता दिखलाई। मगर उसे भी सोने के लोभ ने अंधा और पशु से भी बदतर बना दिया था। उसने भी अपने बेटे पर दया न दिखलाई। जब माता और पिता दोनों ही ने उसकी न सुनी तो और किससे आशा की जा सकती थी? माता-पिता से अधिक दयालु और कौन हो सकता है? मगर अमरकुमार निराश हो कर भी अपने भाइयों से जीवन की भीख मांगने लगा। उसने कहा:—

ऐ बन्धुओ? सुनो रे लघु भाई मैं तुम्हारा।

वह बोला-भाइयो! मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ। तुम्हीं मुझ पर दया करो। मेरे प्राणों की रक्षा करो। रामचन्द्र ने अपने भाई के लिए अयोध्या का राज्य त्याग दिया था। क्या तुम अपने भाई की

रक्षा के लिए सोना भी नहीं त्याग सकते ? अरे बचा लो, सोना आएगा और तकदीर में न होगा तो चला जायगा । मगर मरा हुआ भाई फिर कभी नहीं मिलेगा ! हे भाइयो ! भाग्य पर भरोसा रक्खो ।

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ?

जो भाग्य में लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है ? भाग्य में दुःख है तो मेरे प्राण लेकर तुम सुखी नहीं हो सकोगे । अगर भाग्य में सुख होगा तो मुझे जिंदा रख कर भी सुखी हो जाओगे ।

इस प्रकार रोने-विसूरने पर जब भाइयों ने भी कुछ ध्यान न दिया तो अमरकुमार के आगे मौत की काली छाया नाचने लगी । उसे अब निश्चय हो गया कि राजा की ओर से मिलने वाले सोने ने मेरे सारे परिवार की सद्‌भावना को नष्ट कर दिया है । सोने की चमक ने सब की आँखे बंद कर दी हैं । अब मेरी प्राण रक्षा होना संभव नहीं है ।

भाइयो ! लोग सोने को बड़ा मूल्यवान् समझते हैं और सोना पाने के लिए अधम से अधम कृत्य कर डालने के लिए भी तैयार हो जाते हैं । वास्तव में यह सोना जगत् के लिए घोर अभिशाप है ? इसने मनुष्य को पशु से भी हीन कोटि में लाकर पटक दिया है । सोना मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर देता है ! गरीब और अमीर के बीच फौलादी दीवार खड़ी करने वाली वस्तुओं में सोना भी मुख्य है । सोना मनुष्य को निर्दय बना देता है, घमंडी बना देता है और राक्षस बना देता है !

आश्चर्य है कि फिर भी लोग इसे प्यार करते हैं और इसे पाकर अपने आपको धन्य समझते हैं !

अमरकुमार जब अपने परिवार के लोगों से सर्वथा निराश होगया तो उसने, 'डूबते को तिनके का सहारा' इस कहावत को चरितार्थ करते हुए वहाँ खड़े जनसमूह से कातर स्वर में प्रार्थना की। उसने अत्यन्त दीनतापूर्वक विनय की:—

> माता-पिता के दिल से, ईमान उठ गया है।
> होली में मुझको झोंके, सोना लगा है प्यारा ॥

मगर किसे इतनी चिन्ता थी उसकी कि जो राजा को अप्रसन्न करता। उसकी प्रार्थना पर किसी ने कान नहीं दिया स्वयं ब्राह्मण ने उसे ले जाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया राजा के सामने पहुँचकर अमरकुमार ने समझ लिया कि अब कोई मेरी प्राणरक्षा नहीं कर सकता। जब मेरे माता-पिता ही मेरे प्राण लेना चाहते हैं तो दूसरों से क्या आशा की जा सकती है। फिर भी-मरता क्या न करता ? अमरकुमार ने स्वयं राजा से प्रार्थना की-हे मुकुटछत्रधारी ! आपतो मुझ पर दया करो।

राजा ने कहा-हम मुफ्त में तुम्हे नहीं लेरहे हैं। तुम्हारी तोल का सोना हम दे रहे हैं।

बालक बोला-महाराज ! आप समस्त प्रजा के पिता है। मैं भी आपका एक नगण्य-सा पुत्र हूँ, फिर ब्राह्मण की सन्तान हूँ। मेरे प्राण न लीजिये ! क्या मनुष्य के प्राण सोने से खरीदे जा

सकते हैं ? मुझ दीन ब्राह्मण-बालक पर दया कीजिए। बचाइए मेरे जीवन की रक्षा कीजिए।

इधर बालक अनुनय-विनय कर रहा था और उधर पंडित एवं पुरोहित यज्ञ का विधी-विधान करने में जुटे थे। आग की ऊँची ऊँची लपटें, मानों उस बालक को शरण देने के लिये बुला रही थीं। वे लपटें, संकेत कर रही थीं कि-भोले बालक ! तू किस भ्रम में पड़ा है। सारा ससार स्वार्थ में अंधा है यहाँ कोई किसी की सुनने वाला नहीं है। आ, हमारी गोदी में विश्राम ले। हमारे सिवाय तुझे कोई बचाने वाला नहीं !

आखिर यह बालक पुरोहित को उसी प्रकार सौंप दिया गया, जैसे बकरा कसाई को सौंप दिया जाता है ! पुरोहित ने उसे स्नान कराया गले में फूलों की माला पहनाई और शरीर को चन्दन से चर्चित किया। यह उस बालक का आखिरी समय था। पुरोहित ने आदेश दे दिया कि ज्यों ही मंत्र पढ़ कर मैं 'स्वाहा' कहूँ, इस बालक को आग में होम (झोंक) देना !

अब तक बालक के दिल में दीनता और कातरता थी। मगर जब पूरी निराशा उत्पन्न हो जाती है तो मनुष्य में कठोर और दृढ़ भाव उत्पन्न होता है। बालक के विषय में भी ऐसा ही हुआ। अब उसने रोना-चिल्लाना बंद कर दिया। वह समझ गया कि यह मेरे जीवन का अन्तिम समय है। अब रोना और गिड़-गिड़ाना बेकार है। मेरी जिंदगी की रक्षा अब कोई भी नहीं कर सकता। अब सब कुछ समाप्त होने वाला है।

उसी समय वालक को णमोकार मंत्र का स्मरण हो आया। उसने सोचा जब संसार का कोई भी संबंधी मेरी रक्षा करना नहीं चाहता तो मुझे भी उनसे किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिये। उस दिन वगीचे में मुनिराज ने णमोकार मंत्र सिखलाया था और बतलाया था कि यह महामंत्र सकल संकटों को काटने वाला है, कष्टों को टालने वाला है। बस, अब मुझे इसी का आश्रय लेना चाहिये। अगर मैं मंत्र के प्रभाव से जीवित रह जाऊँगा तो तपस्या में ही अपना जीवन लगाऊँगा। उसने शान्त भाव से, श्रधा के साथ उच्चारण किया:—

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं॥

साथ ही उसने स्मरण किया:—

णमो अरिहंत सिद्ध, आचारज प्रसिद्ध ।
उपाध्याय की रिद्ध द्वादशांगी जान ॥
साधु गुणधारी हैं।
उपकारी पांचों पदों को नमो त्रिकार ॥
श्रेष्ठ मंत्र नवकार, यही पूर्वों का सार ।
लेवे हृदय में धार, देवे तार तार तार ॥ ६ ॥

वालक ने 'नमस्कारमंत्र का उच्चारण करके, हाथ जोड़ कर, मस्तक झुका कर, मंत्र की स्तुति करना आरंभ कर दिया। वह ईश्वर का स्मरण करने लगा—प्रभो! दीनानाथ! तू ही

मेरा आधार है। इस संकट में तेरे सिवाय और कोई मेरा रक्षक नहीं है। तू ही संकट-मोचक है।

पावक प्रचण्ड कुण्ड में उमण्ड जब रहा,
सीता से सत्य लेन को जब राम ने कहा।
तुम ध्यान धरके जानकी पग धरो तहां,
तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कमल लहलहा।
हो दीन बन्धु श्रीपति करुणानिधानजी,
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो वार क्या लगी!

भाइयो! नमस्कारमंत्र में पैंतीस अक्षर हैं। शुद्धता और शुद्ध भावना के साथ जो इस लोकोत्तर मंत्र का जाप करता है उसे तत्काल फल की प्राप्ति होती है। इसके एक-एक अक्षर के उच्चारण पर देवता हाजिर रहते हैं। यह महामंत्र समस्त मंगलों में सर्व-श्रेष्ठ मंगल है। अनेक श्रद्धाशील भक्तों का इसके द्वारा रक्षण हुआ है, कल्याण हुआ है।

इधर अमरकुमार नवकार मंत्र का जाप करता है, उधर पुरोहित 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करता है और उसी समय देवता का उपयोग लगने से वह स्वर्ग से उतर कर आजाता है। ज्यों ही उसे लपलपाती आग में झोंक देने का उपक्रम हुआ कि उसी समय देवता ने उसे अधर झेल लिया और सिंहासन पर विठला दिया। उसके ऊपर पुष्पों की वर्षा होने लगी। जो जो लोग उसे जलाने में शरीक थे सब के सब औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़े। सबकी जीभें बाहर निकल आई।

राजा को जब यह खबर लगी तो वह अकबकाया हुआ दौड़ कर वहाँ आया। उसने यह व्यवस्था देखी तो उसके विस्मय और घबराहट का पार न रहा। उसने कहा—अरे! यह क्या हो गया? क्या मन्त्रोच्चारण में कोई त्रुटि रह गई थी?

उसी समय आकाश-वाणी सुनाई दी—'मंत्रोच्चारण में त्रुटि नहीं हुई, वरन् यह महामंत्र का दिव्य चमत्कार है! महामंत्र की महिमा से यह व्यवस्था बनी है। बालक के पैर धोकर इन अचेत लोगों पर छिड़कोगे तो स्वस्थ हो जाएँगे।'

आखिर यही किया गया। अमरकुमार का चरणोदक जब पुरोहित वगैरह के अंग पर छिड़का गया तो वे स्वस्थ हुए। सभी लोग उस बालक के पैरों मे गिरे। बालक के ऊपर चँवर ढुलने लगे। छत्र तन गया। राजा ने कहा—मैं इस प्रभावशाली बालक को इस नगरी का राजा बनाता हूँ।

बालक शान्त और मौन था। उसके चेहरे से असित आभा, दिव्य सात्त्विकता, असीम शान्ति एवं गंभीरता टपक रही थी। उसकी ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि जगत् के किसी भी प्राणी पर उसके अन्तःकरण में रोष या द्वेष का लेश मात्र भी नहीं है।

भाइयो! ऐसे घोर संकट के समय जो शान्ति रख सकता है, वह वास्तव में शान्त कहला सकता है। कवि ने कहा है—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

अर्थात् मन में विकार उत्पन्न करने वाले कारण विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त मे विकार उत्पन्न नहीं होता, वही वास्तव में धीर पुरुष कहलाने के योग्य हैं।

राजा का कथन सुनकर वालक ने सोचा-राजा मुझे राज्य की झंझट में डालना चाहता है। मगर मैं इस झंझट मे नहीं पड़ सकता। जिस धर्म ने मेरी इस प्राणसंकट के समय रक्षा की है, जिस धर्म का प्रभाव मैंने अपनी आँखों से देख लिया है, उस धर्म का मै परित्याग कैसे कर सकता हूँ ? नहीं, कदापि नहीं। मैं उसी धर्म का सर्वतो भावेन शरण लूंगा। मै घर में रहा तो आग में जलने की नौवत आई। अव राजा वनूँगा तो फिर न जाने क्या हाल होगा ?

यह सोचकर वालक ने कहा—राजन्! सारा संसार एक प्रकार की भयानक आग में जल रहा है। अभी तक मैं उस आग को देख नहीं पाया था। मगर आपने मुझे जलाने के लिए जो आग सुलगवाई है, उसके प्रकाश से मेरे नेत्र संसारव्यापी उस प्रचण्ड आग को देखने मे समर्थ हो सके हैं। वह आग इस आग से भी विराट है, प्रचण्ड है, व्यापक है। संसार के सभी प्राणी उस आग में जल रहे हैं किन्तु वे इतने वेभान हैं कि उस जलन को भी नहीं समझ पाते हैं। मै आज अत्यन्त भाग्यशाली हूँ कि मैं उस आग को देखने लगा हूँ और उसकी जलन को समझ सका हूँ। इस आग से वच गया हूँ तो उस आग से भी वचने का मुझे प्रयत्न करना है। मैं राज्य लेकर संसार की आग में झुलसने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं अव संयम धारण करूँगा। अपनी आत्मा को निस्ताप और निष्पाप वनाने का प्रयत्न करूँगा।

इस प्रकार कह कर बालक अमरकुमार वहाँ से रवाना हो गया और स्वयं मुनि बन गया। तब तक सारी राजगृही नगरी में यह समाचार फैल गया था। जहाँ सुनो, वहीं एक मात्र चर्चा का यही विषय बन गया। लोग आश्चर्य करने लगे-लड़का बच गया है! देवता ने उसकी सहायता की है! णमोकार मंत्र के प्रभाव से उसका बाल भी बांका नहीं हुआ!

अमरकुमार के माता-पिता को भी यह समाचार मिला। अपने पुत्र की प्राणरक्षा होने के समाचार सुनकर उन्हें प्रसन्नता होनी चाहिये थी, मगर संसार बड़ा ही स्वार्थी है। यहाँ सभी अपने-अपने मतलब को रोने वाले हैं। धन मनुष्य को कितना अधम और पतित बना देता है, यह बात जाननी हो तो अमर-कुमार के माता-पिता को देखो! प्रथम तो अपने भाग्य पर भरोसा न रख कर उन्होंने अपने बालक को आग में झौंकने के लिए दे दिया। बालक णमोकार मंत्र के प्रभाव से जब किसी प्रकार बच गया तो उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। इतना ही नहीं, उन्हें इस बात की चिन्ता उत्पन्न हो गई कि कहीं राजा दिया हुआ सोना वापिस न माँग ले! लड़का आग में जला नहीं है, यह बहाना करके राजा सोना ले लेगा तो हम फिर ज्यों के त्यों हो जाएँगे। लड़का भी हाथ से गया, संसार में धिक्कार के पात्र भी बने और अन्त में यह सोना भी चला जायगा!

आखिर ब्राह्मण के हृदय में एक पैशाचिक विचार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा-लड़का अकेला है और श्मशान में जाकर, मुनि बनकर तप कर रहा है। अगर उसे वहाँ जाकर मार डाला जाय तो घर में आया सोना बच सकता है। जब राजा सोना

वापिस मांगेगा तब हम उससे अपना लड़का मांगेंगे। न वह लड़के को लौटा सकेगा और न सोना ले सकेगा।

कितनी अधम विचारधारा है! जगत् के जीवो! विचार करो इस नीचता पर! और यह भी सोचो कि माता-पिता के हृदय को पिशाच का हृदय किसने बना दिया? सोना! खेद है कि इस सोने ने मनुष्य की मनुष्यता को भी खरीद लिया है! धन के प्रलोभन में फँस कर मनुष्य क्या से क्या बन जाता है! जो माता जगत् में वात्सल्य की साक्षात् मूर्त्ति मानी जाती है, जो स्नेह की देदीप्यमान ज्योति समझी जाती है, जो स्वयं सैकड़ों कष्ट झेल कर अपनी सन्तान की सुख-सुविधाओं की ही चिन्ता किया करती है और जिसने सन्तान को जन्म देकर अपने को भाग्यशालिनी माना है, वही माता धन के प्रलोभन में पड़ कर कितनी निष्ठुर, कितनी निर्मम, कैसी पिशाचिनी बन सकती है, इसका नमूना देखना हो तो अमरकुमार की माता को देखलो। उस ब्राह्मणी ने अपने दिल को वज्र-सा कठोर बना लिया। वह हाथ में छुरा लेकर, रात्रि के समय उस स्थान पर जा पहुँची जहाँ अमर मुनि ध्यान कर रहे थे। पहुँचते ही उसने मुनि के पेट में छुरा भौंक दिया! मुनि के प्राण-पंखेरु उड़ गये।

अपने अन्तिम समय में मुनि ने पूर्ण क्षमाभाव रक्खा। अपने चित्त को क्षण भर के लिए भी समाधि से पतित नहीं होने दिया। वे उज्ज्वल भावना में लीन रहे। इस धर्म के प्रताप से मुनि देहोत्सर्ग करके बारहवें देवलोक में देव हुए।

नीतिकार कहते हैं:—

> त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
> अत्युत्कटस्य पापस्य, जीवः फलमश्नुते ॥

किये हुए पाप-कर्म का फल भोगना तो पड़ता ही है, परंतु बहुत तीव्र पापकर्म का फल मिलने में देरी नहीं लगती। तीन वर्ष में, तीन मास में, तीन पखवाड़ों में या तीन दिनों में ऐसा पापकर्म अपना फल देता है। किन्तु ब्राह्मणी का यह पापाचरण तो उत्कट से उत्कृष्ट पाप था। प्रथम तो अपने ही पुत्र की और फिर मुनि की हत्या से बढ़कर पाप और क्या हो सकता है ? अतएव हत्याकारिणी माता को तत्काल ही उसका फल मिल गया।

जब वह ब्राह्मणी अपने पुत्र मुनि की हत्या करके वापिस लौट रही थी कि रास्ते में उसे सिंहनी ने मार डाला। वह तड़फ-तड़फ कर वहीं मरगई और मर कर छठे नरक में उत्पन्न हुई !

भाइयो ! धर्म और पाप का अन्तर देखो। एक ओर धर्ममूर्त्ति अमरकुमार हैं जो देह त्याग कर बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं और दूसरी ओर उनकी पापिनी माता है जो छठे नरक में असीम दुःख भोगने के लिए उत्पन्न हुई है।

कथा का सार यह है कि संसारी मनुष्य सुख की अभिलाषा से प्रेरित हो कर ऐसे उल्टे कार्य करता है, जिनसे सुख के बदले दुःख की प्राप्ति होती है। मनुष्य साधारणतया अपने सुख

के वास्ते दूसरों को भयंकर से भयंकर यातना पहुँचाने में संकोच नहीं करता। श्रेणिक अपना महल खड़ा करने के लिए मनुष्य की बलि देने को तैयार हो गया, पुरोहित ने अपने तुच्छ लाभ के लिए अमरकुमार को आग में झोंक दिया, अमरकुमार के माता पिता आदि ने अपने आराम के लिए उसके प्राणों की परवाह नहीं की। यह सब अज्ञान का फल है। अज्ञान से प्रेरित होकर ऐसे उलटे कार्य करने वालों को सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो विवेकवान् पुरुष अपने सुख-दुःख की तरह दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता करता है, जो इतर प्राणियों के खेद को समझता है और उन्हे खेद नहीं पहुचाता, वही सच्चे सुख का अधिकारी होता है।

भगवान् तीर्थङ्कर 'खेदज्ञ' थे। उन्होंने एकेन्द्रिय जीवों के कष्ट को भी अपने ज्ञान से जान लिया था। इसी कारण उन्होंने जगत् में यह बात प्रकाशित और घोषित की है कि अगर स्वयं सुखी बनना चाहते हो तो दूसरों को सुखी बनाओ। दुःख से बचना चाहते हो तो दूसरों को दुःख से बचाओ। अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का कल्याण करो। भगवान् ने कहाः—

अप्पसमं मन्नेज्ज छप्पि काये।

छहों कायों को अर्थात् जगत् के समस्त प्राणियों को अपने समान समझो। मत भूल जाना कि उनके अकल्याण में में तुम्हारा अकल्याण है। उनके कष्ट में तुम्हारे कष्टों का बीज निहित है।

सच्चा मजहब कौन-सा है ? दुनिया में सैकड़ों पंथ, मत, मार्ग आदि चल रहे हैं। मगर उनकी सचाई की परीक्षा अहिंसा है। जो धर्म या पंथ अहिंसा की तराजू पर ठीक तुलता हो वही सच्चा धर्म या पंथ है। जो धर्म जीवरक्षा का विरोध नहीं करता है वल्कि उसका विधान करता है, जो जीवहिंसा को हेय वतलाता है, जो वकरों पाड़ों को काटने की आज्ञा नहीं देता वही सच्चा धर्म है। हमने इसी धर्म को अपने जीवन का आदर्श माना है और यही धर्म जगत् के लिए आदर्श हो सकता है। किसी गुरु ने हमें मोल नहीं लिया है। हमने अपने अन्तरात्मा की प्रवल प्रेरणा से इस महान् धर्म को अंगीकार किया है और अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ही उसका पालन कर रहे हैं। हम मानते हैं कि यही आत्मा के उद्धार का एक-मात्र मार्ग है। इसका विरोध करने वाले सभी मार्ग आत्मा को पतन के गहरे गड्ढे में गिराने वाले हैं। दया धर्म ही सच्चा धर्म है और दया विना कोई भी धर्म, धर्म नहीं कहला सकता। भगवान् महावीर ने फर्माया है:—

खुद की जिसको खबर नहीं, वह शख्स खुदा को क्या जाने ?
जो खुद ही पक्षपाती वन बैठा वह इन्साफ का क्या छाने ?

जिसने आत्मा को ही नहीं पहचाना, वह परमात्मा को कैसे पहचानेगा ? जो पर-पीड़ा को देख कर स्वयं पीड़ा का अनुभव नहीं करता, समझो कि उसके दिल में दर्द पैदा नहीं हुआ है। ऐसा मनुष्य प्रभु के परम मंगलमय स्वरूप को समझने के योग्य नहीं है।

भाइयो! तुम मेरी बात सुनने को आये हो तो सुनो। मुनि-जीवन के इस लम्बे काल में मैंने तुम्हें बहुत कुछ सुनाया

है। उस सब का सार अगर थोड़े में बतलाया जा सकता हो तो वह यही है कि अपने हृदय को निर्मल और उदार बनाओ। अपने स्वार्थ को छोड़ सको तो छोड़ो और जगत् की भलाई में अपना जीवन लगा दो। अपना स्वार्थ न छोड़ सको तो कम से कम अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के स्वार्थ का घात मत करो। कीड़ी और कुंजर में, एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में, समान आत्मा विद्यमान है। उनके दुःख को समझो और अपने निमित्त से उन्हें दुखी मत होने दो। दूसरों का दुख दूर करने के लिए यथाशक्ति उद्यम करो। संसार के भोगोपभोगों का त्याग न कर सको तो उनमें एकान्त लिप्त भी मत बनो। दया के मार्ग पर चलो। दया को ही अपने प्रत्येक कार्य की कसौटी बना कर व्यवहार करो। तुम्हारे जिस कार्य से दया का विरोध होता हो, उसे धर्म मत समझो। भगवती दया के चरणों में अपना सर्वस्व बलिदान करो। यह पावन बलिदान आपके सौभाग्य के अक्षय भंडार का मंगलमय द्वार खोल देगा। तब आपको मालूम हो जायगा कि यह सौदा घाटे का सौदा नहीं है।

जम्बूकुमार की कथा :—

भगवान् महावीर ने इसी पथ का अनुसरण किया था। अनादि भूतकाल में जितने भी महापुरुष अक्षय सुख के भागी बने हैं, उन सबने इसी मार्ग पर प्रयाण किया था। आज जम्बूकुमार भी इसी पथ पर प्रयाण करने के लिए कटिबद्ध हुए हैं।

जम्बूकुमार ने अपनी पाँचवीं पत्नी नभसेना की बातों का युक्तिपूर्ण निराकरण कर दिया। वह समझ गई और एक ओर बैठ गई। तत्पश्चात् स्वर्णश्री नामक छठी स्त्री खड़ी हुई। यद्यपि उसे

आशा नहीं थी कि वह अपने पति के विचारों को परिवर्त्तन कर सकेगी। जम्बूकुमार की प्रबल युक्तियाँ और वैराग्य-रंग में रँगी हुई वाणी सुनकर उसके हृदय में गहरी निराशा पैठ चुकी थी, मगर वह उद्योग करना छोड़ नहीं सकती थी। ममता का आकर्षण ऐसा ही प्रबल होता है।

हाँ, तो स्वर्णश्री ने कहा प्राणनाथ! आपने इन पाँच भोली बहिनों को अपने वाक्चातुर्य से समझा लिया है। इस कारण आप संभवतः यह समझने लगे होंगे कि आपका पक्ष न्यायसंगत है और आपके विचार न्याययुक्त हैं। परन्तु गहरा विचार करने पर मालूम होता है कि ऐसी बात नहीं है। पुरुष के समक्ष नारी शीघ्र पराजित हो जाती है, इसका प्रधान कारण यही है कि स्त्री का हृदय भावुक होता है, कोमल होता है। अतएव इनको समझा लेने मात्र से आप अपने निर्णय को सही न समझ लें।

किसी गाँव में एक बुढ़िया रहती थी। उसका एक लड़का था। जब वह कुछ बड़ा हुआ और पाठशाला में जाने योग्य हो गया तो उस बुढ़िया ने कहा बेटा! पढ़ने जाना शुरु कर दो। अब तुम पढ़ने लायक हो गये हो। लड़का बोला माँ, मुझे पढ़ाई नहीं आती।

बुढ़िया—अरे बेटा! ऐसा विचार ही क्यों करता है? तू समझता है कि मुझे पढ़ाई नहीं आती, इसी कारण तो तुझे पढ़ाई नहीं आती। इसके बदले अगर तू अपने आपको बुद्धिमान् समझ लेगा तो तुझे पढ़ाई आने लगेगी। बेटा! तू अपने को किसी से हीन मत समझ।

बुढ़िया ने अपने बालक को जो बात कही है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की उत्साह, आशा, आश्वासन और प्रेरणा से परिपूर्ण सूचनाएँ बालक को बार-बार देने से सचमुच ही बालक की हिम्मत बढ़ती है, उसका हौंसला दुगुना-चौगुना हो जाता है, वह अपने व्यक्तित्व के प्रति आशावान् बनता है, उसमें आत्मा श्रद्धा उत्पन्न होती है और आगे चल कर वह बुद्धिमान् तथा योग्य नागरिक बनता है। आजकल के मनोविज्ञान के पण्डितों का कथन है कि बालक को उसके माता-पिता आदि संरक्षक जिस प्रकार की सूचनाएँ देते हैं, बालक का व्यक्तित्व उसी प्रकार का बन जाता है।

प्राचीन काल के ऋषियों और मुनियों ने भी इस तथ्य को भलीभांति अवगत किया था। अतएव उन्होंने जन-समाज को इसी प्रकार की ऊँची से ऊँची सूचनाएँ दी थीं। वैदिक धर्म में एक छोटा-सा वाक्य प्रसिद्ध है—'सोऽहम्' अर्थात् जो ईश्वर है, ब्रह्म है, वही मैं हूँ। वाक्य छोटा-सा है मगर इसमें बड़ा भारी मर्म छिपा है। इस वाक्य के द्वारा आत्मा को परमात्मा बनने की प्रेरणा दी गई है। कुछ लोग इसका आशय और ही समझ बैठे हैं। उन्होंने मान लिया है कि जो कुछ है, ब्रह्म ही है और ब्रह्म से अतिरिक्त हमारी कोई सत्ता ही नहीं है। ऐसा आशय समझ लेना भ्रम मात्र है। यह विपरीत अर्थ है। आत्मा को परमात्मा बनाने की प्रेरणा देने वाले इस सुन्दर वाक्य का उल्टा आशय समझ लेना कि हम कुछ हैं ही नहीं—जो कुछ है परमात्मा ही है परिताप का विषय है।

जैन साहित्य मे भी इस आशय के अनेक वाक्य हमें उपलब्ध होते हैं। उनमें एक वाक्य यह है:—

यः परमात्मा स एवाहं, योऽहम् स परमस्ततः ।

अर्थात् जो परमात्मा है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही परमात्मा है।

यह वाक्य एकदम स्पष्ट है। इसमें यह बतलाया गया है कि आत्मा और परमात्मा मूलतः एक ही कोटि के हैं। अतएव आत्मा अपना विकास करके जब 'परम' विशेषण का पात्र बन जाता है तो वही परम + आत्मा = परमात्मा कहलाने लगता है। दूसरा वाक्य और लीजिए—

सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणंतणाणादिगुणसमिद्धोऽहं ।

अर्थात् मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, मैं अनन्त ज्ञान आदि गुणों से समृद्ध हूँ।

यह तबलाने की आवश्यकता नहीं कि इस वाक्य में आत्मा के जिन गुणों का निर्देश किया गया है, वे सब गुण परमात्मा के ही है। जब आत्मा बार-बार यह चिन्तन करता है कि मुझ में परमात्मा संबंधी सभी गुण विद्यमान है तो निश्चय ही उसके अन्तःकरण में परमात्मभाव जागृत होता है और तदनुकूल साधना के द्वारा वह परमात्मपद को प्राप्त भी कर लेता है। इस प्रकार प्रायः सभी भारतीय धर्म आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए उसे उच्च-श्रेणी की सूचनाएँ देते हैं। इन सूचनाओं से यह समझ लेना कठिन नहीं है कि मनोवैज्ञानिक सूचनाएँ देने के महत्त्व को प्राचीन काल में भी समझा गया था। आधुनिक विद्वान् भी इसके महत्त्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हैं।

मगर हम देखते हैं कि जनसाधारण में इस विषय में घोर अज्ञान छाया हुआ है। आम तौर पर लोग अपने बालकों को ऐसी ऊँची सूचनाएँ नहीं देते। यही नहीं, बल्कि वे तो यह समझते हैं कि ऐसी सूचनाएँ देने से बालक बिगड़ जायगा। इस उलटी समझ के कारण वे बालकों को हीन सूचनाएँ दिया करते हैं। तू गधा है, मूढ़ है, तेरे दिमाग में गोबर भरा है, तू बेअक्ल है, तू कितनी ही सिरपच्ची करे तुझे विद्या आ ही नहीं सकती, इस प्रकार की हीन सूचनाओं को सुनते-सुनते बालक हीन बन जाता है। उसकी आत्म श्रद्धा नष्ट हो जाती है। वह अपने बड़ों-बूढ़ों की बातों पर भरोसा करके यह मान लेता है कि सचमुच ही मैं नालायक हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं निकम्मा हूँ, बुद्धिहीन हूँ। जब बालक अपने विषय में ऐसा तुच्छ विचार बना लेता है तो सचमुच ही वह वैसा बन जाता है। उसका जीवन बर्बाद हो जाता है।

भारतवर्ष में अशिक्षा और अज्ञान के कारण इस प्रकार लाखों होनहार बालकों की जिंदगी नष्ट हो जाती है। अतएव माता पिता का कर्त्तव्य है कि भूल कर भी कभी बालक को इस प्रकार की गलत सूचनाएँ न दें। ऐसा करना बालक के कोमल मस्तिष्क में भयानक जहर भरने के समान है। सुयोग्य माता-पिता ऐसी भूल कभी नहीं करते। वे अपने बालक को साहस देते हैं, बढ़ावा देते हैं और उसके जीवन को इस तरीके से उन्नत बनाते हैं।

एक लड़की जब कन्याशाला में पढ़ने के लिए, पहले दिन जाने लगी तो उसके चतुर पिता ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा—देख बेटी! एक बात तुझे बतलाता हूँ। वह यह कि कन्याशाला में जितनी भी लड़कियां पढ़ती हैं, उन सब से तू ज्यादा होशियार

है। तू अपनी कक्षा में अव्वल रहेगी। इस सूचना को पाकर वह लड़की सचमुच ही अपनी कक्षा में सदा प्रथम रही। उसे अपनी बुद्धिमत्ता पर इतनी गाढ़ी श्रद्धा हो गई कि सचमुच उसकी बुद्धि खिल उठी।

आप अपनी सन्तान को अगर सुयोग्य बनाने की भावना रखते हैं तो आपको भी उस चतुर पिता का अनुकरण करना चाहिए। इससे बालक का जीवन चमक उठेगा।

बुढ़िया ने अपने बालक से कहा-बेटा! पढ़ जायगा तो अच्छा रहेगा। पढ़े हुए की आँखें चार समझी जाती हैं। संसार में या तो मालदार की या विद्यावान् की ही कद्र होती है। विद्यावानों के आगे बड़े-बडे पूंजीपति भी आकर खड़े होते हैं और उनके आगे गिड़गिड़ाते हैं। इसलिए तू पाठशाला जा और पढ़ना शुरु कर दे।

भाइयो! सचमुच विद्या की बड़ी महिमा है। विद्यावान् मनुष्य ही वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी होता है। विद्या के बिना मनुष्य अपनी मनुष्यता से कोई लाभ नही उठा सकता। विद्या यश, सुख और वैभव प्रदान करने वाली है। कहा है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

अर्थात्-विद्या मनुष्य का असली रूप-सौन्दर्य है, विद्या छिपा हुआ धन है, विद्या से भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होती है, विद्या यश और सुख देने वाली है, विद्या के प्रभाव से मनुष्य गुरुओं का भी गुरु बन जाता है। जब मनुष्य विदेश में जाता है तो विद्या ही सहायक होती है। लोग भाग्य को बहुत बड़ी चीज मानते हैं परन्तु विद्या से बढ़कर और कोई सौभाग्य नहीं है। विद्या के प्रताप से राजाओं के द्वारा पूज्यता प्राप्त होती है अर्थात् विद्वान् पुरुष की राजा भी पूजा करते हैं, धन की पूजा नहीं करते। विद्या की यह सब विशेषताएँ धन में नहीं हैं। सच पूछो तो विद्याहीन मनुष्य, आकृति से मनुष्य होने पर भी पशु के समान है।

विद्या या ज्ञान की बड़ी महिमा है। समस्त सुखों का मूल ज्ञान है। विद्या प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष के समान समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाली है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिम्,
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ? ॥

जैसे माता अपने बालक की प्रत्येक परिस्थिति में रक्षा करती है, उसी प्रकार विद्या मनुष्य की रक्षा करती है, बल्कि माता तो सब जगह साथ-साथ नहीं फिरती और जीवन पर्यन्त साथ नहीं देती, मगर विद्या सब जगह और सब समयों में साथ रहती है। वह कभी और कहीं पर भी साथ नहीं छोड़ती और सर्वत्र-

सर्वदा रक्षा करती है। जैसे पिता अपने पुत्र को अहित से वचा-कर हित में लगाता है, उसी प्रकार विद्या भी अहितकर प्रवृत्तियों से वचाती है और हितकर कार्यों में लगाती है । विद्या के द्वारा मनुष्य हित-अनहित को पहचानता है और हितकारी कार्यों में लगता है। इस प्रकार विद्या माता के समान भी है और पिता के समान भी है। मगर उसकी उपयोगिता इन दोनों से भी ज्यादा है। वह कान्ता (प्रिय पत्नी) के समान आनन्द देने वाली भी है। विद्या से लक्ष्मी वढ़ती है और विश्व में यश का विस्तार होता है। विद्या कल्पलता के समान है उससे क्या क्या सिद्धि प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् विद्या के द्वारा समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

विद्या की यह महिमा है। इस महिमा को समझ कर वुढ़िया ने अपने वालक को विद्या पढ़ने का आग्रह किया । वालक कहने लगा—मुझे विद्या आती ही नहीं है। तव बुढ़िया ने उसे समझा कर कहा—वेटा, तू पक्का संकल्प कर ले कि तुझे विद्या पढ़नी ही है, तव विद्या आने लगेगी। कितनी ही मिहनत क्यों न करनी पडे, तू अपने संकल्प पर डटा रह। देख राजा हरिश्चन्द्र पर कितने संकट आये थे ? फिर भी वे अपने सत्य पर अटल रहे। सती सीता पर सैंकड़ों संकट आये मगर उन्होंने एक क्षण के लिए भी कभी अपना धर्म त्यागने का विचार नहीं किया। वह अपने विचारों पर अडिग रही। उसी प्रकार तू भी पक्का विचार कर ले और विद्या को हितकारी समझ कर उपार्जन करने का प्रयत्न कर मिहनती आदमियों को किसी चीज की कमी नहीं रहती। ले यह पट्टी और पैंसिल। पाठशाला जा। पढ़ना शुरु कर दे।

बेटा ! किसी जगह पाँच-सात आदमी बैठे थे। उनमें से एक ने कहा – बिना पढ़े-लिखे आदमी तो साले उल्लू हैं। उनमें एक मुसलमान भी था। वह पढ़ा लिखा नहीं था। वह चाहता तो ऐसा कहने वाले पर गुस्सा कर सकता था। उससे लड़ झगड़ सकता था। मगर उसने उस आदमी के कथन का उल्टा अर्थ नहीं लिया। उसने सोचा-बात ठीक कही है। मैं बिना पढ़ा-लिखा हूँ, अतः मै भी उल्लू हूँ। मनुष्य होकर भी उल्लू बना रहना योग्य नहीं है। यह सोचकर वह पढ़ने लगा। उसने बहुत मिहनत की परन्तु उसे अलिफ, बे, पे, ते, भी नहीं आया। उसके दिल में निराशा का भाव उत्पन्न हो गया। उसने प्राण त्याग देने का विचार किया। वह कुएँ की तरफ चला। वहाँ स्त्रियाँ रस्सी से पानी खींच रही थीं। उसने देखा-कोमल रस्सी की रगड़ से पत्थर भी घिस गया है। रस्सी की रगड़ खाते-खाते पत्थर में गड़हे पड़ गये है। तो-क्या अभ्यास करने से मुझे विद्या नहीं आयगी ? अवश्य आ जायगी। कहा भी है—

करत-करत अभ्यास के, जड़तमति होत सुजान।
रसरी आवत-जात तें, सिल पर परत निशान ॥

जब रस्सी के आने-जाने से अत्यन्त कठोर पत्थर पर भी निशान पड़ जाते है तो अभ्यास करते-करते जड़ बुद्धि वाला विद्वान् क्यों नहीं बन सकता ?

भाइयो ! वह मुसलमान वापिस लौट आया। अब की बार उसने बहुत पक्का संकल्प किया और परिश्रम किया। सच-मुच वह पढ़ लिख गया। उसका नाम 'शेख सादी' था। वह ऐसा

विद्वान् बना कि आज तक लोग उसको भूले नहीं हैं। उसने गुलिस्तां, वोस्तां आदि फारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं! उन्होंने कहा—

चहल साल उम्रे अजीजत गुजस्त,
मिजाजे तु अजहाल तिफ्ली नगस्त।

चालीस साल के ऊपर पहुँच गई तो भी लड़कपन से बाज नहीं आई! शेख शादी साहब बहुत मिहनत करके विद्वान् हुए।

रतलाम में एक पाठशाला कायम की गई। उसमें साठ साल के एक बूढ़े सज्जन भी पढ़ने आये। लोग उन्हें देखकर हँसने लगे। मगर वे हँसने वालों पर आश्चर्य करने लगे। आखिर उन्होंने दशवैकालिक सूत्र, सामायिक-प्रतिक्रमण, २५ बोल, थोकड़े वगैरह अच्छी तरह सीख लिये।

हाँ, तो बुढ़िया के बहुत समझाने-बुझाने से वह बालक पढ़ने चला। रास्ते में एक गधा टीं-भूं, टीं-भूं करता हुआ आ गया। लड़के ने समझा कि यह मुझे बुलाने के लिए आया है! उसने उसकी पूंछ पकड़ ली। गधा भागता है और लातें फटकारता है, मगर वालक पकड़ी पूँछ नहीं छोड़ता। गधा लातें मारता है, मगर लड़का समझता ही नहीं!

लोग यह तमाशा देखकर हैरान हो गये। उन्होंने कहा—अरे, क्यों लातें खा रहा है? पूँछ छोड़ दे न! तब वह कहता है-माँ ने कहा है कि छोड़ना नहीं हरिश्चन्द्र की तरह! लोगों ने उसे बहुत समझाया अरे मूर्ख! तेरे दाँत टूट गये हैं, माथा फूट गया है, अब तो छोड़ दे! मगर वह नादान छोकरा नहीं माना।

स्वर्णश्री अपनी कथा का उपसंहार करती हुई बोली-नाथ ! बालक की माता ने हित की बात कही थी, मगर वह बालक ठीक-ठीक समझ नहीं सका। इसी प्रकार आप भी सुधर्मा स्वामी के उपदेश को ठीक तरह नहीं समझ रहे हैं ! आप उनके आशय को उलटा समझ कर गलत रास्ता अख्तियार कर रहे हैं। जैसे वह बालक दूसरों के कहने पर भी नहीं माना, उसी प्रकार आप भी हमारे कहने से नहीं मान रहे हैं।

पतिदेव ! आप बड़े हैं। परन्तु बड़ों का बड़प्पन क्या इसी में है कि छोटों की अच्छी और हितकर बात भी न सुनी जाय ? मैं आपको हाथ जोड़ती हूँ। मेरी बात पर ध्यान दीजिए। आपने हम आठ की जिन्दगी अपनी मुट्ठी में ले रक्खी है। हमारे जीवन को फूल की तरह मसल डालना आपको शोभा नहीं देता। जिसमें इतनी कठोरता होगी, वह अहिंसाधर्म का पालन नहीं कर सकेगा। आप जैसे ही संयम ग्रहण करने की बात करते हैं कि हमारा कलेजा काँपने लगता है। आपका भी अभी नवीन यौवन है और हम भी अभी यौवन के प्रथम चरण में हैं। इस समय संयम धारण करने में अनेक खतरे हैं। उनकी ओर आपको ध्यान देना चाहिए।

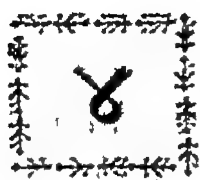
अगर आपने मोह को जीत ही लिया था और संसार से आपको कुछ भी प्रयोजन नहीं था तो आपको विवाह ही नहीं करना चाहिए था ! जब विवाह किया है तो उसे निभाना आपका सबसे पहला कर्त्तव्य है ! आप तो हमारे हाथ का कौर छीन रहे हैं। हमें निराधार छोड़ कर जा रहे हैं। हमें किसका अवलम्बन होगा ? जैसे बिना दाँतों का हाथी शोभा नहीं देता और बिना

न्याय का राजा प्रतिष्ठा नहीं पाता, उसी प्रकार पत्नी, विना पति के शोभा नहीं पाति।

नाथ! आपने सुधर्मा स्वामी का उपदेश सुना है, उन्होंने बहुत अच्छा ही उपदेश दिया होगा। पर आप उसे उल्टा ही समझ गये हैं। उस उपदेश के रहस्य की ओर ध्यान दीजिए। तभी आपको उसकी वास्तविकता का पता चल सकेगा। मैं अनुरोध करती हूँ कि आप नये सिरे से इस संबंध में फिर विचार करें। उतावले होकर कोई ऐसा काम न कर बैठें, जिससे जीवन-भर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ न हो! अगर आपने ठीक विचार करके उचित निर्णय किया तो आप भी सुखी होंगे और हम सब को भी आनन्द ही आनन्द होगा।

२४—६—१६४८]





अपनापन !

()—()—()—()

॥ स्तुति ॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख—
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आप के गुण कहाँ तक गाये जाएँ ।

जब भगवान् ऋषभदेव समवसरण में विराजमान होते थे तो उनके ऊपर अशोक वृक्ष की छाया होती थी । वह वृक्ष

खूब हरा-भरा और बड़ा ही सुन्दर सुहावना लगता था। भगवान् के शरीर का वर्ण तपाये हुए कुन्दन के समान था। और उसके ऊपर सघन नीलवर्ण का अशोक वृक्ष होता था। उस समय भगवान् ऐसे प्रतीत होते थे जैसे मेघों के पास चमकता हुआ सूर्य हो।

अशोक वृक्ष भगवान् तीर्थङ्कर के आठ प्रातिहार्यों में से पहला प्रातिहार्य है। यह वृक्ष भी देवनिर्मित होता है और पुद्गलमय-पार्थिव होता है। जब भगवान् संयम धारण करके और तपश्चरण करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, तभी प्रातिहार्यों की देव रचना करते हैं, पहले नहीं। कहा जा सकता है कि अशोक वृक्ष पुद्गलों से एकदम कैसे बन जाता है? उत्तर यह है कि कांच में मुँह देखते ही जैसे प्रतिबिम्ब बन जाता है, उसी प्रकार दिव्य प्रभाव से अशोक वृक्ष के तैयार होने में तनिक भी देरी नहीं लगती।

तीर्थङ्कर भगवान् उसी अशोक वृक्ष के नीचे बैठ कर जगत् को कल्याणकारी धर्मोपदेश फरमाते हैं। वह अशोक वृक्ष मानों कहता है कि मेरा तो केवल नाम ही अशोक है और मैं तो पुद्गलों का बना हुआ हूँ, परन्तु असल में अशोक तो भगवान् तीर्थङ्कर ही हैं। तीर्थङ्कर भगवान् समस्त प्रकार के शोक से अतीत हैं और जगत् को भी अशोक बनाने वाले हैं। जिन्हों ने तीर्थङ्कर भगवान् के चरण-कमलों का आश्रय लिया, वे अशोक बन गये, उनकी सकल चिन्ताएँ सदा के लिए दूर हो गईं। जो वर्त्तमान में उनके चरण-शरण में हैं वे भी अशोक हो जाते हैं और जो भविष्य में प्रभु के चरणों का सहारा लेंगे, वे भी अशोक पद प्राप्त करेंगे।

उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता या उपाधि नहीं रहेगी । अतएव हे भव्यजीवो ! प्रभु के चरणों का ही आश्रय लो । ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं । उनको ही मेरा वार-वार नमस्कार हो !

भाइयो ! चार गति, चौवीस दंडक और चौरासी लाख जीव योनियों में, जहाँ कहीं देखो सर्वत्र शोक ही शोक लगा हुआ है । कोई भी प्राणी, किसी भी स्थिति में शोक से सर्वथा मुक्त नहीं है जो-लोग निर्धन हैं, उन्हे धन के अभाव में चिन्ता और शोक का सामना करना पड़ता है । जो धनवान् हैं उन्हे अपने धन के चले जाने की चिन्ता लगी रहती है । जिन्हे धन के जाने की चिंता नहीं, उन्हे-कुटुम्ब-परिवार आदि की दूसरी-दूसरी चिन्ताएँ सदैव सताती रहती हैं । किसी के पुत्र नहीं हैं तो वह पुत्र के लिए शोक किया करता है । कोई पुत्रवान् है और अगर उसका पुत्र दुराचारी और दुष्ट स्वभाव का है तो वह भी चिन्ता के सागर में डूवा रहता है । किसी के हाथ मे सत्ता है तो उसे सत्ता छिन जाने के भय वना रहता है आज राजाओं और महाराजाओं, जमींदारों और जागीरदारों से जाकर पूछो तो पता लगेगा कि उन्हें दिन में चैन नहीं और रैन में नींद नहीं है । इस प्रकार सारा संसार चिन्ता से व्याकुल दृष्टिगोचर होता है । एक भी प्राणी ऐसा नहीं मिल सकता जिसे किसी भी प्रकार की चिन्ता न हो, जो किसी भी प्रकार से शोक से ग्रस्त न हो ।

प्राणी मात्र दो प्रकार की वीमारियों से घिरा हुआ है— एक शारीरिक वीमारी है और दूसरी मानसिक वीमारी है । शरीर की वीमारी तो किसी वक्त शान्त भी रहती है, मगर मानसिक

वीमारी हर समय पीछे लगी रहती है। उत्तम एवं मूल्यवान वस्त्र धारण करके जो रईश मोटर पर सवार होकर सैर-सपाटा करने निकला है, लोग समझते हैं कि वह वहुत सुखी है परन्तु जरा उसके हृदय की वात पूछिए। उसके दिल की वही जानता है, दूसरों को क्या खवर है? उससे पूछोगे तो वह एक नहीं, दस मुसीवतें आपको गिना देगा। इस प्रकार संसार का कोई भी मनुष्य पूर्ण रूप से निश्चिन्त और शोकविहीन नहीं है। ऐसा होना संभव भी नहीं है।

चिन्ता और शोक की वीमारी सिर्फ मनुष्यों को ही लगी हो सो वात नहीं है। देवगण और पशु पक्षी भी इस वीमारी के शिकार हो रहे हैं। देवताओं को ईर्षा की आग जलाती रहती है। मृत्यु का भय विह्वल वनाये रहता है। पशुओं और पक्षियों के दुःख शोक की कल्पना तो सहज ही की जा सकती है। उन्हें सव तरह से कष्ट ही कष्ट भुगतना पड़ता है। क्षणभर के लिए शान्ति नहीं, निश्चिन्तता नहीं।

रह गये नरक के जीव! सो उनके कष्टों की कोई सीमा नहीं है। नरक में निरन्तर तीन प्रकार के कष्ट नारक जीवों को भोगने पड़ते हैं। प्रथम तो नरक की भूमि का स्पर्श ही अत्यन्त वेदनाजनक होता है। कहा है—

तहाँ भूमि परसत दुख इसो।
विच्छू सहस डसें तन तिसो॥

नरक की भूमि का स्पर्श होते ही शरीर में ऐसी घोर वेदना होती है, जैसे हजार विच्छुओं ने एक साथ शरीर में डंक मारा

हो ! और यह वेदना उन जीवों को सदैव बनी ही रहती है। इसके उपरान्त नारकी जीव आपस में ही बड़े भयानक रूप में लड़ते-झगड़ते हैं-मारकाट मचाये रहते हैं। किसी भी समय, एक घड़ी के लिये भी चैन नहीं। तिस पर असुरकुमार जाति के देवता तीसरे नरक तक जाकर गजब लड़ाते है। वे अत्यन्त निर्दयता के साथ नरक जीवों को मारते हैं, पीटते हैं, उनका छेदन-भेदन करते हैं, चमड़ी उधेड़ लेते हैं, उकलता हुआ शीशा पिलाते हैं, कढ़ाह में बड़े की तरह तलते हैं और सैकड़ों प्रकार से घोर अति-घोर वेदना पहुँचाते हैं।

सारांश यह है कि चार गतियों में से किसी भी गति का, कोई भी प्राणी सुखी नहीं है। किसी को किसी वस्तु की, किसी को किसी वस्तु की चिन्ता निरन्तर सताया ही करती है। जिसे और कोई चिन्ता नहीं, उसे भी मौत का भय तो भयभीत किये ही रहता है। उस भय से कोई संसारी जीव बचा हुआ नहीं है।

कोई कहा करते हैं साढ़े सात वर्ष के शनिजी लगे हैं, मगर शनिजी क्या निश्चिन्त है ? उन्हें भी मौत लगी हुई है। मंगल, राहू, केतू, चन्द्र, सूर्य आदि सब को मौत लगी है ये सब अपने-अपने स्थान से चलायमान होने वाले हैं। सब एक दिन काल के विकराल गाल में समा जाएँगे।

दुखों का कारण, लोग कहते हैं, ग्रह है। वास्तव में उनका कहना सत्य है। मगर वे यह नहीं जानते कि ग्रह क्या चीज है ? ग्रह का अर्थ है पकड़ना। जिसे आपने अपना मान कर ग्रहण कर लिया-जिस पर आपने अपनी आत्मीयता स्थापित कर ली,

वही आप के लिए ग्रह बन गया। इस प्रकार घर, कुटुम्ब-परिवार धन दौलत आदि जितने भी पदार्थ हैं, सब ग्रह हैं और सभी आपको व्यथा पहुँचाने वाले हैं। यह सुख-दायी प्रतीत होने वाले पदार्थ ही वास्तव में दुखदायी हैं। अतएव जिसने जितने ज्यादा पदार्थों को ग्रहण कर रक्खा है, उसके पीछे उतने ही ज्यादा ग्रह लगे हुए हैं। मगर मोह के कारण लोग इस सचाई को समझते नहीं हैं। इस कारण वे दु:ख से बचने की इच्छा रखते हुए भी दु:खों से बच नहीं सकते। यही नहीं, तथ्य तो यह है कि उसके समस्त प्रयास विपरीत फल देने वाले साबित होते हैं।

पर-पदार्थों को अपना मानना सबसे बड़ा ग्रह है और यही ग्रह सब अनर्थों का मूल और प्रधान कारण है। उदाहरण लीजिए—आप जिस गाँव में रहते हैं, उसमे बहुत-सी लड़कियाँ हैं। उनमें से कोई बीमार होती है और कोई मर भी जाती हैं। आपको उनकी बीमारी से चिन्ता नहीं होती और मरने से शोक नहीं होता। हाँ अगर किसी लड़की के साथ आपके लड़के की सगाई हो चुकी है और आपने उसे भावी पुत्रवधू के रूप में आत्मीय मान लिया है और अगर वह बीमारी हो जाती है तो आपको चिन्ता होने लगती है। इस तरह जब दूसरी लड़कियाँ बीमार होती है तो आपको चिन्ता नहीं होती और सगाई वाली लड़की बीमार होती है तो चिन्ता सताने लगती है। क्या आपने कभी सोचा है कि इसका क्या कारण है? इस चिन्ता का एक मात्र कारण ममता है इसी कारण चिन्ता है।

दूसरा उदाहरण लीजिए। आपके गाँव में किसी सेठ के घर चोरी हो गई और दस हजार का माल चला गया है। आप

यह समाचार सुनकर अनसुना-सा कर देते हैं। आपको दस हजार रुपया जाने से कोई चिन्ता या शोक नहीं होता। दूसरे दिन आपका एक रुपया गुम हो जाता है। उस एक रुपये के लिए आप चिन्ता करते हैं। सोचते हैं-अपने हाथ से किसी को दे दिया होता तो वह ऐहसान मानता! वृथा चला गया।

अब आप फिर विचार कीजिए कि आपको दस हजार रुपयों के चले जाने पर तो चिन्ता नहीं हुई थी और एक रुपया के गुम जाने पर चिन्ता हुई। इसका क्या कारण है? यही कि उन दस हजार पर आपको ममता नहीं थी और एक रुपया पर आपको ममता है! तो दुःख का कारण रुपये का जाना नहीं, वरन् उस पर ममता होना है।

इन उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सुखी बनने के लिए, चिन्ता और शोक से बचने के लिए ममता का त्याग करना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों आप ममत्व भाव के दायरे को छोटा करते जाएँगे, त्यों त्यों आपके शोक एवं दुःख के कारण घटते चले जाएँगे। मुनिजनों को चिन्ता और शोक का सामना क्यों नहीं करना पड़ता? इसी कारण कि वे संसार के किसी भी पदार्थ पर ममता नहीं रखते। यहाँ तक की वे अपने शरीर को भी अपना नहीं समझते। कहा है—

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खपरिग्गहे।
अवि अप्पणो वि देहंमि नायरंति ममाइयं॥

दशवैकालिक अ० ६ गाथा २२

अर्थात्-दुनिया की और-और वस्तुओं की तो बात ही दूर, मुनि जन अपने तन पर भी ममताभाव धारण नहीं करते।

पूर्ण रूप से ममत्वहीन होने के कारण मुनि निश्चिन्त रहते हैं। वे अपनी आत्मा के स्वरूप में रमण करते हुए मस्त बने रहते हैं। जब नमिराज की परीक्षा करने के लिए ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र ने मिथिला नगरी के जलने की बात उनसे कही तो नमिराज ने क्या उत्तर दिया था? उन्होंने कहा था-मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता। यह निस्पृहता, यह निरीहता उनके पूर्ण वैराग्य को प्रकट करती है। जिसके अन्तःकरण में इस प्रकार का वैराग्य होगा, वह संसार में रहता हुआ भी सांसारिक दुःखों से अतीत हो जायगा।

इसके विपरीत जिसके चित्त में ममताभाव का अड्डा है, वह लाख उपाय करने पर भी स्थायी रूप से निश्चिन्त और अशोक नहीं बन सकता। कारण यह है कि पौद्‌गलिक पदार्थों का संयोग नियम से नाशशील है। जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग अवश्यंभावी है। यह संभव नहीं कि जिन पदार्थों की आपको प्राप्ति हुई है, वे सदा काल आपके पास ही रहेंगे या आपके होकर ही रहेंगे। पहले तो वे पदार्थ ही आपको छोड़कर चल देंगे, लाख उपाय करके भी आप उन्हे रोक नहीं सकेंगे, आप स्वयं उन्हें छोड़ कर अपना रास्ता ले लेंगे। ऐसी स्थिति में दुःख से बचने का और सुख प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। और वह यही कि आप पर-पदार्थों के प्रति ममत्व धारण न करें। दुनिया की किसी भी चीज को अपनी न समझें। जिसे आप अपना समझते हैं, उसे अपना समझना छोड़ दें, क्यों कि वह

वास्तव में आपका है ही नहीं। जो आपका है वह आपसे कभी अलग नहीं हो सकता और जो कभी अलग हो जाता है वह आपका नहीं है।

एक अनुभवी का कथन है:—

सगाई करीने खोड़ो घड़ियो, परणो न पग वाल्यो।
सन्तति रूपी कीलो लगाई, पीछे हाल्यो न चाल्यो॥

खोड़ा तो आप जानते हैं? पुराने जमाने में अपराधी लोगों का पैर काठ में फँसा दिया जाता था। उस काठ को खोड़ा कहते है। जब किसी के साथ सगाई की जाती है तो मानों खोड़ा तैयार किया जाता है। जब विवाह किया जाता है तो समझो कि उस खोड़े में पैर डाला जाता है। विवाह के पश्चात् जब बाल-बच्चे हुए तो समझना चाहिए कि कीली ठुक गई है! अब छुटकारा नहीं मिल सकता। अब तो हिलना डुलना भी कठिन है!

'क्यों साहब, आजकल दिखाई नहीं देते!'

उत्तर मिलता है 'क्या करें महाराज! फुर्सत नहीं मिलती!'

'क्यों बहिन! आज कल धर्मोपदेश सुनने नहीं आती?'

'क्या करूँ महाराज! छोरा-छोरियों के कारण आ ही नहीं पाती!'

इसी को कहते हैं खोड़े में पैर फँसना।

शादी के समय पीठी कराई जाती है। उससे शरीर पर हल्का पीलापन आ जाता है। समझना चाहिए कि वह पीलिया की बीमारी का प्रतीक है!

जिस समय हिन्दुस्तान आजाद हुआ और जवाहरलाल नेहरु को प्रधान मन्त्री का पद सौंपा गया तो गांधीजी ने कहा-आज जवाहरलाल के सिर पर कांटों का ताज रक्खा जायगा। सचमुच प्रधानमंत्रित्व कांटों का ताज है। उन्हें रात-दिन चिन्ता में व्यग्र रहना पड़ता है। रात को नींद नहीं, दिन को पूरा आराम नहीं! कितना काम उन्हें करना पड़ता है! कोई लोग कहते हैं मैंने प्रधानमन्त्री को पत्र दिया, मगर जवाब ही नहीं आया! ऐसे लोगों की मनोदशा पर तरस आती है। अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए पत्र लिखते हैं और उत्तर नहीं मिलता तो उसका ढिंढोरा पीटते हैं!

एक आदमी ने किसी से पूछा थे मने ओलखो हो ? तब उसने कहा रांड़ा नरी जणी जणी ने छोड़ गई, मैं कुण-कुणने ओलखूँ।

भाइयो! जिसके सिर पर जितनी ज्यादा जिम्मेदारी होती है, उसे उतनी ही अधिक चिन्ता करनी पड़ती है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए जिम्मेदारी ओढ़ने वाले तो बहुत है, मगर देश, जाति, समाज और विश्व के कल्याण के लिए जिम्मेदारी उठाने वाले विरले ही होते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं—

फूले-फूले हम फिरे, होत हमारा ब्याव।
तुलसी गाय बजाय के, दियो काठ में पांव

विवाह के बाजे वास्तव में बाजे नहीं हैं, यह तो एक प्रकार से छाती-कूटा शुरु हो रहा है ? और विवाह के समय उतारी जाने वाली आरती क्या चीज है ? वह बंधन में फँसे रहने के फल-स्वरूप प्राप्त होने वाली नरक की आग है। आरती संकेत करती है कि विवाह करके अगर धर्म का आचरण न किया, गृहस्थधर्म का पालन न किया और गृहस्थधर्म का पालन करते हुए मुनिधर्म को अंगीकार करने की योग्यता न पाई तो परलोक में जाकर नरक की आग का सामना करना पड़ेगा। मगर जिन्हें दीर्घ दृष्टि प्राप्त नहीं है, वे इन बातों को कैसे समझ सकते हैं !

श्रीमद् आचारांग सूत्र में भगवान् ने फरमाया है: –

जरामच्चुवसोवणीए मारे सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ ।

अर्थात्-जरा और मरण के चंगुल में फंसा हुआ मूढ़ पुरुष धर्म को नहीं जानता है।

भाइयो ! जरा और मरण नजदीक आरहे हैं । ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है, जरा-मरण समीप से समीपतर होते जाते हैं। आयु गल रही है। जीवन क्षीण होता जा रहा है। अब वह क्षण दूर नहीं है कि विवश होकर इस दुनिया से कूच कर जाना होगा। यह बात सोलह आने सत्य है और ध्रुव सत्य है। फिर भी यह जीव मोह-माया के चक्कर में ही फँसा हुआ है। अशोक बनने की चिन्ता नहीं करता। धर्म की उपेक्षा करता है। दुनियादारी का कोई काम न हो पाया हो तो पश्चात्ताप करता है। कहता है-ओह ! आज तो गजब हो गया कि अमुक काम करना रह गया ! अब कैसे वह पूरा हो सकेगा ? मगर धर्म का कार्य

करने में जान बूझ कर लापरवाही करता है। सामायिक न की हो तो उसके लिए किंचित् भी चिन्ता नहीं करता। बल्कि सोचता है कि–खैर, कोई बात नहीं है। आज सामायिक नहीं हुई तो न सही, कल कर लेंगे! विचार कीजिए, जो आवश्यक है उसकी और इतनी लापरवाही दिखलाई जाती है और जो आवश्यक नहीं है उसके लिए इतनी चिन्ता की जाती है। यही तो मोह का चक्कर है। अरे भोले प्राणी! कब तक भूल करता रहेगा? कब तक मूढ़ बना रहेगा! कब तक मोह-मदिरा के नशे में उन्मत बना रहेगा? तुझे सूझता नहीं कि बुढ़ापा आता जा रहा है और मौत तेरे पास खिसकती आ रही है! तू मौत के मुँह में प्रवेश करने के लिए तैयार हो रहा है। तेरे सामने मौत रूपी व्याघ्री अपना विकराल मुँह फाड़ कर खड़ी है और तू इच्छा न होने पर भी उसी की ओर जा रहा है। काल तुझे धक्के दे-देकर उसके समीप पहुँचा रहा है।

अशन मे वसनं मे, जाया मे बन्धुवर्गो मे।
इति मे-मे कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम्

यह मेरा अशन है, यह मेरा वसन है, यह मेरी पत्नी है और यह मेरा वन्धु वर्ग है। इस तरह मैं और मेरा–मेरा करते हुए पुरुष रूपी बकरे पर काल रूपी भेड़िया हमला कर देता है। तब उसका मैं–मै चिल्लाना सदा के लिये समाप्त हो जाता है। फिर भी जीव चेतता नहीं।

संसार के प्राणी कितने अज्ञान में फँसे हुए हैं। उनके आँखों देखते-देखते उनके स्वजन मौत के मुँह में जा रहे हैं। जानते हैं कि आज तक कोई भी इस पृथ्वी तल पर सदा के लिए जीवित

नहीं रहा, फिर भी सावधान नहीं होते ! जब किसी प्रियजन का वियोग हो जाता है तो लोग विलाप करते-करते रोते, छाती पीटते और शोक मानते हैं, पर ज्ञानी जन कहते हैं कि दूसरों के लिए शोक मानने वाले नादान ! तनिक अपने विषय में भी तो विचार कर ! दूसरों को देखता है और अपने को क्यों भूलता है ?

म्रियमाणं मृतं बन्धुं, शोचन्ति परिदेविनः ।
आत्मानं नानुशोचन्ति, कालेन कवलीकृतम् ॥

भोले मनुष्य ! काल की काली और भयानक छाया तेरे पास आ रही है, कृतान्त तेरे जीवन को पल-पल में निगलता जा जा रहा है ! तू औरों के लिए रोता है, मगर अपने लिए क्यों उपेक्षा कर रहा है ?

भाइयो ! जगत् में ममता का बंधन ही प्रबल बंधन है। ममता ही समस्त विपत्तियों का मूल है । ममता के कारण ही नाना प्रकार के दुःख मनुष्य को दुखी बनाते हैं। दूसरों का लड़का जब मर जाता है तो कोई नहीं रोता, क्यो कि उस पर ममता नहीं है। उसे अपना नहीं माना है। और जिसे अपना माना है, उसके मर जाने पर रोये बिना नहीं रहा जाता । तो फिर क्यो नहीं समझ लेता कि यह अपनेपन का भाव ही दुःख और शोक का मूल कारण है। इसे हटा दे। ममता के आवरण को दूर कर। फिर सारे झंझट आप ही दूर हो जाएँगे। जब तू समझ जायेगा कि मैं किसी का नहीं हूँ और कोई मेरा नहीं है, तो तेरे चित्त में एक अनोखा भाव, एक प्रकार की अनोखी निश्चिन्तता, शान्ति दायिनी मस्ती उत्पन्न हो जायगी ! फिर संसार का कोई भी संयोग-वियोग तुझे दुखी नहीं बना सकेगा।

एक आदमी अपनी गर्भवती स्त्री को घर पर छोड़ कर परदेश गया। वह तब गया जब कि जाना अनिवार्य हो गया। व्यापार में उसके सिर पर भारी कर्ज हो गया और उसका वहाँ रहना संभव नहीं रह गया। तब उसने अपनी स्त्री से कहा-अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता। मेरा रह सकना संभव नहीं है। या तो मैं आत्महत्या कर लूँ अथवा परदेश चला जाऊँ, यही दो मार्ग हैं। सो आत्महत्या करने की अपेक्षा परदेश चला जाना ही अच्छा है। इस तरह विचार कर और अपनी पत्नी की अनुमति लेकर वह कहीं परदेश चल दिया। "पुण्य-पापों का फल सदा-एक सरीखा उदय में नहीं रहता" जब वह आदमी परदेश चला गया तो उसके पापों का उतार आरंभ हो गया था। जैसे भग आदि का नशा कुछ समय तक चढ़ाव पर रहता है और जब उसका चढ़ाव पूरा हो जाता है, तब उसकी ताकत कम होने लगती है। ताकत कम होने लगती है तो नशे का उतार आरंभ होता है। धीरे-धीरे नशा करने वाला अपनी असली स्थिति में आ जाता है। यही बात पापों के फल के विषय में भी समझ लेनी चाहिए। पापों का फल मन्द होते-होते किसी समय समाप्त हो जाता है।

वह आदमी परदेश गया। उसने किसी की दुकान के साथ संबंध जोड़ कर जैसे-तैसे व्यापार आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे उसे हजारों रुपयों की आमदनी होने लगी। उधर उसके घर से पुत्र उत्पन्न होने का समाचार मिला। उसे उस लड़के पर, जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था, बड़ा मोह उत्पन्न हो गया। अब उसका भाग्य और भी चमकने लगा। व्यापार में नफा होने लगा। वह लखपति हो गया।

अगर कोई मनुष्य पहले पाप और फिर पुण्य करता है, तो उसे इसी क्रम से अपने किये का फल भोगना पड़ता है। वह परलोक में निर्धन होता है और कदाचित् धनवान् के घर में भी उत्पन्न होगया तो दिवाला फूँक देता है। जब उसके पापों का फल दूर हो जाता है और पुण्य का उदय आता है तो वह फिर लाखों का स्वामी बन जाता है। कोई गरीब घरका लड़का करोड़पति के यहाँ गोद चला जाता है। पहले उसे फटे कपड़े भी मयस्सर नहीं होते थे, अब उत्तम रेशम के वस्त्र ही पहनता है। नीति-कार ठीक ही कहते हैं:—

तिरियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

तिरिया चरित को और पुरुष की तगदीर को देवता भी नहीं जान पाते तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है।

उस आदमी का लड़का अब दो वर्ष का हो गया। उसे अपनी पत्नी का पत्र मिला। कुशल-समाचार जानकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब तक वह चार-पाँच लाख का आसामी हो गया था। जब पैसा बढ़ता है तो निश्चिन्तता भी बढ़ती है और जब निश्चिन्तता होती है तो शरीर भी खूब लम्बा-चौड़ा हो जाता है। तदनुसार वह आदमी भी मोटा ताजा हो गया। वह पूरी तरह साता भोग रहा था। धन प्राप्त हो गया था और पुत्र की भी प्राप्ति हो गई थी! किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह गई थी। ऐसी स्थिति में वह दुबला-पतला कैसे रहता? धीरे-धीरे उसने

दश लाख रुपये कमा लिए! उधर उसका लड़का भी बड़ा हो गया। लड़का करीब ग्यारह-बारह वर्ष का हो गया।

अब उस आदमी को अपने घर लौटने की इच्छा हुई। उसने अपने आने के समाचार दे दिये। समाचार जान कर लड़के ने अपनी माता से कहा-माँ, पिताजी जब आएँगे तो मैं उनके सामने जाऊँगा।

माँ—बेटा! तू उन्हे पहचानता तो है ही नहीं!

लड़का मैं चिट्ठी लेता जाऊँगा!

माँ—अच्छा, आने का समय नजदीक तो आने दे। तब देखा जायगा।

जब पिता के आने का समय पास आया तो लडका घर से चल पड़ा। पहले गाँव की सराय में जाकर उसने पिता को तलाश किया पर वहाँ पता नहीं चला। वह और आगे बढ़ा। दूसरे मुकाम पर भी उसने पूछाताछ की, किन्तु वहाँ भी पता नहीं चला। लड़के ने सोचा-रात भर यहीं ठहर जाऊँ। सवेरे और अधिक तलाश करके आगे बढ़ूँगा। वह सोच कर लड़के ने सराय वाले से दर्याफ्त किया तो उसने बतलाया कि एक कोठरी का दिन भर का किराया एक आना है। उसने सराय के मालिक को एक आना दे दिया और समान भीतर रख कर कोठरी में ठहर गया।

सुबह हुई। उसके बाद करीब नौ बजे का समय हुआ होगा कि सराय के सामने एक मोटर आकर खड़ी हुई। उस मोटर में एक सेठ साहब आये थे। सराय के दरोगा से उन्होंने भी

सराय में ठहने का किराया पूछा। दारोगा ने वही एक आना बतला दिया। मगर एक आने के बदले उसे एक रुपया दिया गया। दारोगा एक रुपया पाकर कितना खुश हुआ, यह कहना कठिन है। उसे सेठ, भगवान् के रूप में दिखाई दिया। रुपये को अंटी में दबाकर, जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाता हुआ वह खाली कोठरी की तलाश में निकाला। मगर संयोग की बात है कि कोठरी एक भी खाली नहीं थी।

आखिर सराय का दारोगा उसी कोठरी के दरवाजे पर आया, जिसमें वह बालक ठहरा हुआ था। सेठ ने एक आना के बदले एक रुपया दिया था। उसे हर हालत में कोठरी देनी ही थी। अतएव सराय के दारोगा ने उस लड़के से कहा तू इस कोठरी को खाली कर दे। जितनी देर ठहर लिया, मुफ्त में ही समझ। तेरा एक आना वापिस लौटा दिया जायगा।

लड़का तेज-तर्रार था। उसने कहा चलो, हटो यहाँ से! मैं हर्गिज आज कोठरी नहीं छोड़ूँगा। क्या मैंने किराया नहीं दिया है? हटाना था तो पहले क्यों ठहरने दिया? और किराया भी क्यों लिया?

आखिर दारोगा ने सेठ के पास लौट कर कहा-एक छोकरा बड़ा चंट है। एक पूरी कोठरी में वह अकेला ही ठहरा है। मैंने उसे बहुत कहा-सुनी, पर मानता ही नहीं। आप स्वयं चलकर उसे समझा लीजिए।

सेठ ने अपने नौकरों को हुक्म दिया-तुम जाओ और उसे समझा दो। सीधी तरह समझ जाय तो अच्छा है, वर्ना उसका सामान बाहर फेंक देना और कोठरी खाली करा लेना।

भाइयो ! माया की शक्ति अद्भुत है। जिसके पास माया आ जाती है, वह नीति-अनीति की बात को भुला देता है। संपदा मनुष्य को घमंडी बना देती है। अकसर सम्पत्तिमान् लोग सहानुभूति से हीन, अकड़बाज और कठोर चित्त हो जाते हैं। सम्पति में कुछ ऐसा रुखापन होता है जो हृदय को शुष्क बना देता है-सरस हृदय को भी नीरस बना देता है।

माया दुलत्तो कही, आत जात दे लात।
आतां देवे पीठ पर, जातां छाती गात ॥

माया मनुष्य को गधे की तरह दुलत्ती झाड़ती है। जब लक्ष्मी आती है तो कमर पर ऐसी कस कर लात लगाती है कि मनुष्य की छाती आगे निकल आती है। इसी लिए तो सम्पत्तिशाली सीना फुला कर अकड़ता हुआ सा चलता है। और जब वह जाने लगती है तो उस फूली हुई छाती पर लात मारती है। इसी कारण लक्ष्मी के चले जाने पर लोग झुक जाते हैं, उनकी छाती भीतर की ओर घुस जाती है।

इस प्रकार आते समय और जाते समय लक्ष्मी लतियाती है, लेकिन लोग समझते नहीं! मूर्ख मनुष्य आँखों देखता हुआ भी अंधा बन जाता है और मानने लगता है कि लक्ष्मी मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ और इस पर मेरा पूरा अधिकार जम गया है। पर उस भले आदमी से पूछो कि आज तक लक्ष्मी किसकी होकर रही है? यह किसी की नहीं बनी और किसका इसने परित्याग नहीं किया? लक्ष्मी वेश्या के समान है जो किसी की न होती हुई भी सब की है और वास्तव में प्रत्येक को मूर्ख बनाती है। किसी कवि ने ठीक कहा है:—

लक्ष्मीः ! क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्तं,
अन्धा भवन्ति मनुजास्त्वदुपाश्रयेण ॥

अर्थात्–हे लक्ष्मी ! मैं तुमसे एक कटुक बात कहना चाहता हूँ। उसके लिए मुझे क्षमा करना। तुम्हारे भीतर न जाने कैसी शक्ति है कि जो लोग तुम्हारा आश्रय लेते हैं, वे अंधे हो जाते हैं !

लक्ष्मी सूझते को अंधा बना देने वाली दवाई है ! इसे प्राचीन काल के विद्वानों ने 'उलूक वाहिनी' नाम दिया है । 'उलूक वाहिनी' का अर्थ है उल्लू पर सवार होने वाली ! जैसे सरस्वती का वाहन हंस है, विष्णु का वाहन गरुड़ है, महादेव का वाहन वृषभ है, उसी प्रकार लक्ष्मी का वाहन उल्लू है । विभिन्न देवी-देवताओं के वाहनों की यह जो कल्पना की गई है, यह एक प्रकार का रूपक है और यह रूपक बड़ा ही विचारपूर्ण है। साधारण लोग इस रूपक अलंकार को ठीक तरह समझते नहीं है। अतएव वे यह समझ बैठते हैं कि सरस्वती हंस नामक पक्षी पर चढ़ी फिरती है और इसी तरह दूसरे देवता भी अपनी-अपनी सवारी पर चढ़-कर घूमते हैं। यह उनका भ्रम है। हंस का काम दूध और पानी को अलग अलग कर देना है। वह विवेक का प्रतीक है । इसका आशय यह निकला कि जहाँ सरस्वति-विद्या होगी, वहाँ विवेक होगा। इसी प्रकार और-और वाहनों की संगति बिठलाई जाती हैं। लक्ष्मी का वाहन जो उलूक है, सो अज्ञानान्धार का प्रतीक है। जहाँ लक्ष्मी है अर्थात् धन है, वहाँ अज्ञान है, मूढ़ता है। कहा भी है:—

बधिरयति कर्णविवरं, वाचं मूकयति नयनमन्धयति ।
विकृतयति गात्रयष्टिं, सम्पद्रोगोऽयमद्भुतो राजन् ! ॥

अर्थात्-सम्पत्ति एक प्रकार की बीमारी है। और-और बीमारियाँ तो प्राय एक-एक अवगुण ही उत्पन्न करती हैं, मगर सम्पत्ति की बीमारी अनोखी है। यह सभी इन्द्रियों को और सारे शरीर को बेकार कर देती है। इस बीमारी के प्रभाव से कान बहरे हो जाते हैं। धनवानों के हृदय इतने कठोर हो जाते हैं कि दीन-दरिद्र आदमी के हृदय को हिला देने वाली, दया जनक प्रार्थना-याचना की ओर वह कान ही नहीं देता। दुखियों का विलाप सुनने के लिए उसके कान बहिरे हो जाते हैं।

सम्पत्ति शाली गूंगा भी हो जाता है। गूंगा इस अर्थ में कि धन के अभिमान में आकर वह गरीबों से बात भी नहीं करता। चाहे अपना साधर्मी भाई हो या सजातीय हो, उससे बात करने में भी वह अपना अपमान समझने लगता है। इस प्रकार सम्पति रूपी रोग गूंगापन उत्पन्न कर देता है।

सम्पत्ति की बीमारी आँखों को अंधा बना देती है। लखपति और करोड़पति लोग अपने स्वार्थ के लिए पानी की तरह पैसा बहा देते हैं, पर अपने पड़ौसी की दीन-दशा उन्हें दिखाई नहीं देती।

धनवान् में एक प्रकार की अकड़ होती है। वह चलता है तो बड़ी भारी अकड़ के साथ चलता है। इस कारण उसका सम्पूर्ण शरीर ही विकृत हो जाता है। इस प्रकार के आशय से कवि कहता है कि यह सम्पदा की बीमारी अनोखी ही है।

प्राय: धनी लोग विपत्ति में पड़े हुए की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते और उसके करुण आक्रंदन की ओर कान नहीं देवे, इतना ही नहीं वरन् उनमें कई तो इतने निठुर होते हैं कि

उलटा उनका उपहास करने में भी संकोच नहीं करते हैं। विपत्ति-ग्रस्त पुरुष की हंसी उड़ाना कितनी बड़ी हृदय-हीनता है! ऐसे लोगों से एक कवि ने कहा है:—

> आपद्गतं हससि किं द्रविणान्ध मूढ ?
> लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम्।
> एतान् प्रपश्यसि घटाञ्जलयन्त्रचक्रे,
> रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः॥

अरे धनान्ध मूढ! तू संकट में पड़े हुए मनुष्य का क्यों उपहास करता है। लक्ष्मी कभी किसी के पास स्थिर होकर नहीं रहती है, इसमें आश्चर्य ही क्या है। कुंए पर जाकर रँहट को देख। रँहट की घड़िया पानी से भर जाती है। और फिर थोड़ी सी देर में ही खाली हो जाती है। खाली हो कर व फिर भर जाती हैं। इस प्रकार भरने और खाली होने का क्रम चालू हीं रहता है।

धन की भी यही दशा है। वह कभी आता है और कभी चला भी जाता है। चला जाता है तो फिर आ भी जाता है। आज जो दरिद्र है वह कल ही सम्पत्तिशाली बन सकता है और आज जो सम्पत्तिशाली है वही कल दाने-दाने के लिए मुँहताज हो सकता है। अतएव धनवानों का कर्त्तव्य है कि जब उनकी दशाअनुकूल हो तब वे धन का दुरुपयोग न करें। गरीबों को सताएँ नहीं, बल्कि अपने धन से उनकी सहायता करें। जिस सेठ की कथा मैं सुना रहा हूं, उसी की अवस्था का विचार करो। किसी समय वह धनवान् था। पाप का उदय आया तो उसका धन स्वाहा हो गया। फिर पाप के उदय का अन्त आया और

दशा अनुकूल हुई तो फिर उसके पास लाखों का धन हो गया। फिर भी उसे विवेक नहीं हुआ। उसे सम्पति की बीमारी हो गई। लक्ष्मी के साथ लक्ष्मी की बीमारी भी उसके पल्ले पड़ी। अतएव उसने अपने नौकरों को आज्ञा दे दी कि जाओ, उस छोकरे को कोठरी से बाहर निकाल दो। सेठ ने अपनी पहले की हालत का विचार नहीं किया। वह विचार करता भी कैसे ? लक्ष्मी विचार करने की शक्ति को ही समाप्त कर देती है न।

आखिर सेठ के नौकर उस लड़के के पास पहुँचे। उससे कोठरी खाली करने के लिए कहा। पर वह जब नहीं माना तो नौकरों ने धमकी देते हुए कहा—सीधी तरह मान जा, भले आदमी की तरह सामान बाहर निकाल ले, अन्यथा बाहर फैंक दिया जायगा। लड़के ने कहा—मैं मुफ्त में नहीं ठहरा हूँ। मैं ने किराया दिया है। मैं समय से पहले कोठरी खाली नहीं कर सकता।

नौकरों ने कहा तुझे मालूम नहीं कि सेठ साहब पधारे हैं और इस कोठरी में ठहरेंगे ?

लड़का दबने वाला नहीं था। उसने कहा - चलो, ऐसे कई सेठ साहब आते-जाते रहते हैं !

मगर लड़का आखिर लड़का ही तो ठहरा। वह कई नौकरों का सामना कैसे कर सकता था ? आखिर उसका सामान जबर्दस्ती बाहर रख दिया गया और कोठरी में सेठ का सामान जमा दिया गया। कोठरी के बाहर जाजम बिछा दी गई और गादी-तकिया लगा दिये गये। सेठजी आये और मसनद के

सहारे आराम करने लगे, क्यों कि वे मोटर में बैठे-बैठे थक जो गये थे !

लड़का लाचार होकर कोठरी के पास बैठ गया। मगर उसकी जीभ बंद नहीं हुई। वह कहने लगा–ठहर जाओ, मैं अभी अकेला हूँ, इसी कारण तुमने मेरा सामान फिंकवाया है। मगर मैं भी देख लूंगा। धन की सारी ठसक न निकाल दी तो कहना! इस प्रकार जब वह बड़बड़ाता रहा तो सेठ ने नौकर से कहा – यह छोकरा बड़ा बदमाश है! यों नहीं मानेगा इसके गालों पर दो-चार थप्पड़ जड़ दो!

नौकर उसके पास पहुँचा। बोला अब चुप्पी साधता है कि मरम्मत करूँ ? याद रखना, दोनों कान उखाड़ लूँगा!

मगर लड़का काहे को मानने लगा! उसकी बेइज्जती उसे चुप नहीं होने देती थी। आखिर नौकर ने उसे दो तमाचे लगा दिये। तमाचे लगने के कारण उसका हृदय व्याकुल हो उठा। वह रोने लगा और रोते-रोते सेठ को लक्ष्य करके कहने लगा— याद रखना तू ने मुझे पिटवाया है, पर इसका बदला लिये बिना नही मानूंगा। मेरे पिताजी परदेश से आने वाले है।

यह सुनकर सेठ ने उससे कहा--तुम्हारे पिता कहाँ से आने वाले है ? क्या नाम है उनका ?

लड़का बोला--हाँ, पिताजी की बात सुनते ही डर लग आया न ? मेरे पिताजी का नाम सेठ पन्नालालजी है। अमुक गाँव के रहने वाले हैं। उनके आने पर मैं तुम सब को देख लूँगा।

सेठ ने यह सुना तो उसके चेहरे का रूप ही बदल गया। उसे अब समझ में आ गया कि इसका पिता तो मैं ही हूँ। यह मेरा ही पुत्र है। यह भावना आते ही सेठ का हृदय ममता से परिपूर्ण हो गया। वह उठकर लड़के के पास जाने लगा। लड़का न जाने क्या समझ कर उठा और हाथ में एक पत्थर उठा कर मारने को तैयार हुआ। सेठ ने उसे पकड़ना चाहा तो वह हाथ काटने को उद्यत हो गया। तब सेठ ने कहा—बेटा, शान्त हो ! क्रोध मत कर। मैं ही तो तेरा पिता हूँ—मेरा नाम ही पन्नालाल है।

इस प्रकार सेठ और लड़का–दोनों के हृदय में अपनापन पैदा हो गया। दोनों के अन्तःकरण में ममता का भाव जग उठा। दोनों का क्रोध शान्त हो गया। सेठ ने उसे छाती से लगाया। वह सेठ के पैरों पर गिर पड़ा। फिर क्या था ! सेठ ने उसे गादी पर बिठलाया। हीरे, पन्ने और मोतियों के जेवर पहनाये कीमती रेशमी वस्त्र पहनाये।

भाइयो ! अब आप विचार कीजिए कि थोड़ी देर पहले क्या स्थिति थी और अब क्या स्थिति हो गई ? इस उलटफेर का असली कारण क्या है ? ममता ! ममता ! लड़का वही था और सेठ भी वही का वही था परन्तु इसके पहले किसी को अपना नहीं समझा था अब दोनों एक दूसरे को अपना मानने लगे। अपना मान लेने के कारण भावना में आमूल परिवर्तन हो गया। लड़के को सेठ राक्षस सरीखा मालूम होता था परन्तु अब देवता मालूम होने लगा। सेठ को लड़का तुच्छ, अशिष्ट और अवारा

जान पड़ता था, अब वही उसे अपना सर्वस्व, जीवनाधार-सा लगने लगा। ममता की ऐसी महिमा है।

नौकर लोग शर्म के मारे मरे जा रहे थे। हालां कि उन्होंने सेठ के कहने से ही लड़के को मारा था, फिर भी उन्हें ऐसा लगा कि कहीं सेठजी हमारे ऊपर नाराज न हो जाएँ। और कुंवर साहब तो कैसे क्षमा कर सकेंगे! हमारी आजीविका चली जायगी तो बड़ी दुर्दशा होगी। उन्होंने कुंवर साहब को हाथ जोड़ कर कहा–माफ करना भैयाजी। हमें क्या पता था कि आप हमारे मालिक हैं। हमने तो सेठ साहब का हुक्म बजाया था। सेठ ने नौकरों को तसल्ली दी और तब वे निश्चिन्त हुए। सेठने कहा—इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। जब तक इसे मैंने अपना नहीं समझा था तब तक ऐसा हो गया!

थोड़ी देर बाद सेठ अपने लड़के के साथ रवाना हुआ और घर पहुंचा। सारे परिवार में आनन्द छा गया।

यह सब ममता की करामात है! ममता हुई तो प्रेम उत्पन्न हुआ और उस पर निछावर हो गया। ममता न हुई तो दुःख देख कर भी आँखे फेर ली। दुनिया में यही व्यवस्था चल रही है!

आश्चर्य तो यह है कि पानी में भी आग लग रही है। ममता के बंधन को काटने के लिए धर्म है, पर लोगो ने धर्म को भी ममता का विषय बना लिया है। यह धर्म मेरा है, यह धर्म मेरा नहीं, तेरा है? मैं इस सम्प्रदाय का हूँ और तुम उस सम्प्रदाय के हो! इस प्रकार का भेदभाव आ जाने के कारण धर्म भी और सम्प्रदाय भी झगड़े के कारण बने हुए हैं। इनको ही आधार

वना कर लोग अपने चित्त को कलुषित करते है और आपस में ईर्षा-द्वेष धारण करते हैं।

कौन आये ? ओहो ! मेरे गुरु महाराज पधारे हैं। यह जान कर दश दफा दर्शन करने दौड़ोगे। और जव यह जानोगे कि हमारे सम्प्रदाय के नहीं, दूसरे सम्प्रदाय के मुनि आये है तो एक वार उनकी सूरत देखने भी नहीं जाओगे। यह सव क्या है ? इस भेदभाव की जड़ में सिवाय ममत्त्व के और क्या है ? भाई! तू मोक्षमार्ग का आराधक है तो तुझे गुणों का आराधक होना चाहिए। जिस किसी भी व्यक्ति में साधु के गुण हों, उसको साधु समझना चाहिए। उसे गुरु मानना चाहिए। मगर जैसे सम्पत्ति का वँटवारा कर लेते हो वैसे ही गुरुओं का भी तुमने वँटवारा कर लिया है। जो साधु अमुक सम्प्रदाय में हों वे तुम्हारे गुरु हैं और जो दूसरे सम्प्रदाय में हों, वे तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हैं। फिर चाहे ज्ञान और चारित्र मे वे कितने ही ऊँचे क्यों न हों ? भाइयो ! यह क्षुद्र ममता है। यह कषाय है। मोक्षमार्ग के पथिक को इससे वचना चाहिए। उसे सद्‌गुणों की पूजा करनी चाहिए। जो साधु वीतराग प्रभु की आज्ञा में विचरते हों और अपनी मर्यादा का भली भाँति पालन करते हों, उन सव को अपना गुरु मानो। गुरुओं का वंटवारा मत करो। आप प्रतिक्रमण सूत्र का पाठ हमेशा वोलते हैं:—

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाएसुसाहुणो गुरुणो।

जैन धर्म कितनी उदार शिक्षा देता है ? वह किसी एक को या अमुक नाम वाले को अपना अराध्य देव या गुरु मानने के

लिए नहीं कहता। जैन धर्म का विधान तो यह है कि जिस किसी ने भी चार घातिया कर्मों का नाश करके आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि कर ली है, वह सच्चा देव है। इसी प्रकार जो सच्चे साधु है, वही गुरु हैं।

इस प्रकार की उदार शिक्षा पाकर भी आपके मन में इतनी संकीर्णता क्यों आ गई है ? धर्म के विषय में भी अगर आप ममता का परित्याग न करेंगे तो फिर ममता का बंधन किस प्रकार टूटेगा ? कैसे तुम्हारा उद्धार होगा ? पानी में आग लगने लगेगी तो उसे बुझाने के लिए क्या उपाय होगा ? तुम गुणों को गौण और नगण्य समझ कर अपनेपन को ही अपना रहे हो-ममता में ही मंगल मान रहे हो; परन्तु स्मरण रखना कि इससे तुम्हारा त्राण नहीं होगा। 'मेरा-मेरा' करने से ही तेरा सारा काम बिगड़ रहा है। ममता के बंधन को तुम आप ही उत्पन्न करते हो और फिर आप ही उसमें फँस जाते हो। अपना अकल्याण करते हो दुखी होते हो, मुक्ति से विलग होते हो। वास्तव में ममता से मुक्त हो जाना ही सच्ची मुक्ति है !

तुम स्वयं जो हो सो हो। तुम्हारे आत्मस्वरूप के अतिरिक्त जितने भी दूसरे पदार्थ हैं, वे सब पर पदार्थ हैं। धन-सम्पत्ति आदि जड़ पदार्थ, माता-पिता पुत्र, पत्नी आदि चेतन पदार्थ सब पराये है। तुम्हारा शरीर भी तुम्हारा नहीं, पर पदार्थ हैं। यहाँ तक कि तुम्हारे आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक हो कर मिले हुए कार्मण वर्गणा के परमाणु और उनसे उत्पन्न होने वाले विभाव-परिणाम भी पर पदार्थ हैं। पर पदार्थों में अपनेपन की जो भावना है, वही समस्त दुःखों का प्रधान और मूल कारण

है। दुखों से छुटकारा पाने के लिये यह आवश्यक है कि आप अपने अपनेपन के भाव को अपनी आत्मा तक ही सीमित कर लें। अगर आपने पर पदार्थों को पर समझ लिया और पक्की निष्ठा बना ली तो जगत् की कोई भी शक्ति तुम्हें दुखी नहीं बना सकेगी।

इस सत्य की सचाई परखने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। यह कोई गुह्य तत्त्व नहीं है, जहाँ बुद्धि या मन की पहुँच न हो सकती हो। प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक परिस्थिति में और प्रत्येक पल में, अनुभव करता रहता है कि संसार की कोई भी वस्तु आत्मा से अभिन्न नहीं है। कोई भी मरने वाला अपने साथ न इंच भर भूमि ले जा सकता है, न कानि कौड़ी ले जा सकता है, न किसी संबंधी रिश्तेदार को ले जा सकता है। जब कुछ भी नहीं ले जा सकता तो कैसे वह उसकी चीज समझी जा सकती है? ठीक ही कहा है

वाजिराज गजराज मही औ महल कोष धन दारा,
यदि चेतन से हो अभिन्न तो कभी न होवे न्यारा।
है जिसकी जो असल सम्पदा वह क्या न्यारी होती?
क्या सूरज की जोत कभी भी अलग सूर्य से होती?
मैं हूँ सब से भिन्न अन्य अस्पृष्ट निराला,
आत्मीय सुख—सागर में नित रमने वाला।
सब संयोगज भाव दे रहे मुझ को धोका,
हाय? न जाना मैं ने अपना रूप अनोखा॥

और भी कहा जाता है:—

जनमे जितने जीव हैं, जग में करो विचार।
लाये कितने साथ में, पहले का परिवार ॥
राजपाट सुख-सम्पदा, बाजि वृषभ गजराज ।
मणि माणिक मोति महल, प्रेमी स्वजन-समाज ॥
आया है क्या साथ में जाएगा क्या साथ ।
जीव अकेला जायगा, बन्धु ! पसारे हाथ ॥

भाइयो ! यह कथन सत्य है, बावन तोले पाव रत्ती सत्य है ! कभी भी इस सत्य की परीक्षा कर सकते हो । आश्चर्य तो यह है कि सभी सचाई को समझते हुए भी सभी इसे भूले हुए हैं। सभी के सभी सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति में रात-दिन ऐसे जुटे रहते हैं, मानो इन्हे सदा काल यहीं रहना है और वे पदार्थ सदा इन्हीं के होकर रहेगे ! जान बूझ कर आँख मीचने वाले को कैसे जगाया जाय ? भाइयो ! तुम्हे क्या कह कर मैं समझाऊँ ? तुम्हारे हृदय के किस पर्दे को हटा कर मैं इस सत्य की अनुभूति कराऊँ ? इस वज्र सत्य को नग्न रूप में अनन्त ज्ञानी जगत् को दर्शा चुके है । मैं भी उन्ही की ध्वनि को दुहरा रहा हूँ । जिसकी आत्मा मे ज्योति हो वह सत्य के इस स्वरूप को देखें।

तुम इस सत्य को समझते हुए भी समझना नही चाहते। क्या इस लिए कि यह सत्य तुम्हे प्रिय नहीं है ? मगर सत्य जो है वही रहने वाला है । सत्य अटल है, अचल है, शाश्वत है, स्थायी है। उसे तुम्हारी रूचि या अरुचि की अपेक्षा नहीं है । तुम्हारी

रुचि उसे पलट नहीं सकती, तुम्हारी अरुचि उसे बदल नहीं सकती। अगर तुम किसी सचाई को देख कर भी अनदेखा करना चाहते हो तो इसमें तुम्हारी ही हानि है। तुम अपनी आँखें बंद कर लोगे तो क्या जगत् शून्य बन जायगा ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अतएव सत्य की उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। सत्य के साथ आंख मिचौनी मत करो। साहस के साथ सत्य को समझो और उसका सामना करो। इसी में तुम्हारी भलाई है। इसमें तुम्हारे जीवन की सार्थकता है। मनुष्य जीवन में ही सत्य को समझने और सत्य के अनुकूल आचरण करने की क्षमता प्राप्त होती है। इस जीवन को अगर आंखमिचौनी खेलते-खेलते खत्म कर दिया तो समझ लो कि अनन्त अंधकार में भटकने की तैयारी कर ली है। इसलिए भाइयो ! तत्त्व की उपेक्षा मत करो। शीघ्र उसे समझो और उस समझ को अमल में ले आओ।

जम्बूकुमार की कथा—

जम्बूकुमार ने सुधर्मा स्वामी के मुखारविन्द से तत्त्व का स्वरूप समझा। उन्हें सत्य का ज्ञान हो गया। वे उसे जान कर ही नहीं रह गये किन्तु तत्काल ही उसे जीवन में चरितार्थ करने को भी तैयार हो गए।

स्वर्णश्री का कथन सुनकर जम्बूकुमार कहने लगे-प्रिये ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें कोई नूतन बात नहीं है। जिन बातों का मैं उत्तर दे चुका हूँ, वही बातें तुमने दोहराई हैं। अतएव उनका उत्तर देना पिष्टपेषण ही होगा। वास्तविक बात तो यह है कि मोह रूपी पिशाच तुम्हें लगा हुआ है। वही तुम्हारे मुख से

बोल रहा है। उसने तुम्हारे विवेक को अभिभूत कर डाला है। इसी कारण तुम ठीक-ठीक न समझ पाती हो, न बोल पाती हो।

बुढ़िया के बालक की दुर्दशा जिस प्रकार हुई, उसी प्रकार मेरी भी दुर्दशा होगी, ऐसा तुम्हारा कहना है। परन्तु उस बालक में और मुझमें वास्तव में कोई समानता नहीं है। बालक की दुर्दशा इस कारण हुई कि उसने गधे की पकड़ी हुई पूंछ नहीं छोड़ी। गधे की पूंछ पकड़े रहने का मतलब है-चिर काल से आई हुई निस्सार और निराधार परम्परा को न छोड़ना। जो लोग अपने हित-अहित का विचार न करके हानिकारक रिवाज या पद्धति को नहीं छोड़ने और अपने विवेक द्वारा बतलाये हुए रास्ते पर नहीं चलते, वही गधे की पूंछ पकड़ने वाले छोकरे की तरह दुखी होते हैं।

मैं ऐसी किसी परम्परा को पकड़ कर नहीं बैठा हूँ। संसारी जीव अनादि-काल से विषयभोगों में लिप्त हो रहे हैं। अब मनुष्य भव पाकर और भोगों की भयकरता को समझ कर भी उन्हें त्यागना नहीं चाहते। यही गधे की पूंछ पकड़ना है। उन्हीं की दुर्दशा होने वाली है। मैं अनादिकाल की इस परम्परा को त्याग कर एक नये मार्ग पर चलने की तैयारी कर रहा हूँ। और तुम मुझे ही गधे की पूंछ पकड़ने वाले की उपमा दे रही हो। भला तुम्हारा उदाहरण मुझ पर कैसे घट सकता है? सुनोः—

एक राजा था। वह बड़ा पुण्यवान् था। उसे घुड़सवारी का बड़ा शौक था। उसने एक बछेरी को पाली। बछेरी पर उसका इतना प्यार बढ़ा कि राजा ने उसके खाने-पीने और नौकरों के

खर्च के लिए एक-दो गाँवों की आमद नियत कर दी। धीरे-धीरे वह बड़ी हुई। देखने में बड़ी सुन्दर थी। आखिर वह एक योग्य सवार के सिपुर्द करदी गई। उसने बड़ी होशियारी के साथ उसे उत्तम चाल सिखलाई। उसकी उत्तम चाल देखकर राजा उस पर और भी प्रेम करने लगा।

राजा अपनी उस वछेरी के लिए जो खुराक देता था, उसमें से उसका नौकर चुरा कर वेच दिया करता था और मौज उड़ाता था। हमेशा ऐसा करने से घोड़ी दुबली होने लगी। धीरे-धीरे वह वहुत दुबली हो गई और अन्त में अचानक किसी बीमारी ने उसके प्राण ले लिये।

घोड़ी अकामनिर्जरा के साथ मरी थी। अतएव वह किसी बड़े शहर में एक वेश्या के घर जनमी। वह बहुत खूबसूरत हुई इतनी खूबसूरत कि उस शहर में उसके मुकाबिले की कोई दूसरी वेश्या नहीं थी।

उधर घोड़ी का वह नोकर भी मरा। वह चोरी करने के कारण एक गरीब के घर उत्पन्न हुआ उसका शरीर बड़ा ही काला तथा कुरूप हुआ। उसे इन्द्रियाँ टेढ़ी-वांकी मिलीं। वह इतना बदसूरत हुआ कि औरों की तो बात क्या, उसके माँ-बाप भी उसे खिलाना पसंद नहीं करते थे। निरादर के साथ वह बड़ा हुआ। इधर वह वेश्या की लड़की भी नवयुवती हो गई।

एक दिन सवारी में बैठ कर वह नव युवती वेश्या हवा-खोरी के लिए निकली। सामने से वह कुरूप नौजवान आ रहा था। वह उसे देख कर पूर्वजन्म के संबंध के कारण उसके पीछे-पीछे

हो लिया और जब वह अपने घर पहुँची तो वह दरवाजे पर बैठ गया। वेश्या के यहाँ जो लोग आते, उस कुरूप को देख कर नाक भोंह सिकोड़ते और थू-थू करके चले जाते थे। वह बैठा २ तरसता है। लोग उसे भगाने की कोशिश करते हैं, मगर वह भागता नहीं है।

यह सब घोड़ी के दाने को चुराने के पाप का फल था। जो दूसरे के आहार पानी को बीच ही में हजम कर जाता है, उसकी परलोक में ऐसी ही दशा होती है।

आखिर वह आदमी झिड़कियां और ठोकरें खाता हुआ भी उसी वेश्या के द्वार पर पड़ा है! वह घर नहीं छोड़ता है, क्योंकि उसे अपने किये कर्म का फल भुगतना है। किये कर्म का फल भोगे विना कोई बच नहीं सकता। अतएव कर्म का उपार्जन करते समय ही विचार करना चाहिये।

प्रिये! क्या तुम समझ गई कि इस उदाहरण का क्या अभिप्राय है?

स्वर्णश्री नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं समझी।

जम्बू—तो समझो। तुम आठों घोड़ी के स्थान पर हो। अगर मैं तुम्हारे साथ विषयविलास करूँ तो वह तुम्हारे शील को चुराना होगा। फिर मैं भी उस नौकर के समान चोरी के पाप का भागी बनूँगा। उसका बदला चुकाने के लिये मुझे अधम स्थिति में जन्म लेना पड़ेगा। मै ऐसी हीन दशा भोगना नहीं चाहता! इसी कारण मैं तुम्हारे शील की चोरी भी नहीं करना चाहता। याद रखना कि यह विषयभोग विष के समान है।

मनुष्य को मूर्छित बना देने वाले हैं। "भोगा रोगकरा" अर्थात् भोग से रोग उत्पन्न होते हैं। मोही जीव ही इन्हे सुखकर मानते हैं। मोहनिद्रा में पड़े हुए जीव स्वप्न देखा करते हैं:—

जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलं,
पुत्रा मित्रमरातयो वसु बलं विद्या सुहृद्बान्धवाः।
चित्तस्पान्दितकल्पनामनुभवन्विद्वानविद्यामयीं,
निद्रामित्य विघूर्णितो बहुविधान् स्वप्नानिमान् पश्यति ॥

स्वभाव से ही चेतना धन का धनी यह जीव मोह रूपी नींद के वश होकर नाना प्रकार के सपने देखता है। वह कभी देखता है-मैं ने जन्म लिया है यह मेरा पिता है, यह मेरी माता है, यह मेरी जमीन है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा कुल है, ये मेरे पुत्र हैं, ये मेरे मित्र हैं, शत्रु हैं, ये मेरा धन है, ये मेरी सेना है, विद्या है, मित्र हैं, इस प्रकार के तरह तरह के स्वप्न वह देखता है। लेकिन वास्तव में उसका कुछ भी नहीं है। सब उसके चित्त की कल्पना का ही खेल है।

जब आप स्वप्न देखते हैं, तब आपको मालूम नहीं होता कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। उस समय वह स्वप्न सच्चा ही प्रतीत होता है। स्वप्न, स्वप्न था, यह बात बाद में मालूम होती है। नींद टूट जाने पर जब मनुष्य होश में आता है तभी वह जान पाता है कि मैंने स्वप्न देखा था और वह झूठा था। स्वप्न के समय जो कुछ दिखाई देता है, वह सब सच्चा मालूम होता है। इसी कारण स्वप्न में किसी भयङ्कर वस्तु को देख कर आदमी भयभीत होकर चिल्लाने लगता है-रोने लगता है। यही बात इस

समग्र जीवनव्यापी स्वप्न के संबंध में समझना चाहिए। मोहरूपी महानिद्रा में पड़ा हुआ जीव संसार के पदार्थों में अपनापन स्थापित करता है और यह नहीं समझ पाता कि अपनेपन की मेरी बुद्धि मिथ्या है! मैं झूठ समझ रहा हूँ! जब सम्यग्ज्ञान होता है—जागृत आती है—तभी पता चलता है कि मैं कैसे भ्रम में था! मैंने किस प्रकार पर-पदार्थों को अपना मान लिया था और जब उनके साथ मेरा संयोग होता था तो मैं प्रसन्नता का अनुभव करता था और जब उनका वियोग होता था तो विषाद में डूब जाता था।

भाइयो! आप लोग आज इसी स्वप्नदशा में हैं। मोह-निद्रा में मस्त हो रहे हैं। मेरा कुटुम्ब, मेरा परिवार, मेरा धन, मेरा मकान, मेरी दुकान आदि जो संकल्प आपके चित्त में उत्पन्न होते हैं, ये सब स्वप्न हैं। मगर आप इन्हे स्वप्न नहीं समझ रहे हैं, क्यों कि आप मोह की नीद में मग्न हैं। जिस दिन आपकी मोहनिद्रा भंग होगी, असलियत चमक उठेगी। आप समझ जाएँगे कि यह सब विचार और ख्याल झूठे थे।

जम्बूकुमार कहते है-स्वर्णश्री! मोह की नींद मे पड़े-पडे और नाना भांति के स्वप्न देखते-देखते बहुत लम्बा समय व्यतीत हो चुका है। अब तो जागो। सत्य वस्तु स्वरूप को समझो। कब तक गाफिल होकर भ्रम में पड़ी रहोगी? जागने वाले के जगाने से, स्वप्न देखने वाला जाग सकता है, मगर स्वप्न देखने वाले की बात मानकर जागने वाला स्वप्न तो नहीं देख सकता। इसी प्रकार तुम्हारा कथन मान लेना मेरे लिए संभव नहीं है। तुम्हीं मेरी बात मानो। देखो, मोह का फंदा बड़ा ही जटिल है। इसमें

से निकलने का ही प्रयास करना चाहिए। फँसने का प्रयत्न तो हर्गिज नहीं करना चाहिये। मोह के जाल में पड़ने से दुर्गति होती है। प्रिये! सोचो, समझो और सोच-समझ कर ही बोलो। यह बोल अनमोल हैं, इसलिए तोल-तोल कर बोलो। मैं रत्न से काच नहीं बनने वाला हूँ। तुम्हारी बातें सुनकर दुनियादारी के झगड़े में नहीं फँसने वाला हूँ।

भाइयो! आज थोड़ी सी सामयिक बात कह देना चाहता हूँ। दशहरा समीप आ रहा है। दशहरा भारतीय त्यौहार में एक प्रमुख त्यौहार गिना जाता है। यह विजय का त्यौहार है। कहते हैं दशहरा के दिन राम-रावण युद्ध में रावण मारा गया था। रावण दशानन कहलाता है। इसी कारण इस त्यौहार का नाम 'दशहरा' पड़ा है। इसे विजया दशमी भी कहते हैं, क्यों कि रावण के मारे जाने पर इसी दिन रामचन्द्र ने विजय प्राप्त की थी। यह त्यौहार आर्य जाति की विजय का स्मारक है। उनके पराक्रम की याद दिलाने वाला है। मगर आजकल जिस रूप में यह त्यौहार मनाया जा रहा है, वह आर्य जाति के लिए घोर कलंक है। इस दिन हजारों लाखों निरपराध और मूक पशुओं की गर्दन पर छुरी चलाई जाती है। भाइयो! मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि क्या भारत की आर्य-जाति का यही आदर्श था? निरपराध और पराधीन पशुओं के प्राण लूट लेना ही क्या तुम्हारे पूर्वजों की बहादुरी थी? पशुओं की हत्या करके अपने पुरखाओं का स्मरण करने वाले क्या, अपने पुरखाओं को घोर-अतिघोर कलंक नहीं लगा रहे हैं? इससे उनकी असभ्यता, कायरता और निर्दयता ही प्रकट नहीं होती? रामचन्द्रजी ने सीता के शील की

रक्षा के लिए, अन्याय और अत्याचार का प्रतीकार करने के लिए रावण के साथ युद्ध किया था। और तुम उसकी स्मृति में उलटा अनाचार, अन्याय अत्याचार करते हो। ऐसा करके तुम स्वयं पाप के गडढ़े में गिरते हो और अपने पूज्य पुरुषों को कलंकित कर रहे हो! सच्ची विजया दशमी मनाना है तो उस दिन संकल्प करो कि हम अन्याय का विरोध करेंगे, अत्याचार का विरोध करेंगे! सबल के द्वारा निर्बल पर जो अत्याचार होते हैं उनका विरोध करने की शिक्षा देने के लिए यह त्यौहार आता है! परन्तु लोग उस दिन और ज्यादा अत्याचार करते हैं! भैंसे और बकरे काट-काट कर अपने म्लेच्छपन को अपने जंगलिपन को और अपने हत्यारेपन को प्रकट करते हैं। और फिर कहते हैं कि हम विजया दशमी मना रहे हैं! यह बड़ी भारी मूर्खता है।

जैन धर्म तो अहिंसा को आधार भूत मानकर चलता ही है, मगर दूसरे तमाम धर्मों ने भी अहिंसा की ही हिमायत की है। कोई भी धर्म हिंसा का विधान नहीं करता। 'हिंसा नाम भवेद् धर्मो न भूतो न भविष्यति' हिंसा कभी धर्म नहीं हुई और न कभी होगी ही। हिंसा और धर्म में परस्पर विरोध है। जो हिंसा है वह धर्म नहीं और जो धर्म है वह हिंसा नहीं। यह वैदिक धर्म के ऋषियों की भी घोषणा है। ऐसी हालत में हिंसा करके धर्म की कामना करने वाले लोग क्या दया के पात्र नहीं हैं?

भाइयो! जैसे तुम्हे अपने प्राण प्यारे है, उसी प्रकार भैंसों बकरों को भी अपने-अपने प्राण प्रिय है। क्या तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारे प्राण हरण कर ले? नहीं। तो फिर तुम दूसरों के प्राण किस प्रकार ले सकते हो?

शेख सादी साहब जैसे मुसलमान भी कहते हैं कि अगर तुम एक चींटी की भी जान ले लोगे तो उसका बदला चुकाना पड़ेगा।

जैसे तुम मरना नहीं चाहते, जिन्दा रहना जाहते हो; उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना पसंद करते हैं। किसी को भी मरना पसंद नहीं है अगर तुम्हें पकड़ कर कोई पुजारी किसी देवी के आगे बलि चढ़ाना चाहे तो तुम उस पूजारी को क्या कहोगे ? उस देवी के विषय में भी क्या सोचोगे ? बस, यही बात उन पशुओं के विषय में भी सोचो। फर्क है तो इतना ही कि तुम व्यक्त वाणी में बोल सकते हो और पशु नहीं बोल सकते।

मनुष्य बड़ा भाई है और पशु-पक्षी उसके छोटे भाई हैं। मनुष्य अगर किसी पशु-पक्षी के प्राण लेता है तो मानना चाहिए कि वह अपने छोटे भाई के प्राण लेता है।

समस्त धर्म हिंसा का निषेध करते हैं, फिर भी खेद की बात है कि कुछ जिह्वालोलुप और स्वार्थी लोग, भोली जतना को भ्रम में डाल देते हैं और उसे हिंसा के लिए उकसाते हैं। ऐसे लोगों ने भारत की असली और ऊंची संस्कृति को बिगाड़ दिया है। धर्म के सच्चे रूप को छिपा दिया है। ज्ञानियों की नजरों में वे अपराधी हैं और आगे चलकर उन्हें अपराध के लिए कटुक फल भुगतना पड़ेगा। ऐसे लोगों की बातों में आकर जो अज्ञानी हिंसा का क्रूर कर्म करते हैं, वे भी दंड से बचने वाले नहीं हैं। इस लोक में भी वे समझदारों की घृणा के पात्र बनते हैं और परलोक में भी उनकी दुर्दशा होने वाली है।

विजयादशमी विजय का त्यौहार है। विजय अपने शत्रु पर प्राप्त की जाती है तो क्या बेचारे सीधे-सादे असमर्थ बकरे

और भैंसे तुम्हारे शत्रु हैं ? क्या कभी वे तुम्हारा सामना करने आते हैं ? उनके पास तलवार नहीं है, बंदूक नहीं है, यहाँ तक कि पैने नाखून और दांत भी नहीं है। वे बोल भी तो नहीं सकते। उनके प्राण लेकर अगर कोई विजेता कहलाना चाहता है तो वह समझदार नहीं, पागल है और पागलखाना ही उसके लिए उपयुक्त स्थान हो सकता है। बकरों को मार डालने वाले बहादुरो ! तुम्हारी बहादुरी धन्य है ! तुमने अपनी माता के दूध को भी लजाया ! क्षत्रिय कहलाने वाले लोग भी कितने कायर हो सकते हैं, यह देखना हो तो गरीब बकरों और पाड़ों का बलिदान करने वाले क्षत्रियों को देख लो ! अफसोस है कि जिन क्षत्रियों की वीरता जगत् में विख्यात थी और जो रणभूमि में शस्त्रहीन शत्रु पर भी आक्रमण नहीं करते थे, उन्हीं के वंशज आज बकरों और पाड़ों पर शस्त्र चलाते हुए शर्मिन्दा नहीं होते और फिर भी अपने क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं। कितना अधःपतन हो गया है ! क्षत्रिय वीर अपनी वीरता को विस्मृत कर बैठे हैं और कायरता के काम करके अपनी बहादुरी जतलाने में संकोच नहीं करते।

किसी भी जाति के पशुओं की हत्या मानव जाति के लिए कलंक की बात होनी चाहिए; क्यों कि मनुष्य समस्त जीव-धारियों में सर्वश्रेष्ठ गिना गया है। उसकी बुद्धि और उसका विवेक जीवों की रक्षा में लगना चाहिए। ऐसा होगा तो जगत् में शान्ति होगी, सुभिक्ष होगा, अमन-चैन होगा। मगर मनुष्य जाति हिंसा से बाज नहीं आएगी तो प्रकृति उससे बदला लेगी और सुख-शान्ति की उसकी समस्त योजनाओं को लात मार कर ठुकरा देगी। आज यही लक्षण दिखाई दे रहे हैं। ज्यों-ज्यों हिंसा

बढ़ रही है, प्रकृति का प्रकोप भी बढता चला जाता है। देखना है, मानवजाति और प्रकृति के इस संघर्ष मे कौन विजयी होता है ? पर हम यह न भूल जाएँ कि मानवजाति विज्ञान की बदौलत चाहे जितनी सशक्त हो गई, प्रकृति के आगे वह किसी गिनती में नहीं है। प्रकृति की एक ही ठोकर उसके तमाम मंसूबों को धूल में मिला सकती है। प्रकृति का प्रकोप, जब भूकम्प के रूप में प्रकट होता है तो नगर स्वाहा हो जाते हैं। प्रकृति ज्वालामुखी के रूप में जब अपना रोप प्रकट करती है तो बड़े से बड़े वैज्ञानिक भी झक मारते रह जाते हैं। अतिवृष्टि अनावृष्टि और बाढ़ के रूप में भी प्रकृति अपने क्रोध को व्यक्त करती है। तब विज्ञान बेचारा ताकता रह जाता है ! सारांश यह है कि प्रकृति के साथ संघर्ष करके मनुष्य विजयी नहीं हो सकता। और जब तक घोर हिंसा चालू है तब तक प्रकृति भी अनुकूल नहीं हो सकती। अतएव प्रकृति को अनुकूल बनाने के लिए हिंसा जैसे घोर कृत्यों पर नियंत्रण करना चाहिए। आशा की जाती है कि ऐसा करने से जगत् में सुख-शान्ति का विस्तार होगा। प्रकृति के प्रसाद से मनुष्यजाति का मंगल होगा।

भाइयो ! आगामी दशहरे पर आप लोग, दूसरे लोगों को यह बात समझावें। उन्हें बतलावें कि इस प्रकार की हिंसा मानव जाति की भलाई में बाधा पहुँचाने वाली है, भारत की सभ्यता के लिए कलंक रूप है और हिंसा करने वालों के लिए घोर अनर्थ का कारण है। भारतवर्ष में से जिस दिन इस प्रकार की हिंसा सर्वथा उठ जायगी, उस दिन भारत का भाग्य चमकने लगेगा।

२५-६-१६४८ }



अनबन

()—()—()—()

॥ स्तुति ॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आप के गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

इस पद्य में आचार्य महाराज ने अत्यन्त सुन्दरता के साथ भगवान् के गुणों का वर्णन किया है। वे कहते हैं–दोषों को रहने के लिए संसार में स्थान-आधार की कमी नहीं है। उन्हें अनेकों का आश्रय मिला हुआ है। चाहे जिसको देखो, उसमें न्यूनाधिक परिणाम में दोष रहते ही हैं। इस प्रकार जब सारी सृष्टि में दोष रहे हुए हैं तो दोषों को घमंड हो जाना स्वाभाविक है। इस घमंड के कारण दोषों ने भगवान् की परवाह नहीं की। उनकी ओर आँख उठा कर भी उन्होंने नहीं देखा। दोषों ने सोचा–सारा संसार जब हमे अपना रहा है तो हमें क्या परवाह है ? इस घमंड के कारण वे भगवान् ऋषभदेव से दूर ही दूर रहे। परिणाम यह हुआ कि भगवान् में समस्त गुणों को ही आश्रय मिला ! भगवान् ऋषभदेवजी में सब गुण ही गुण इकट्ठे हो गये तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? भगवान् में इतने बहुत गुणों का समावेश हो गया है कि अवगुणों के रहने की जगह ही नहीं रह गई। भगवान् दोषों का जरा भी आदर नहीं करते, अतएव दोष कहते हैं कि–हमें आपकी क्या अपेक्षा है। समस्त संसार हमारा स्वागत करता है, हमें गले से लगाता है; अकेले आप हमें नहीं पूछते तो न सही ! इस तरह स्वप्न में भी दोषों ने आपकी ओर आने की परवाह नहीं की। इसी कारण भगवान् अनन्त गुणों से समृद्ध हैं।

यह अलंकारमय कथन है। इस कथन का मूल आशय यही है कि भगवान् ने अपनी आत्मा को इतनी पवित्र और निर्मल बना लिया था कि उसमें लेश मात्र भी दोष को स्थान नहीं रह गया था। उनकी आत्मा अनन्त आत्मिक गुणों से सुशोभित थी।

जिनमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्त शक्ति विद्यमान है, उन आदि तीर्थङ्कर, नाभिनन्दन भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार बार नमस्कार हो।

भाइयो! दुर्गुण और सद्गुण न्यूनाधिक मात्रा में सभी संसारी जीवों में होते हैं। परन्तु जो अपने दुर्गुणों को जीत कर उन्हें सद्गुण के रूप में पलट लेते हैं, जो दुर्गुणों को त्याग करके सद्गुण ही सद्गुण धारण करते हैं, वे लोकोत्तर महापुरुष स्तुति के योग्य बनते हैं।

दुर्गुणी में दुर्गुण और सद्गुणी में सद्गुण ही रहने चाहिए। चोर के पास चोर और साहूकार के पास साहूकार ही रहना प्रसंद करता है। जो स्त्री कुलक्षणी होगी, वह खराब चाल-चलन वाले के पास ही रहना पसंद करेगी और सदाचारी के पास सदाचारिणी स्त्री ही रहना पसंद करेगी। बदचलन स्त्री जब देखती है कि इस गुणवती स्त्री की बहुत प्रशंसा हो रही है तो उसके मन में डाह पैदा होती है। वह सोचती है कि इसकी इतनी तारीफ होती है और मेरी तारीफ नहीं होती है! और फिर वह कहती है—मै तो ऐसी को फूटी आँखों से भी नहीं देखना चाहती! भाई! अच्छी बात है कि वह न देखे। उसके न देखने में ही उस गुणवती स्त्री की भलाई है।

पानी की वर्षा होती है तो सब प्रकार की वनस्पतियाँ फलती-फूलती हैं। बहुत-सी नवीन वनस्पतियाँ उग जाती हैं और पहले उगी हुई हरी-भरी हो जाती है। उनमें नये प्राण आ जाते

है। वे अपूर्व शोभा धारण करने वाली हो जाती हैं। किन्तु जवासा नामक एक रूखड़ी इसका अपवाद है। जैसे-जैसे वृष्टि होती है, वह सूखती जाती है। वर्षा जवासा को पसंद नहीं आती तो कहो भाई! इसमें पानी का क्या दोष है?

इसी प्रकार जो पुरुष दुर्गुण का अखाड़ा बना हुआ है, जो दुर्गुण से पूरी तरह लिप्त हो गया है वह सद्गुणों और सद्-गुणवानों को देख २ कर ईर्षा की आँच से तपता रहता है और सूखता जाता है। दुर्गुणी को गुणवान् की बातें पसंद नहीं आती यहाँ तक कि किसी-किसी पापी को तो परमात्मा की महिमा भी नहीं रुचती है। पापी जीव को पाप ही पसंद आते हैं। पापियों पर ही उसे प्रीति उपजती है। वह समझाने पर भी नहीं समझता यही नहीं, समझाने वाले से भी द्वेष करता है। पापी जीव की यह दशा बड़ी ही दयनीय होती है। अज्ञानी जीव ज्ञानी को देख कर द्वेष करता है। ज्ञानी सोचता है कि यह बेचारा अज्ञान के चंगुल में फँसा हुआ है। इसकी रुचि और मति इतनी बिगड़ गई है कि गुणों को ग्रहण करने की तो बात दूर रही, उलटा गुणों से ही द्वेष करता है। इस प्रकार अज्ञानी, ज्ञानी को देखकर जलता है और ज्ञानी उसे देखकर दया से द्रवित होता है! ज्ञानी उस पर द्वेष नही करता। ज्ञानी सोचता है—कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। इस बेचारे के ऐसे कर्मों का उदय आया है कि गुणों को ग्रहण करना तो दूर रहा, उलटा गुणों से द्वेष करता है। वास्तव में ऐसे पुरुष दया के पात्र हैं।

भोगी त्यागी को देख कर जलता है—अपने स्वार्थ में बाधा पड़ती देखकर ईर्षा करता है। वह विचार करता है कि यह त्यागी

क्यों बने ? यह गुणी लोग हमारे सुख, वैभव और स्वार्थ में बाधा पहुँचाते हैं। इसी प्रकार धनवान् को देखकर निर्धन कुढ़ते हैं, नीरोग को देखकर रोगी जलता है, सुन्दर और रूपवान् पर नजर पड़ने से कुरूप को जलन होती है। यह स्वाभाविक है। केसर और काजल में बनती नहीं है।

इसी प्रकार हिंसा और दया में नहीं बनती। अगर कोई दया की प्ररूपणा करता है तो हिंसा करने वाला कहता है—जब देखो तब दया-दया की रट लगाये रहते है तो क्या प्राण त्याग दें ? फाँसी लगा कर मर जाएँ ? पानी नहीं पीएँ, वनस्पति न खाएँ ? कहते हैं—धर्म करो, धर्म करो। तो क्या विवाह शादी न करें ? क्या सब के सब बाबा-जोगी बन जाएँ ? अज्ञानी जीव इस प्रकार की बातें किया करते हैं। वे अज्ञान में इतने अधिक डूब गये हैं कि उन्हें ज्ञान की बात ही नहीं सुहाती। वास्तव में ऐसे लोगों पर ज्ञानियों को अधिक दया करनी चाहिए। अगर वे विरोधी आचरण करें, कष्ट दें तो भी बुरा न मानते हुए बल्कि और भी अधिक दयाभाव धारण करते हुए उनके उद्धार का प्रयत्न करना चाहिए।

देखो, चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी कितने जबर्दस्त थे। जब वे साधु हो चुके थे परन्तु केवलज्ञानी नहीं हुए थे, तब की बात है। गोशालक नामक एक व्यक्ति था। उसने भगवान् की महत्ता देखी तो विचार किया मैं इनके साथ रहूँ और इनकी सारी करामात सीख लूँ। भगवान् का जब पारणा होता था तो देव आकाश से फूल बरसाते थे, सुगन्धित जल की वर्षा

करते थे, दुंदुभी बजाते थे, सोना बरसाते थे और "अहो दानम्, अहो दानम्" की ध्वनि किया करते थे। यह सब भगवान् के तप की महिमा थी। परन्तु गोशालक इस तथ्य को नहीं समझता था। उसका ख्याल था कि यह सब महावीर की करामात है। यह करामात अगर मैं भी सीख लूं तो कितना मजा आएगा! फिर मेरी भी ऐसी ही पूजा-प्रतिष्ठा होने लगेगी। मैं भी चैन की वंसी बजाऊंगा। गोशालक शनि की थावड़िया बता-बता कर अपनी आजीवीका चलाया करता था। उसने इस आजीविका से छुटकारा पाने के लिए और आनन्द से जीवननिर्वाह करने की गरज से सोचा - मैं भी महावीर की सब विद्याएँ सीख लूँ तो आनन्द ही आनन्द हो जायगा।

इस प्रकार विचार करके वह भगवान् के पास आया और बोला-महाराज, मै भी आपका चेला हूँ। तीर्थङ्कर भगवान् केवलज्ञान होने से पहले किसी को न दीक्षा देते हैं, न उपदेश देते है और न चेला बनाते है। अतएव वे मौन रहे। गोशालक उनके साथ साथ रहने लगा। वह ग्रहविद्या और ज्योतिपविद्या में कुशल था ही, अपनी आजीविका मजे में चलाने लगा। पांच-छह वर्ष तक वह भगवान् के साथ रहा और होशियार होकर अलग हो गया। अलग होकर वह कहने लगा-मैं खुद भगवान् हूँ। महावीर झूठे हैं। वह तीर्थङ्कर नही है। मैं ही सच्चा हूं, तीर्थङ्कर हूँ और भगवान् हूँ।

दुनिया झुकनेवाली है। झुकाने वाला चाहिए, दुनिया में झुकने वालों की कमी नहीं है। कुशल मनुष्य दिखावा करके जनता को अपनी ओर मोड़ लेता है। वह जिधर लेजाना चाहे

उधर ही लेजाता है। सत्य असत्य की छान वीन करने वाले लोग कितने होते हैं ? सत्य को समझने की योग्यता वहुत कम लोगों में पाई जाती है। अधिकांश तो देखा देखी चलते हैं। कई लोग स्वार्थ से प्रेरित होकर, आगे का विचार किये विना ही चल पड़ते है।

संसार में आज भी हजारों मजहव हैं। वे सव किसके सहारे चल रहे हैं ? ऐसे लोगों के सहारे ही तो वे निभ रहे हैं। इन मजहवों में कई एक तो इतने गंदे हैं कि सभ्य समाज में उनकी चर्चा करते भी संकोच होता है। नाना प्रकार के दुराचारों को उनमें प्रश्रय दिया जाता है। मद्य-मांस, आदि का सेवन किया जाता है। व्यभिचार सेवन किया जाता है। ऐसे वीभत्स पंथ भी दुनिया में चल रहे हैं। इन पंथ चलाने वालों को भी अनुयायी मिल ही जाते हैं।

दुनियां मे जव कभी, कोई भी पंथ चला, उसके अनुयायी हो ही गये। ये अनुयायी विभिन्न विचार और स्वार्थ लेकर उस पंथ में शामिल हो जाते हैं। धार्मिक स्वाधीनता के नाम पर वे अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। उनपर कोई रोक-टोक नहीं होती।

आज ही ऐसी स्थिति हो सो वात नहीं है। वहुत प्राचीन काल से ही यह क्रम चला आ रहा है। भगवान् महावीर के युग में भी यही हाल था। वल्कि ऐसा मालूम होता है कि उस समय तो धर्म संस्थापक एवं तीर्थङ्कर वनने की बीमारी-सी थी। भगवान् के समय में कितने ही धर्माचार्य थे जो अपने धर्म को सव से

अलग निराला साबित करते थे और धर्मसंस्थापक बनने का दावा करते थे। गोशालक भी उन्हीं में से एक था। उसने भगवान् महावीर से अलग होकर एक नया ही पंथ चला दिया। वह लोगों को ज्योतिषविद्या के द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो गया। फलां महीने में धन होगा, सुख होगा, मरण कष्ट होगा, लड़का होगा या लड़की होगी, आदि-आदि बतलाने लगा। वह सुख, दुःख, जीवन, मरण, लाभ और हानि ये छह बातें बतलाता था।

गोशालक नियतिवादी बन गया। नियति का मतलब है होनहार। गोशालक का कहना था कि जो होनहार है वही होगा और वह होकर ही रहेगा। तुम्हारे लाख प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं हो सकता। अतएव पुरुषार्थ व्यर्थ है। मनुष्य लाख करोड़ पुरुषार्थ करके भी भवितव्य से अधिक कुछ भी नहीं कर सकता। इस प्रकार उसने पुरुषार्थ को व्यर्थ बतलाकर होनहार को ही एकान्त रूप से कारण बतलाया।

जो लोग कायर हैं, कामचोर हैं, जिससे कुछ पुरुषार्थ नहीं बनता, उन लोगों को गोशालक का यह उपदेश रुचिकर लगे, यह स्वाभाविक है। उन्होंने सोचा—चलो, यही उपदेश अच्छा है।

यद्भावि न तद् भावि, भावि चेन्न तदन्यथा।

अर्थात्—जो होनहार नहीं है वह कदापि हो नहीं सकता, और होनहार है वह मिट नहीं सकता।

ऐसी हालत में प्रयत्न और पुरुषार्थ करने की आवश्यकता ही क्या है? जो धन-धान्य सुख-सम्पदा मिलने वाली होगी, वह

मिले बिना रहेगी नहीं, और यदि नहीं मिलने वाली है तो चोटी से एड़ी तक पसीना वहाने पर भी नहीं मिल सकती। फिर दौड़ धूप करने की क्या जरुरत है ? मजे करो, चैन की गुड्डी उड़ाओ। करने-धरने से कुछ नहीं होगा। होनहार बड़ी प्रबल है।

इस प्रकार कुछ आलसी आदमी गोशालक के पीछे हो गये। इनके अतिरिक्त कुछ लोग और भी उसके अनुयायी बन गये। पहले कह चुके हैं कि वह लाभ-अलाभ आदि बतलाया करता था। दस बीस आदमियों को भिन्न भिन्न प्रकार का फल या भविष्य बतला दिया जाय तो उनमें से दो चार को बतलाया हुआ सच्चा हो ही जाता है। आज भी ऐसा पेशा प्राप्त करने वाले लोग बहुतेरे हैं। उनका धन्धा मजे से चल रहा है हजारों में से एक-दो उनके चंगुल में फँस गये तो बस, उनका मतलब हल हो जाता है। और इतनों का फँस जाना कोई बड़ी बात नहीं है। संयोगवश जिनको बतलाई बात सच्ची साबित हो गई, वे उसके प्रशंसक एवं प्रचारक बनकर दो-चार नये शिकार फँसा देते हैं। इस प्रकार जो निमित्त शास्त्र या ज्योतिष में पारंगत नहीं है, वह भी मजे में कमा खाता है और प्रतिष्ठा भी पा लेता है। फिर जिसे इन विद्याओं को अच्छी जानकारी हो, वह तो और भी अधिक सफल हो जाता है। गौशालक ऐसे ही कुशल व्यक्तियों में था। उसके अनुयायी इस कारण भी बढ़ गये थे। कहते हैं, ग्यारह लाख से भी अधिक उसके अनुयायी थे।

भगवान् महावीर पूर्ण रूप से निस्पृह थे। गोशालक जब उनके साथ था तो उन्हे हर्ष नहीं था, साथ छोड़ गया तो उन्हें

विपाद नहीं हुआ। जब वह भगवान् की प्रशंसा करता था तब वे राजी नहीं होते थे जब निन्दा करने लगा तो वे नाराज नहीं हुए। उनका समभाव अखण्डित था। साधक लोग जिस समभाव की कामना किया करते हैं वह समभावयों है—

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तुसदाऽपि नाथ

हे नाथ! दुःख के आ पड़ने पर और सुख की अवस्था में मेरा मनोभाव समान रहे। बन्धु-बान्धवों पर जैसा विचार होता है, शत्रुओं पर भी वैसा ही विचार रहे। चाहे इष्ट वस्तुओं का संयोग हो अथवा वियोग हो, मेरी मनोवृत्ति में कोई अन्तर न पड़े। जिस भाव से भवन में रहता हूँ, उसी भाव से वन में रहना पड़े तो रह सकूँ। प्रभु! मेरे हृदय से ममत्त्व की भावना पूरी तरह हट जाय। चित्त मे ममता के स्थान पर समता आ जाय।

यह समभाव प्रभु को प्राप्त था। प्रत्येक दशा में, प्रत्येक घटना में, वे पूरी तरह समभावी थे। समभाव की पूर्णता के प्रभाव से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। वे चराचर विश्व को हस्तामलकवत् स्पष्ट देखने लगे। तत्पश्चात् भगवान् ने धर्म का उपदेश देना आरंभ किया। अहिंसा, संयम और तप उनके उपदेश के मुख्य आधार थे। भगवान् की धर्मदेशना सुनकर बहुत से पुण्यात्मा उनके भी अनुयायी हो गये।

भगवान् के बहुसंख्यक अनुयायियों में एक का नाम आर्द्रकुमार था। वह अनार्यदेश का रहने वाला था। मगध के सम्राट श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के साथ उसकी मित्रता थी। आर्द्रकुमार स्वयं भी राजा का लड़का था।

एक बार अभयकुमार ने अपने मित्र के पास कुछ भेंट भेजने का विचार किया। वह विचारने लगा कि मित्र को उपहार में क्या चीज भेजी जाय? सोचते-सोचते अभयकुमार ने एक मुखवस्त्रिका, एक रजोहरणी पूंजणी और एक आसन भेजने का निर्णय किया। उसने तीनों चीजें आर्द्रकुमार के पास भेज दी। यह अनूठा उपहार जब आर्द्रकुमार के पास पहुँचा तो उसने कहा-यह वस्तुएँ मुझे बड़ी अच्छी लगती है। सोचते सोचते उसे खयाल आया कि कभी न कभी मैंने इन चीजों का उपयोग किया है। इस प्रकार उसे जातिस्मरण ज्ञान होगया। अब उसे अपने कितने ही पूर्वभव याद आगये।

पूर्वजन्मो का स्मरण होने से राजकुमार को वैराग्य हो आया। उसने समझ लिया कि जगत् निस्सार है, विषयभोग विष के समान हैं। भोग भोगते-भोगते आत्मा कभी तृप्त नहीं हुआ और न कभी तृप्त हो सकता है। भोग आकांक्षा को बढ़ाते रहते हैं, घटाते नहीं हैं। जैसे आग में ईन्धन डालते जाने से वह अधिक-अधिक बढ़ती है, उसी प्रकार भोगों को भोगने से भोग आकांक्षा बढ़ती ही चली जाती है। इस प्रकार भोग अन्त में अशान्ति और अतृप्ति प्रदान करने वाले ही साबित होते हैं। तब इनसे सुख की आशा कैसे जा सकती है?

इस प्रकार सोचते सोचते आर्द्रकुमार ने भोगी से त्यागी बनने का संकल्प कर लिया। उसने भगवान् महावीर के चरण-कमलों में उपस्थित होकर मुनिवृत्ति अंगीकार करने का निश्चय किया। वह वहाँ से रवाना हो गये।

आर्द्रकुमार जब रवाना होने लगा, उससे पहले ही उसकी रवानगी का समाचार सर्वत्र फैल गया। लोग आपस में चर्चा करने लगे-एक बड़ा राजकुमार महावीर स्वामी के निकट दीक्षा लेने के लिए आ रहा है। यह बात भगवान् के विरोधियों को भी मालूम हुई। उन्होंने सोचा-ऐसा राजकुमार अगर महावीर का चेला बन जायगा तो उनकी महिमा और भी बढ़ जायगी। इसके बदले अगर वह हमारा चेला बन जाय तो कितना अच्छा हो। राजकुमार चेला बन जाय तो हमारा भाग्य ही चमक उठे!

ऐसा सोचकर कई धर्मगुरु पता लगाकर उस ओर दौड़े जिस ओर से राजकुमार आर्द्रक आ रहे थे। उन जाने वालों में गौशालक भी एक था। संभवतः वह सब से पहले दौड़ा था और सबसे आगे पहुँचा था। उसने आर्द्रकजी से बातचीत की। बातचीत का मुख्य विषय भगवान् महावीर की बुराई करना ही था। उसने कहा-महावीर का चित्त स्थिर नहीं है। वह कभी कैसा आचरण करते हैं और कभी कैसा। पहले वह एकान्त वास किया करते थे, ध्यान-मौन में स्थिर रहते थे, जनता से सम्पर्क नहीं रखते थे! अब उनकी हालत कुछ और ही हो गई है। अब वे जनता के समूह में उपदेश दिया करते हैं। उन्होंने एकान्त वास त्याग दिया है। चेलों से घिरे रहते हैं। अब तुम्हीं सोचो कि जो

व्यक्ति समय समय पर अपने आचरण को बदलता रहता है, उसका क्या ठिकाना है? उसके शिष्य बनकर क्या करोगे? अपना भला चाहो तो उससे दूर ही रहना।

गोशालक की बात सुनकर आर्द्रक समझ गये कि यह ईर्षा से अथवा स्वार्थ से प्रेरित होकर मुझे बहकाना चाहता है। तथापि उन्होने शिष्ट शब्दों मे उत्तर दिया-आप महावीर की महत्ता को समझे नही हैं। महावीर जैसे पहले एकान्त सेवी थे, अब भी वैसे ही एकान्तसेवी है। भले ही वे आज जनसमूह में जाते हैं और धर्मोपदेश भी करते हैं, मगर न किसी पर उनका राग है, न किसी पर उनका द्वेष है। वे सदैव समभाव मे विचरते हैं। अतः वे अब भी एकान्त का ही अनुभव करते हैं। सूत्रकृतांग सूत्र में कहा है:—

> पुव्वि च इण्हि च अणागयं च,
> एगंतमेव पडिसंधयाति ॥—सूय. ६-३.

धर्मोपदेश करने की बात का उत्तर देते हुए आर्द्रकुमार ने कहा—

> धम्मं कहं तस्स उ णत्थि दोसो,
> खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स।
> भासाय दोसे य विवज्जगस्स,
> गुणे य भासाय निसेवगस्स ॥—सूय. ६.५

अर्थात्—जो क्षमाशील है, जिसने इन्द्रियों का और मन का दमन कर लिया है, जो भाषा संबंधी समस्त दोषों का त्यागी है अर्थात् पूर्ण रूप से निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है और सिर्फ भाषा के गुणों का ही सेवन करता है, ऐसा महापुरुष अगर धर्म का उपदेश करता है तो इसमें कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार के आर्द्रकुमार के उत्तर सुनकर गोशालक समझ गया कि यहाँ मेरी दाल गलने वाली नहीं है ? वह निराश होकर चला गया।

फिर और-और पंथों के आचार्य भी रास्ते में राजकुमार को मिले। उन्होंने उसे अपना-अपना मन्तव्य बतलाया। मगर आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान होने से विशेष बोध प्राप्त हो गया था। अतएव उसने सब के मंतव्यों का खंडन किया। वह किसी के चंगुल में नहीं फँसा। वह किसी के द्वारा की हुई निन्दा से प्रभावित नहीं हुआ। आखिर प्रभु महावीर के चरण-कमलों में उपस्थित होकर उसने मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली।

आर्द्रकुमार के साथ विभिन्न धर्माचार्यों की जो चर्चा हुई थी, उसका मूलभूत विवरण श्री सूत्रकृतांग सूत्र में मौजूद है। समय नहीं कि उसे पूरी तरह सुनाया जाय। जो भाई रुचि रखते हैं, वे सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध का छठा अध्ययन देख सकते हैं।

भाइयो ! लोगों का खयाल है कि जब तक दूसरों की निन्दा न की जाय तब तक हमारी दुकानदारी नहीं जम सकती। मजहब को भी लोगों ने दुकानदारी की चीज बना लिया है। इस

दुनिया के लिए झगडे की तीन चीजें हैं—जर, जोरू और जमीन और आगे की दुनिया के लिए झगड़े की चीज है—मजहब। कभी २ तो अकेला मजहब ही तीनों चीजों से बाजी मार ले जाता है। जर (धन-सम्पत्ति), जोरू (स्त्री) और जमीन—इन तीनों चीजों के लिए जितने झगड़े होते हैं, उनसे ज्यादा झगड़े अकेले मजहब के नाम पर ही खड़े हो जाते हैं। मजहब का झगड़ा बहुत बुरा होता है। मजहब बुरी चीज नहीं है, मगर मजहब के नाम पर होने वाले झगड़े बुरी चीज है।

कुछ दिनों से एक नवीन ध्वनि सुनाई दे रही है। कुछ लोग कहते हैं कि धर्म के नाम पर बहुत झगड़े होते हैं, अतएव धर्म को ही नष्ट कर देना ठीक है। धर्म न होगा तो धर्म के नाम पर झगड़े भी न होंगे। ऐसा कहने वाले लोगों ने, मालूम होता है, कभी गंभीर विचार ही नहीं किया है। उन्हें सोचना चाहिये कि कोई भी धर्म झगड़े करने की प्रेरणा नहीं करता। यही नहीं बल्कि सभी धर्म प्रायः दया, क्षमा, शांति और सहिष्णुता का ही उपदेश देते हैं। फिर भी अगर लोग धर्म के नाम पर आपस में झगड़ते हैं तो यह धर्म का दोष नहीं, बल्कि लोगों की झगड़ाखोर मनोवृत्ति का दोष है। धर्म को नष्ट कर देने पर लोगों की वह झगड़ाखोर मनोवृत्ति तो नष्ट हो नहीं जायगी। वह तो फिर भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी। जब मनोवृत्ति बनी रहेगी तो फिर झगड़ा भी बना रहेगा। जिन्हें झगड़ना है वे चाहे किसी भी आधार पर झगड़ सकते हैं। आप किस-किस आधार को मिटाने जाएँगे ? गोवध के प्रश्न पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सैकड़ों बार दंगे हुए हैं और सैकड़ों नहीं हजारों आदमियों के गले कट गये हैं। वे झगड़े गाय को आधार

बनाकर हुए तो क्या गौवंश का ही अस्तित्व मिटा देना उचित होगा ? अब राजनैतिक मतभेदों को लेकर झगड़े होते हैं तो क्या राजनीति का ही सर्वनाश करने की हिमायत की जायगी ? आखिर इस विनाश का अन्त कहाँ होगा ? जमीन और जायदाद को लेकर होने वाले झगड़ों को मिटाने के लिए क्या जमीन का खात्मा किया जायगा ? और जायदाद भी दुनिया में से उठा दी जायगी ?

सच बात तो यह है कि जिन लोगों के हृदय में ईर्षा, द्वेष, वैर, विरोध आदि दुर्गुण भरे हुए हैं, वे लड़े-झगड़े बिना रह नहीं सकते। उनके झगड़े मिटाने के लिए धर्म को नष्ट करने की बात कहना मनुष्यता को नष्ट करने के लिए कहना है।

धर्म ने मनुष्य को जितना कर्त्तव्यनिष्ठ, दयालु, सहानुभूति-सम्पन्न, और न्यायपरायण बनाया है, उतना किसी भी दूसरी चीज ने नहीं बनाया। धर्म के अभाव में मनुष्य, पशु से भी बद-तर हो जायगा।

फिर भी निस्सन्देह धर्म के नाम पर होने वाले झगड़े अत्यन्त निन्दनीय हैं। जिन्हें धर्म प्रिय है, उन्हें चाहिए कि वे अपने सच्चे धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी दूसरे धर्म वालों से झगड़ा न करें। विधर्मी के प्रति सद्व्यवहार करें, जिससे धर्म की प्रतिष्ठा बढ़े। दूसरे धर्म या उसके अनुयायियों की निन्दा करने से अधर्म होता है। धर्मप्रेमी जनता को धर्म-प्रेम के वश होकर अधर्म नहीं करना चाहिए।

राजकुमार आर्द्रकुमार के सामने दूसरे धर्माचार्यों ने महावीर स्वामी की बुराई की। किसी ने उनके सिद्धान्तों का विरोध किया। मगर राजकुमार बुद्धिमान् था, राजघराने का था और फिर जातिस्मरण ज्ञान भी पा चुका था। वह असलियत को समझ गया। किसी के झांसे में नहीं आया। भूत किस को लगेगा ? जो भोला होगा। किसी पंडित या एम. ए. एल. बी. को भी भूत लगा सुना है आपने ? इसी तरह भोलों को ही मिथ्यात्व लगता है। लोग भोलों को ही भरमाते हैं। कच्ची बुद्धि के लोग ही भ्रम में पड़ जाते हैं।

जब चौथा आरा था तब भी कई मजहब पैदा हो गये थे, तो अब तो पाँचवाँ आरा है। धनी बैठे थे तब भी धाड़े पड़ते थे तो अब तो रांडों का राज्य है। अब ऐसे-ऐसे मजहब निकल पड़े हैं कि न पूछो बात।

आर्द्रकुमार भगवान् महावीर की महिमा से परिचित था। उसने सब निन्दकों को यथोचित उत्तर देकर चुप किया। उसने कहा-भगवान् महावीर पूर्ण वीतराग दशा पर पहुँच चुके हैं। पहले जब वे साधकअवस्था में थे तब एकान्त वास करते थे, जनता के सम्पर्क से दूर रहते थे। और मौन का सेवन करते थे। अब उनकी साधना फलवती हो गई है। जिस साधना के द्वारा उन्होंने सफलता प्राप्त की है, उसी साधना को वे आत्मकल्याण के अभिलाषी भव्य जीवों को बतलाते हैं, जिससे उनका भी कल्याण हो जाय ! इसमें दोष क्या है ? बुराई क्या है ? यह तो भगवान् का जगत् के प्रति महान् दान है, उदार उपकार है।

इसको भी आप लोग बुराई समझते हैं तो मानना होगा कि आप धर्म के निन्दक हैं।

भगवान् जब स्वयं ही साधना कर रहे थे तब शिष्य नहीं बनाते थे, जब उनकी साधना पूरी हो गई तो स्वेच्छा से आत्म-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर जो लोग प्रभु की शरण में जाते हैं, उन्हें वे शरण देते हैं और उन्हें कल्याण के पथ पर अग्रसर करते हैं। तथापि वे किसी से यह नहीं कहते कि तुम मेरे चेला बन जाओ! वे किसी को फुसलाते नहीं हैं, बहकाते नहीं हैं, प्रलोभन देते नहीं हैं। उनकी निस्पृहता तो इसी से सिद्ध हो जाती है कि आप मुझे अपना शिष्य बनाने के लिए तो यहाँ आकर उनकी बुराई कर रहे हैं, मगर वे यहाँ नहीं आये। शिष्यों की स्पृहा उन्हें होती तो वे भी आपकी तरह यहाँ दौड़ कर चले आते। जो गुरु, चेलों की खोज में रहते हैं, चेलों को शरणभूत मानते हैं उनसे चेलों का कल्याण नहीं हो सकता। वह स्वयं चेलों के लिए शरणभूत नहीं हो सकता।

यद्यपि भगवान् महावीर तीर्थङ्कर हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, फिर भी इतने नम्रशील हैं कि अपने तीर्थङ्करत्व की घोषणा नहीं करते फिरते। जब उनसे कोई पूछता है कि आप कौन हैं? तब वे यही कहते हैं-मैं भिक्षुक हूँ।

भगवान् यह भी नहीं कहते कि तुम मेरी शरण में आजाओ तो मैं तुम्हारे सब पाप क्षमा कर दूँगा। उनका उपदेश तो यह है कि जो जैसा करेगा उसे वैसा ही भुगतना पड़ेगा।

आर्द्रकुमार को एकान्त क्षणिकवादी बौद्ध भी मार्ग में मिले थे और एकान्त नित्यवादी सांख्यमतावलम्बी भी मिले थे। क्षणिकवादियों ने कहा यह अखिल विश्व क्षणभंगुर है। कोई भी वस्तु एक क्षण से ज्यादा ठहरनी नहीं है। दूसरे क्षण में सब पदार्थों का विनाश हो जाता है। आत्मा भी कुछ नहीं है। ज्ञान की क्षण क्षण में नष्ट होने वाली और क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली एक परम्परा-सी चल रही है। उसके सिवाय आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है।

नित्यवादी बोले-जगत् का कोई भी पदार्थ अनित्य नहीं है। यहाँ सभी कुछ नित्य है। प्रत्यक्ष देख लो, जिस चीज की सत्ता है, वह क्या कभी असत् हो सकती है? वस्तुओं का बाहरी रूप भले ही पलटता रहता है, मगर जिसका रूप पलटता रहता है वह वस्तु तो ज्यों की त्यों बनी रहती है। आप सौ प्रयत्न करके भी किसी सत् पदार्थ को असत् नहीं कर सकते। कागज के एक छोटे से टुकड़े को भी आप शून्य के रूप में परिवर्तित नहीं कर-सकते। उसे आग में जला देंगे तो वह राख बनकर मौजूद रहेगा। राख को उड़ा देंगे तो उसके कण बिखर-बिखर कर अलग अलग हो जाएँगे, मगर वे रहेगें तो अवश्य ही। वे कण किसी गीली वस्तु के साथ संयुक्त होकर अपना अस्तित्व बनाये रक्खेगे।

इस प्रकार अनित्यवादी और नित्यवादी की बात सुनकर आर्द्रकुमार ने कहा कि: —

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा।
से निच्चऽ निच्चेहिं समिक्ख पन्ने
दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥—सूय. २-६-

ऊर्ध्वदिशा में, अधोदिशा में और पूर्व पश्चिम उत्तर तथा दक्षिण रूप तिर्छी दिशाओं में त्रस और स्थावर जितने भी प्राणी हैं, वे न एकान्त नित्य हैं और न एकान्त अनित्य हैं। भगवान् ने सम्यग्ज्ञान के द्वारा जानकर, अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाला, दीपक के समान, यह धर्म वतलाया है।

वास्तव में एकान्तवाद मिथ्यावाद है। वस्तु के सही स्वरूप का निष्पक्षभाव से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि जगत् का प्रत्येक पदार्थ अगर नित्य है तो अनित्य भी है और अगर अनित्य है तो नित्य भी है। अनित्यवादी और नित्यवादी-दोनों के समन्वय में ही सत्य रहा हुआ है। कोई भी सत् पदार्थ नष्ट नहीं हो सकता, यह सत्य है और यह भी सत्य है कि कोई भी पदार्थ सदैव एक रूप में नहीं रहता। मूल द्रव्य त्रिकालस्थायी है तो उसकी पर्यायें प्रतिक्षण पलटती रहती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि "प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है"। मगर लोग आग्रह के वश होकर एकान्त मन्तव्य को ही पकड़ कर बैठ जाते हैं। वे अपने ही कथन को सत्य और दूसरों के कथन को असत्य वतलाते हैं। भगवान् मध्यस्थभाव से फर्माते हैं कि "वस्तु नित्य भी है अनित्य भी है।"

आत्मा को ही उदाहरण के रूप में ले लीजिए। आत्मा अजर है, अमर है, अविनाशी है। किन्तु क्या वह सदैव एक ही अवस्था में वनी रहती है? नहीं, कभी मनुष्य के रूप में होती है, कभी घोड़े के रूप में, कभी कीटपतंग के रूप में, कभी देवता की पर्याय में और कभी नारकदशा में होती है। इस प्रकार आत्मद्रव्य

त्रिकालस्थायी है तो उसकी पर्यायें सदैव बदलती भी रहती हैं। जब आत्मा मनुष्यपर्याय में होता है, तब भी आदि से अन्त तक एक-सा नहीं रहता है। क्षण क्षण में वह पर्याय रूपान्तरित होती रहती है। इस दृष्टि से आत्मा द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

जो बात आत्मा के विषय में है वही जड़ द्रव्यों के विषय में भी है। जड़ पदार्थ भी सब द्रव्य की अपेक्षा नित्य और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। सोने को लीजिए। सोना पुद्गल-द्रव्य है। उसका कड़ा बनवाया गया। कड़ा उसकी पर्याय है। थोड़े दिनों बाद कड़ा तुड़वाकर कंठा बनवा लिया। फिर कंठे को भी मिटाकर करधनी बनवा ली। यह सब पर्यायों का बदलना हुआ। सोने की पर्यायें बदलती रहती हैं, मगर उन सब पर्यायों में सोना समान रूप से विद्यमान रहता है। इस प्रकार सोना द्रव्य नित्य और कड़ा, कंठा, करधनी आदि पर्यायें अनित्य हैं। अतएव किसी भी वस्तु को न तो एकान्त नित्य कहना चाहिये और न एकान्त अनित्य ही कहना चाहिये। बल्कि सब पदार्थों को कथंचित् नित्यानित्य कहना चाहिए। कहा भी है:

सर्वं नित्यमनित्यं च द्रव्यपर्यायतः स्थितम्।

अर्थात् द्रव्य और पर्याय की दृष्टि से सभी पदार्थ नित्य-अनित्य हैं।

इसके विपरीत अगर एकान्त अनित्यवाद मान लिया जाय तो इस लोक एवं परलोक संबंधी सभी व्यवहार गड़बड़ में

पड़ जाते हैं। मान लीजिए:—किसी आदमी ने किसी साहूकार के यहाँ अपनी रकम जमा करवाई। छह महीने बाद उसे रकम की आवश्यकता हुई। वह साहूकार के पास रकम मांगने गया। साहूकार कहता है तुम पागल तो नहीं हो गये हो ? कौन-सी रकम माँगने आये हो ? रकम देने वाला उसी समय नष्ट हो गया और लेने वाला भी उसी समय नष्ट हो गया है। तुम दूसरे हो और मैं भी दूसरा हूँ। अब उस रकम की चर्चा करना ही बेकार है।

भाइयो ! अगर क्षणिक वाद को मान लिया जाय तो दुनिया के सारे काम-काज संकट में पड़ जाएँगे। सभी व्यवहार बिगड़ जाएँगे। इसी प्रकार मुक्ति भी किसको होगी ? मोक्ष प्राप्त करने के लिए जो व्यक्ति तपस्या कर रहा है वह तो क्षण-क्षण में नष्ट हो रहा है। अगले क्षण में दूसरा ही व्यक्ति पैदा हो जाता है। फिर मोक्ष किसको होगी ? पुण्य और पाप करने वाला तत्काल-नष्ट हो जाता है। फिर किये हुए पुण्य-पाप रूप कर्मों का फल कौन भुगतेगा ? अगर कोई नहीं भोगता तो वे कर्म निष्फल हो जाएँगे और यदि एक के किये को दूसरा कोई भोगता तो यह अंधेरगर्दी कहलाएगी। अरे क्षणिक वाद में अपने हाथों से रक्खी हुई वस्तु का भी तो स्मरण नहीं हो सकता। रखने वाला रखते समय ही नष्ट हो जाता है और उठाने वाला कोई और ही है, जिसने रक्खी नहीं थी। ऐसी हालत में उठाने वाले क मालूम ही नहीं होना चाहिए कि कहाँ क्या चीज रक्खी है ?

इस प्रकार व्यवहार और परमार्थ दोनों दृष्टियों से एकान्त अनित्यवाद दूषित ठहरता है। फिर भी आश्चर्य है कि लोगों ने दुराग्रह के वश होकर कैसे इसे मान लिया है? भला आर्द्रकुमार जैसे बुद्धिमान् इस मिथ्या मन्तव्य को कैसे स्वीकार कर लेते?

एकान्तनित्यवादी का कथन है कि न कोई वस्तु उत्पन्न होती है और न कोई वस्तु नष्ट ही होती है। उत्पन्न होना अथवा नष्ट होना मान लिया जाय तो वस्तु की नित्यता नहीं ठहरेगी। जब नित्यवादी से कोई कहता है कि कुंभार के प्रयत्न से घड़े का बनना, जुलाहे की मिहनत से कपड़े का बनना, सुनार के श्रम से जेवर का बनना, हम अपनी आँखों देखते हैं। फिर कैसे कहते हो कि कोई चीज कभी पैदा नहीं हो सकती? तब नित्यवादी कहता है कि यह तुम्हारा भ्रम है। कुंभार मिट्टी से घड़ा पैदा नहीं करता। मिट्टी में घड़ा पहले से ही मौजूद था। वह अव्यक्त था अर्थात् मालूम नहीं पड़ता था। कुंभार के प्रयत्न से वह व्यक्त हो गया-प्रकट हो गया अर्थात् मालूम पड़ने लगा। यही बात कपड़े के विषय में है। सूत के भीतर कपड़ा तो पहले से ही मौजूद था। जुलाहे ने प्रयत्न करके उसे जाहिर में ला दिया।

जब उनसे पूछा जाता है कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक जगह रक्खे हुए घड़े में कोई आदमी लाठी मारता है और घड़ा टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जाता है। फिर आप किस प्रकार कह सकते हैं कि घट नष्ट नहीं होता और कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती? तब वे कहते हैं-यह भी आपका भ्रम है। लाठी लगने पर घड़े का नष्ट हो जाना मालूम होता है, परन्तु वास्तव में वह फूटता नहीं

है। यह बना रहता है, मगर लाठी लगने पर टुकड़ों में छिप जाता है।

भाइयो! नित्यवादी के इस कथन पर क्या टीका टिप्पणी की जाय। प्रत्येक मनुष्य जो अनुभव करता है जो बात हरेक को साफ साफ ज्ञान पड़ती है, उसी को वह भ्रम बतलाकर अपना पक्ष सिद्ध करना चाहता है! वास्तव में उसका मत प्रत्यक्ष, से विरुद्ध है नित्यवादी के मत में और भी बहुत से दोष आते हैं, परन्तु उन सब का विवेचन करने का समय नहीं है। फिर भी एक बात कह देना आवश्यक है। नित्यवादी के मत में आत्मा नित्य है अर्थात् वह तीनों कालों में सदैव एक रूप रहती है। अगर यह बात सच मान ली जाय तो वह अपने पुन्य-पाप के फल को कैसे भोग सकती है? आत्मा जब नित्य है तो सदा एक रूप रहेगी। जो सुखी है तो सदैव सुखी ही रहेगा और अगर दुखी है तो सदा काल दुखी ही रहेगा। ऐसी स्थिति में पुण्य के फलस्वरूप सुख को और पाप के फलस्वरूप दुःख को कभी भोग ही नहीं सकेगी। फिर पाप और पुण्य का आचरण व्यर्थ हो जायगा? क्या कभी ऐसा हो सकता है कि किसी को अपने बुरे भले कामों का फल न मिले? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

अगर पुण्य पाप का फल भोगना न पड़ता होता और जो जिस रूप में है, वह सदा उसी रूप में रहता तो जगत् में यह विषमता, यह भिन्नता जो नजर आ रही है, नजर न आती।

यह मन्तव्य दुनिया के लिए भी बड़ा खतरनाक है। ग़नीमत यही है कि लोग इस पर विश्वास नहीं करते हैं। अगर

लोग इस मन्तव्य पर विश्वास करने लगें और यह मान लें कि हम जो पाप कर्म करते हैं, उसका फल हमें नहीं भोगना पड़ेगा तो दुनियां में इतना पापाचार बढ़ जाय कि जिसकी हद नहीं है। और फिर कोई दान, ध्यान, धर्मानुष्ठान आदि धर्म कार्य क्यों करेगा ? जब वह जान लेगा कि इस किये का कोई फल मिलने वाला नहीं है यह किया कराया सब अकारथ जाने वाला है तो फिर कोई कष्ट क्यों सहन करेगा ? दान क्यों देगा ? दूसरे का दुख-दर्द दूर करने के लिए क्यों तकलीफ उठाएगा ?

आर्द्रकुमार ने एकान्तनित्यवाद और एकान्त अनित्यवाद के दोषों को भलीभांति समझ लिया था। इस कारण वे किसी की बातों में नहीं फँसे, बल्कि सबको निरुत्तर करके आगे चले और भगवान् महावीर के चेले बने। आर्द्रकुमार को सिद्धान्त-तत्त्व का ज्ञान था, इसीलिए वे सब को चुप कर सके। ज्ञान न होता तो सत्य मार्ग पर होने पर भी उन्हें चुप्पी साधनी पड़ती। इसीलिए मैं कहता हूँ कि एक पाठशाला स्थापित करो और उसमें सिर्फ बालक ही न पढ़ें, किन्तु तुम बड़े बूढ़े भी पढ़ो। कई छोटे २ गावों में भी धर्म ज्ञान सिखाने की व्यवस्था देखी जाती है पर आपके इतने बड़े जोधपुर शहर में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। यह कितनी भारी कमी है ?

आप लग कह सकते हैं कि यहाँ विद्या का अच्छा प्रचार है। कोई बी. ए है, कोई एम. ए. है, कोई वकील है और कोई डॉक्टर या मजिस्ट्रेट है। यह सब ठीक है, मगर यह तो पेट की पढ़ाई है, ठेठ की पढ़ाई तो पढ़ी ही नहीं है।

भाइयो ! कानून की धाराएँ याद कर लेने से आपका यह जन्म आनन्द के साथ व्यतीत हो सकता है, मगर आपको क्या अनन्त काल तक यही रहना है ? नहीं, कोई चाहे या न चाहे, एक न एक दिन सभी को आगे जाना है। अतएव अगले जन्म को आनन्दमय बनाने के लिए भी तो कुछ करना चाहिए ? भाइयो ! आत्म-कल्याण के लिए जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्जरा वंध, मोक्ष, पुण्य और पाप-इन तत्वों की जानकारी अत्यावश्यक है। इनकी जानकारी होने से किस प्रकार उत्तरोत्तर आत्मा का कल्याण होता चला जाता है, यह बात बड़े ही सुन्दर ढंग से श्रीदशवैकालिकसूत्र में बतलाई गई है। जो भाई जिज्ञासु हों वे वहीं से जान लें। समयाभाव के कारण मैं उसका विवेचन नहीं कर रहा हूँ।

आर्द्रकुमार जानते थे कि संसार में अगर गुणवान् हैं तो गुणों के द्रोही भी हैं और गुणवानों के विरोधी भी हैं। दुनिया का कोई पारावार नहीं है। यहाँ सब तरह के लोग मौजूद हैं। किसी स्त्री के बाल-बच्चा हो जाता है तो बांझ स्त्री व्यर्थ ही उस पर ईर्षा करती है। किसी व्यापारी को मुनाफा हो जाता है तो दूसरे व्यापारी वृथा ही जलते हैं। बांझ सोचती है-हाय मेरे तो संतान नहीं हुई और इसके क्यों हो गई ? उसे यह नहीं मालूम कि तू ने पहले जैसा किया है वैसा अब भोग रही है और अब जैसा करेगी आगे वैसा भोगेगी ! किसी पर द्वेष या ईर्षा करने से तुझे क्या फायदा ? क्यों अपने दिल को वेमतलब जलाती है ? ईर्षा की आग में तू अपने आप ही जलती है-इससे दूसरों का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है ! अपना भला चाहती है तो दूसरों का भला चाह ! दूसरों

को सुखी देखकर प्रसन्न हो। उनके अशुभ की कामना मत कर। तेरे चाहने से किसी का अमंगल होने वाला नहीं है। अगर किसी का अमंगल होगा तो तेरा ही होगा।

यही बात व्यापारी के लिए समझनी चाहिए और यही बात दूसरों के लिए समझनी चाहिए। सब लोग अपने-अपने किये का फल भोग रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसी के प्रति ईर्षा नहीं रखनी चाहिए। ईर्षा में अंधा हुआ गोशालक इस बात को नहीं समझ पाया था। वह रात-दिन इस उधेड़ बुन में लगा रहता था कि किस प्रकार मैं महावीर स्वामी को नीचा दिखलाऊँ और किस प्रकार मैं तीर्थङ्कर का पद पा लूँ। मगर उसे अन्त में हताश होना पड़ा। ईर्षा करने वालों का मनोरथ, ईर्षा करने के कारण कभी सफल नहीं होता। कहा है—

रे जिया दुनियां का पार न पाएगा,
कब आतम पे लक्ष्य लगाएगा ॥ टेर ॥

भाइयो! ध्यान से सुनो। दुनिया का पार नहीं है—

अच्छे से अच्छा काम करे पै,
कोई अच्छा और बुरा बतलाएगा ॥

कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ का त्याग करके कितना ही उत्तम काम क्यों न करे, मगर कुछ लोग मिल ही जाएँगे जो उसमें बुराई प्रकट करने की कोशिश करेंगे। कई समाज सेवक तहेदिल से समाज सेवा का काम करते हैं, मगर कुछ स्वार्थी या गुणद्रोही लोग जब बुरा-भला कह देते हैं तो वे उस सेवा-कार्य को छोड़ देते

हैं। मगर ऐसा करना उचित नहीं है। समाज सेवकों को अज्ञान लोगों की आलोचना का विचार न करके अपने सेवाकार्य को जारी ही रखना चाहिए। अगर वे छोड़ देते हैं तो वह उनकी बुजदिली है। मानना होगा कि उनका दिल ही मजबूत नहीं है। बके सो बकने दो और अपना काम धकने दो।

संसार में कौन ऐसा हुआ है या आज है जिसे मान पत्र ही मिले हों और अपमानपत्र न मिले हों? भगवान् महावीर से बड़ा कोई तपस्वी नहीं हुआ, मगर गोशालक जैसे उन्हें भी ढोंगी कहते थे! गांधीजी इसी युग में हुए हैं। उनका त्याग और बलिदान क्या कम था? फिर भी क्या उनके निन्दक नहीं है? जवारलाल को क्या लोगों ने अछूता छोड़ा है? अरे, इस दुनिया में कोई नहीं है जिसकी बुराई न की जाती हो। अगर कोई दानी है तो लोग उसे उड़ाऊ कहते हैं। अगर कोई दानी नहीं है तो उसे कंजूस बतलाते हैं।

दानी को कहते हैं धनलुटाऊ,
नहीं देने में कंजूस बताएगा।
भाइयो। इस दुनिया के चाले मत लगना:—
ब्रह्मचारी को नपुंसक बतलावे,
सती को कुलटा ठहराएगा ॥

अगर कोई ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो कई लोग कहते हैं- असल में तो यह आदमी हींजड़ा है, नपुंसक है। अगर ब्रह्मचर्य नहीं पालता तो कहते हैं-यह बदचलन है। औरतों की तरफ

आँखे फाड़-फाड़कर देखता है । बोलो भाई, अब वह किधर जाय ? इसी प्रकार लोग सती को कुलटा और कुलटा को सती बतलाने में संकोच नहीं करते !

हर एक से बोले वाचाल बतावे,
नहीं बोले तो मूका कहाएगा ।

जो हरेक से बोलता है उसे बकवादी और वाचाल की पदवी से विभुषित किया जाता है। कहते हैं-लपलप करता है। अगर कोई नहीं बोलता तो वह मूक या गूँगा कहलाता है।

साधु बने कहे विपदा का मारा,
भक्त को दंभी जताएगा ॥

किसी को संसार से विरक्त हो गई हो और आत्म-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर वह साधु बन गया हो तो लोग कहते हैं क्या करे बेचारा ! इससे कमाया नहीं गया और घाटा बहुत लग गया, इस कारण बाबा बन गया है ! भगवान् की भक्ति करने वाले को कहते है- यह सब कमा-खाने की तरकीबें है ! कहा भी है-"रोटी खाना शक्कर से दुनिया ठगना मक्कर से ।' इस प्रकार धर्म न करने वाले की भी निन्दा होती है और धर्म करने वाले की भी निन्दा होती है। दुनिया तो मिर्जापुरी लोटे के समान है !

नहीं नमे तो घमंडी बतावे,
नमे तो मतलब में जाएगा ।

अगर जरा राम-राम नहीं किया तो उजड्ड, घमंडी और लट्ठ होने का फतवा मिल गया। अगर नम्रता दिखाने के लिए कोई नमता है तो कहा जाता है-साले का कोई न कोई मतलब होगा ! तभी इतनी आजीजी करता है और झुक-झुक कर राम-राम करता है।

नहीं लड़े तो डरपोक बतावें,
लड़े क्लेशी गिनाएगा ॥

कोई शान्तिप्रिय आदमी लड़ना पसंद नहीं करता तो कहा जाता है-डरपोक है। असल में इसकी पूंछड़ी दबी हुई है। अगर कोई लड़ने भिड़ने को तैयार रहता है तो क्लेशी और नागा कहलाता है।

भाइयो! दुनिया के कहने की परवाह मत करो। दुनिया दुरंगी है। उसके कहे लगे तो किधर के ही न रहोगे। जब गांधीजी कहते थे कि भारतवर्ष की स्वाधीनता का एक मात्र मार्ग अहिंसा है तो कई लोग उनका उपहास करने तक की हिमाकत करते थे ! कहते थे-अजी, कहीं रोने से या मार खाने से भी स्वाधीनता मिली है ? सत्याग्रह करने से भी कहीं राज्य पाया जा सकता है ? यह अहिंसा देश को और ले डूबेगी ! मगर जब अहिंसा के द्वारा ही स्वाधीनता मिल गई, हिन्दुस्तान का राज्य हिन्दुस्तानियों के हाथ में आ गया तो कहने लगे वाह ! अहिंसा ने हमें स्वाधीन कर दिया। वास्तव में अहिंसा वीरों का शस्त्र है ! वीरों के लिए यह वरदान है।

युवक को देखी कुकर्मी बतावे,
बुढ़िया को डायन बताएगा ॥
सती सीता को कलंक लगाया,
द्वेषी तो गुण कब गाएगा ?

किधर भी गति नहीं है। कोई नौजवान है तो लोग उसे दुराचारी होने का लांछन लगाते संकोच नहीं करते। अगर कोई वृद्धा है तो कह देंगे-अरे, यह तो डाइन है डाइन ! इससे दूर ही रहना ! औरों की बात तो जाने दो, इस दुनिया ने सीता जैसी महाभाग्यवती, शीलवती और पवित्रता की मूर्ति सती को भी तो नहीं छोड़ा ! रावण उन्हें उठाकर ले गया था तो एक धोबी ने उनके माथे कलंक लगा दिया !

चोथमल कहे तिरना जब होगा,
समभावों से जब तू रहाएगा।
कुनरा कुमत वाने भुसवा दे,
तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥

हे प्राणी ! इस प्रकार क्षुद्रभावों से, ईर्षा और द्वेष से तेरा कल्याण होने वाला नहीं है। तू व्यर्थ दूसरों को दोष लगाना छोड़ और अपना भला चाहता है तो अपने ही अवगुणों को, अपनी ही दुर्बलताओं को और अपनी ही त्रुटियों को देख ! समभाव में विचर। समभाव से ही जीव का उद्धार होगा। "समभाव-भावियप्पा लहेइ मुक्खंन न संदेहो "अर्थात् जिसकी आत्मा समभाव

युक्त हो गई है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, इसमें संदेह नहीं है। नीति और धर्म के मार्ग पर चलते हुए भी त्याग और तपस्या को अपनाने पर भी, संघ और समाज की निस्वार्थ भाव से सेवा करने पर भी, अगर कोई तेरी बुराई करता है, तो उसे करने दे। उसकी बातों पर तू कान मत दे। कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी चलता जाता है। किसी के द्वारा अपनी झूठी बुराई सुनकर तू हताश होगा तो वह तेरी कमजोरी गिनी जायेगी। इसके अतिरिक्त लोग तो हर हालत में दोष निकालते है। तू कहाँ तक उनकी बातों पर कान देगा? तू बुराई सुनकर सेवा-कार्य से विरत हो जायगा तो क्या तेरी प्रसंसा ही प्रसंसा होने लगेगी? नहीं तब भी लोग कहेंगे कि चला था सेवा करने। देखो, सोडा वाटर का उफान था! अब स्वार्थ में मग्न हो गया! बुराई सुन कर बैठ गया। कितना कायर है। इसलिए भाई! तू अपने चित्त को स्वच्छ रखकर परमात्मा का स्मरण करता जा और जो पवित्र कार्य तूने आरम्भ किया है, उसे धीरज और शान्ति के साथ किये जा। अपने संकल्प पर अचल रह। किसी के कहने से विचलित न हो।

जम्बूकुमार की कथाः—

अपने संकल्प पर किस प्रकार की दृढ़ता होनी चाहिए, यह बात जानना हो तो जम्बूकुमार का चरित देखो। उनके माता पिता ने उन्हें विचलित करने का प्रयत्न किया, मगर वे इंच मात्र भी विचलित न हुए। उसके बाद उनकी पत्नियाँ उन्हें अपने संकल्प से च्युत करने के लिए जी तोड़ परिश्रम कर रही हैं, मगर

जम्बूकुमार पर जरा भी असर नहीं होता। उनकी छठी स्त्री स्वर्ण-श्री ने भी अपनी ताकत आजमा ली। वह भी पराजित होकर एक किनारे बैठ गई। तब सातवीं स्त्री खड़ी हुई। उसने हाथ जोड़कर अर्ज की नाथ! मेरी बात सुनो। आपने मेरी छह बहनों को अपने भाषण-कौशल से भरमाकर चुप कर दिया है, मगर आप अपना आग्रह नहीं त्याग रहे हैं। इससे आपको कोई लाभ नहीं होगा। अन्त मे पाश्चात्ताप करना पड़ेगा। जैसे उस कौवे को पश्चात्ताप करना पड़ा था, वैसे ही आपको भी करना होगा।

जम्बू —तुम किस कौवे की बात कह रही हो ?

सातवीं सुनिए। किसी जंगल में छोटे-बड़े सभी तरह के जानवर रहते थे। उस जंगल में तालाब भरे हुए थे, झरने बह रहे थे। वहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। उस जगल मे एक शेर भी रहता था। किसी समय वह शेर किसी जानवर को खाकर तालाब के किनारे पेड़ की छाया मे बैठा और नींद लेने लगा। उसके आसपास पंखो वाले जानवर अर्थात् पक्षी उड़ते थे और कभी कभी नीचे आकर, शेर के खुले मुंह में से, उसकी दाढ़ों में लगा हुआ मांस नोचकर ले जाते थे। पक्षी की चोंच लगती तो शेर कभी इधर कभी उधर मुँह फेर लेता था। मगर बार-बार ऐसा होने पर शेर ने सोचा यह पंखी मानते नहीं हैं और सोने नहीं देते हैं। उसे गुस्सा आ गया यह कैसी झंझट है।

आखिर शेर ने पक्षियों को मजा चखाने का विचार किया। उसने जानबूझ कर अपना मुंह खोल दिया। एक कौवा आया, उसके मुंह पर बैठा और फिर उड़ गया। कौवे ने कई बार ऐसा

ही किया। शेर चुपचाप ज्यों का त्यों बैठा रहा। जब कौवे ने देखा कि शेर कुछ नहीं कहता है तो उसने अपनी चौंच शेर के मुँह में डाली। वह दाढ़ों में लगे मांस के खींचने के लिए ज्यों ही उद्यत हुआ कि उसी समय शेर ने अपना मुँह जोर से बंद कर लिया। अब कौवा चां-चां करता है, मगर शेर की दाढ़ों में से किस प्रकार निकल सकता है ? आखिर थोड़ी ही देर में वह निलाम बोल गया। अन्तिम समय में वह बेहद पछताया, किन्तु उसका पछतावा किसी काम न आया।

प्राणवल्लभ! अगर इस समय हमारा कहना न मानोगे तो आपको भी उसी कौवे की नाईं पश्चात्ताप करना पड़ेगा। जैसे कौवा शेर की दाढ़ में से मांस लेना चाहता था, उसी प्रकार आप साधुपन रूपी सिंह की दाढ़ में से मोक्ष रूपी मांस लेना चाहते है। मगर यह सरल काम नहीं है। साधु का आचार पाल लेना सामूली बात नहीं है। यह साधुपना है, खरबूजे का पना नहीं है जो मुँह में डालते ही गले में चला जायगा। साधु-दशा में कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं, कितने परीषह और उपसर्गों का सामना करना पड़ता है। अभी आपको पता नहीं है कि साधु होने पर कितनी सावधानी के साथ व्यवहार करना पड़ता है! कौवे को कल्पना नहीं थी कि शेर की दाढ़ों का मांस खींचने में मुझे किस मुसीबत का मुकाबिला करना पड़ेगा। इसी प्रकार आपको भी साधुपने के संकटों का ख्याल नहीं है। इसी कारण आप साधु बनने पर तुले हुए हैं। मगर जब साधु बन जाएँगे और जब दूसरा कोई रास्ता नहीं रह जायगा तब आप बड़ी विपदा में पड़ जाएँगे। उस समय हम लोगों की बातें याद कर-करके पश्चात्ताप

करेंगे। लेकिन पश्चात्ताप करने पर भी क्या हाथ लगेगा ? अतएव उचित यही है कि पहले से ही गंभीर विचार करलें और हमने जो कहा है उसे मान लें।

प्रियतम ! आप किसी प्रकार की जिद में मत पड़िये। मैं तन-मन से आपकी प्रीति चाहती हूँ। संयोग से ही हमारी और आपकी जोड़ी मिल गई है। आप कुलवान्, रूपवान्, विवेकवान् हैं और हम आठों में भी किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है। ऐसी जोड़ी मिलना बहुत कठिन है। कोई पुरुष अच्छा होता है तो उसे स्त्री खराब मिल जाती है और कोई औरत अच्छी होती है तो उसे मर्द खराब मिल जाता है। जब पुण्य का उदय होता है तभी एकसी अच्छी जोड़ी मिलती है। पति-पत्नी के स्वभाव की समानता और संस्कारिता पर ही कुटुम्ब की सुख-शान्ति निर्भर रहती है। अगर दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव और संस्कार वाले हों और उनमें न पटे तो संसार की समग्र सुख सामग्री होते होते हुए भी जीवन नरक के समान बन जाता है। नित्य की खटपट किसी को चैन की सास नहीं लेने देती। पति-पत्नी के पारस्परिक मनमुटाव का प्रभाव उनकी संतति पर भी पड़े बिना नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि योग्य जोड़ी मिल जाना बड़े सौभाग्य की बात है। यह सौभाग्य आपको भी प्राप्त है और हमें भी प्राप्त है। इसे अपने हाथों नष्ट कर देना कहाँ तक उचित है ? इस पर आप भलिभाँति विचार कर लीजिए।

देखिए, भगवान् नेमिनाथ विवाह नहीं करना चाहते थे, मगर उन्हे भी तो अपनी भाभियों का कहना मानना पड़ा। एक

बात तो उन्हें भी स्वीकार करनी ही पड़ी । मगर हमारी इतनी विनम्र प्रार्थना को भी आप स्वीकार नहीं करते हैं । क्या आप तीर्थङ्करों से भी ऊँचे बनना चाहते हैं ? इधर तो आप तीर्थङ्कर के चेले के चेले बनने को तैयार है और उधर तीर्थङ्करों से भी आगे कदम रखना चाहते हैं। ये दोनों बाते आपस में मेल नहीं खातीं इस बात पर जरा विचार तो कीजिए ।

भगवान् महावीर स्वामी जब माता त्रिशला के गर्भ में थे तो पाँचवे महीने में उन्होंने हलन चलन शुरु किया । तब माताने भारी काम करना छोड़ दिया । भगवान् को गर्भ में ही तीन ज्ञान थे। उन्होंने अवधि ज्ञान से जाना कि मेरे हलन-चलन करने से माता को कष्ट होता है । तब उन्होंने हिलना-डुलना बंद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि माता को गर्भ गल जाने की शंका हो गई। वह ममता के कारण रोने लगीं । राजा सिद्धार्थ ने उन्हें समझाया। और लोगों ने भी समझाने की बहुत कोशिश की, मगर माता त्रिशला देवी को तसल्ली नहीं हुई । उनका दुःख दूर नहीं हुआ।

भगवान् ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करके जाना कि मेरे हलन-चलन बंद कर देने से माता बहुत शोक कर रही है । ऐसी दशा में मैं जब साधु बन जाऊँगा तो इन्हे कितना दुःख होगा ? यह विचार करके भगवान् ने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली कि माता-पिता के जीवित रहते मैं साधु नहीं बनूँगा । भगवान् ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया । भगवान् की आयु जब अट्ठाईस वर्ष की हुई तब उनके माता पिता का देहान्त हो गया ।

देहान्त होने के बाद भगवान् ने साधुपना लेने का संकल्प किया। अपने बड़े भाई के सामने अपनी इच्छा जाहिर की । मगर बड़े भाई नन्दिवर्धन ने कहा-माता-पिता के विछोह के कारण मेरा हृदय संतप्त हो रहा है । ऐसी अवस्था मे तुम दीक्षा लेकर मेरे सन्ताप को और अधिक बढ़ा दोगे। अच्छा हो, कम से कम दो वर्ष और घर में रहो। उसके बाद जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना। भगवान् ने अपने बड़े भाई के अनुरोध को टाला नहीं । वे दो वर्ष तक फिर गृहस्थी में रहे।

मगर आप क्या कर रहे हैं ? आपके माता पिता आपके वियोग की कल्पना से ही व्याकुल हो रहे हैं । हम आठों आपके चरणों मे गिर कर प्रार्थना कर रही हैं। मगर आप तो महावीर-स्वामी से भी दस कदम आगे छलांग मार रहे हैं । यह कहां तक उचित है ?

पतिदेव ! नीतिकार कहते हैं कि अति सर्वत्र वर्जयत् अर्थात् अति सभी जगह बुरी होती है । तपस्या करना अच्छा है, मगर उसकी भी अति अच्छी नहीं होती । आजीवन अनशन करके मर जाना आत्मघात है और भगवान् ने इसकी मनाई की है। किसी भी लौकिक या लोकोत्तर विषय को ले लीजिए, अति तो बुरी ही होती है। अतएव आप बात को ज्यादा मत खींचिए । हमारा कहना मान कर, हमारे अनुरोध को हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके कुछ वर्षों तक घर में रहिए । उसके बाद जैसी आपकी इच्छा हो, कीजिएगा ।

हाँ, इस समय हमारा चित्त व्याकुल है। मस्तिष्क अशान्त है। उचित और अनुचित का विचार करने की क्षमता हम में

नहीं है। अतएव अगर कोई अनुचित बात हमारे मुँह से निकली हो तो क्षमा करना।

भाइयो! तकलीफ के वक्त ठीक और गैर ठीक नहीं सूझता। दुखी मनुष्य बिना सोचे समझे, जो भी जी में आता है, निस्संकोच कह देता है। उदयपुर में एक आदमी को फाँसी का हुक्म हुआ। कौंसिल के सदस्यों ने तस्दीक कर दी कि इस आदमी को अवश्य फाँसी की सजा मिलनी चाहिए। अब कौंसिल के उस आदेश पर सिर्फ महाराणा फतहसिंहजी के हस्ताक्षर होने बाकी रह गये थे।

मुलजिम और मिसल दोनों महाराणा के सामने पेश हुए। महाराणा साहब ने मिसल के आवश्यक कागजात सुने। सुनकर मुलजिम के सामने आँख उठाकर देखा। मुलजिम ब्राह्मण था। उसने कहा–देखते क्या हो? मैं सच्चा हूँ। तुम्हारे और मेरे बीच ईश्वर के घर फैसला होगा। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। मैं ने गुनाह नहीं किया है। फिर भी अगर प्राण लेने हैं तो ले लो।

महाराणा ने उस दिन मामला स्थगित कर दिया। आगे की कोई तारीख देकर उन्होंने अपने एक खास मर्जीदान को बुलाया और कहा–किसी को पता मत चलने देना। उस ब्राह्मण के मामले में खुफिया तौर पर सच्ची-सच्ची जानकारी हासिल करके आओ। पता लगाओ कि वास्तव में ही वह अपराधी है या नहीं?

ब्राह्मण किसी गाँव का रहने वाला था। महाराणा साहब का मर्जीदान उसी गाँव में साधारण आदमी के रूप में पहुँचा।

उसने इधर-उधर बातचीत करके पता लगा लिया। थोड़ी देर तक वह पनघट के पास भी बैठा और पानी भरने वाली स्त्रियों की बातें सुनने लगा। उसे पता लग गया कि किसी मालदार आदमी ने घूंस देकर निरपराध ब्राह्मण को फँसा दिया है। वास्तव में वही मालदार आदमी अपराधी था मगर धन के बल पर वह बेदाग बच गया और बेचारा गरीब ब्राह्मण फँसा लिया गया!

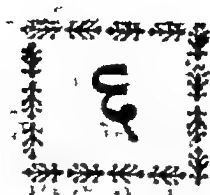
मर्जीदान महाशय सच्चा हाल जानकर वापिस लोटे और महाराणा साहेब के पास गये। महाराणा ने सब हाल सुनकर उस मालदार को गिरफतार करवाया। कोतवाली में जब पूजा हुई तो उसने सच्ची बात कबूल कर ली। तत्पश्चात् दरबार ने उस ब्राह्मण को बुलवाया और कहा तूने दुखपूर्ण दिलसे जो बात कही थी वह मेरे कलेजे में तीरकी तरह चुभ गई। मैंने सारे मामले की फिर से जांच करवाई। तुम निर्दोष हो बरी किये जाते हो। सच्चे दिलकी बात वास्तव में असरकारक होती है।

हां, तो जम्बूकुमार की पत्नी ने इस प्रकार अत्यन्त विनम्रतापूर्ण अनुरोध किया। वह कहने लगी–प्राण वल्लभ जरा हमारे दिलके दर्द की ओर भी देखिए। आप दयालु हैं और प्राणी मात्र की दया करने के लिए तैयार हो रहे हैं। ऐसी अवस्था मे क्या हमारे प्रति यह निष्ठुर व्यवहार आपको शोभा देता है। अभी आप आग्रह की मनोवृत्ति में हैं अतएव ठीक ठीक विचार नही कर पा रहे हैं एकबार अपने विचारों को तटस्थ बनाइए। थोड़े दिनों तक अपने चित्त को शान्ति लेने दीजिए। फिर नये सिरे से आप विचार करना।

मैं फिर दोहराना चाहती हूँ कि संयम का पालन करना हंसी खेल नहीं है। यह तो खांडे की धार पर चलने के समान दुष्कर है। सहसा इस पर चलने के लिए तैयार होजाना उचित नहीं है। अगर आप हमारी बात न मानेंगे तो परिणाम अच्छा नहीं होगा देखिए उस कौवे को पछताना पड़ा और प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा। मैं नहीं चाहती कि आपको भी अपने जीवन में किसी प्रकार के पश्चात्ताप का अवसर आवे। हम सब आपका मंगल चाहती है। हमारी आशा के एक मात्र केन्द्र! हमारी प्रार्थना को मत ठुकराइए। इसी में आपका और हमारा कल्याण है। अगर आप हमारी विनीत प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

२६-६-४८ }





धर्म-प्रभाव

()—()—()—()

॥ स्तुति ॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ॥
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ? हे नाथ ! आप तीन लोक के समस्त प्राणियों की पीड़ा को हरण करने वाले है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप इस भूतल के निर्मल आभूषण

हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप तीन भुवन के परमेश्वर हैं, आपको मेरा नमस्कार हो। हे जिनेन्द्र! आप जन्म-जरा-मरण रूप संसार को सोखने वाले हैं। आपको मेरा नमस्कार हो।

आर्ति अर्थात् पीड़ा दो प्रकार की है-शारीरिक और मानसिक। शारीरिक पीड़ा व्याधि कहलाती है और मानसिक पीड़ा आधि कहलाती है। दोनों ही प्रकार की पीड़ाओं का प्रधान और मूल कारण कर्म है। असातावेदनीय कर्म के उदय से ही सब प्रकार की पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं। भगवान् की विशुद्ध भाव से भक्ति करने पर कर्म का समूल विनाश हो जाता है। कर्म का विनाश होने पर किसी प्रकार की आर्ति शेष नहीं रह जाती।

दूसरी बात यह है कि जिसके अन्तःकरण में प्रभु का निवास हो जाता है उसमें एक अलौकिक समभाव जाग उठता है। वह संसार में रहता हुआ भी सांसारिक व्यवहार करता हुआ भी अलिप्त रहता है। मोह-माया उसके अन्तरतर को छूने में समर्थ नहीं होती। उसे धन-सम्पदा, कुटुम्ब-परिवार आदि अनुकूल सामग्री मिलने पर हर्ष नहीं होता और इन सब वस्तुओं का वियोग हो जाने पर विषाद नहीं होता। इतना ही नहीं, भगवान् का उच्च कोटि का भक्त अपने शरीर पर भी ममता नहीं रखता। आगम में कहा है—

अवि अप्पणो वि देहंमि, नायरन्ति ममाइयं

इस विरक्ति या अनासक्ति की भावना से भूषित होने के कारण वे प्रत्येक परिस्थिति में आत्मनिष्ठ ही बने रहते हैं।

उन्हें मानसिक चिन्ता लेश मात्र भी नहीं सता सकती। रही शारीरिक पीड़ा, सो शरीर में रोग हो जाने पर भी वे दुःख का अनुभव नहीं करते हैं। भक्त जनो को यह अशोक अवस्था प्रभु के प्रसाद से ही प्राप्त होती है। अतएव भगवान् पीड़ा को हरने वाले हैं।

तीसरी वात यह है कि भगवान् ऋषभदेवजी ने समान भाव से, जगत् के समस्त प्राणियों के दुखों का विनास करने वाले धर्म पथ का प्रदर्शन किया है। यह वात दूसरी है कि कोई भगवान् के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चले अथवा न चले, कोई चलना चाहे या न चलना चाहे, मगर उन्होंने तो निर्विकल्प भाव से सभी को सन्मार्ग वतलाया है। भगवान् का उपदेश किसी देश के लिये, किसी जाति के लिए, किसी वर्ग विशेप के लिये अथवा किसी समूह के लिये, ही नहीं था। उनका विशाल दरवार सबके लिए खुला हुआ था। मनुष्य मात्र समान रूप से उनकी शरण में जा सकता था और उनके धर्मोपदेश को सुनकर अपना कल्याण सावन कर सकता था। किसी के लिये रोकटोक नहीं थी, किसी के लिये द्वार वन्ध नहीं था। अरे मनुष्य की वात ही छोड़ो, पशुओं को भी भगवान् के चरणों की शरण मिलती थी। समवसरण में पशु भी उपस्थित होकर प्रभु की पावन और अमृतमयी वाणी का रस रसास्वादन कर सकते थे और करते भी थे। इस प्रकार प्रभु ने सव प्रकार के कष्टों, दुःखों और वेदनाओं से छुड़ाने वाले धर्म का उपदेश तीनों लोकों के जीवों के हित के लिए दिया था। अतएव भगवान तीन लोक की पीड़ा को हरण करने वाले हैं। ऐसे हितोपदेशक प्रभु को वार-वार नमस्कार है।

जिस काल में भगवान् स्वयं इस भव्य भारत भूमि को विभूषित कर रहे थे, उस समय में भी अनेक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित पुरुष मौजूद थे। मगर उनमें से कोई भी तीर्थङ्कर भगवान् की समता करने में समर्थ नहीं था। तीर्थङ्कर का पुण्य अतुल, अनुपम होता है। उस पुण्य के उदय के एवं आत्मिक तेज से भगवान् सुशोभित थे। मनुष्य साधना के द्वारा किस उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भगवान् थे। अतएव वे जगत् के निर्मल भूषण थे।

भगवान् देवाधिदेव थे। जगत् के साधारण प्राणी देवों को अथवा इन्द्र को अपना आराध्य समझते हैं। मगर देव और देवों का राजा इन्द्र भी भगवान् को ही पूज्य समझता था। असंख्य देव भगवान् की सेवा में तत्पर रहते थे। भगवान् का आन्तरिक ऐश्वर्य तो असाधारण था ही, देवकृत बाह्य वैभव भी अनुपम था। उस आन्तरिक और बाह्य ऐश्वर्य के स्वामी होने के कारण भगवान् तीनों जगत् के परमेश्वर थे।

भगवान् ने संसार रूपी सागर को सोख लिया था। मतलब यह है कि जन्म जरा और मरण पर पूरी तरह विजय प्राप्त कर ली थी।

यहाँ शंका की जा सकती है कि भगवान् जब अर्हन्त अवस्था में थे, तब तक तो संसार में ही थे। फिर उन्हे भव-सागर का शोषण करने वाला किस प्रकार कहा जा सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मोक्ष दो प्रकार का है-अपर-मोक्ष और परमोक्ष। सिद्ध दशा की प्राप्ति हो जाना, अशरीर

अवस्था प्राप्त कर आत्मा का सिद्धशिला पर विराजमान हो जाना परमोक्ष है। और चार घन घातिया कर्मों का नाश हो जाने पर आर्हन्त्य अवस्था की प्राप्ति हो जाना अपरमोक्ष कहलाता है। अरिहंत भगवंत जीवनमुक्त भी कहलाते हैं। यद्यपि उनके औदारिक शरीर विद्यमान है, तथापि उन्हें आगे कभी जन्म धारण नहीं करना है। अतएव उन्हें भवोदधि का शोषण करने वाले कहते हैं।

प्रश्न-जन्म उन्हे नहीं लेना है पर मृत्यु को तो नही जीता है? एक वार तो अरिहन्त भगवान् की मृत्यु होती है। मृत्यु हुए विना मोक्ष कैसे पा सकते हैं ?

उत्तर अरिहन्त भगवान अपना शरीर त्याग कर ही मोक्ष में पधारते हैं किन्तु उनका शरीर त्याग मृत्यु नहीं है, निर्वाण कहलाता है।

प्रश्न-मृत्यु और निर्वाण में क्या अन्तर है ?

उत्तर मृत्यु वह कहलाती है जिसके बाद फिर जन्म धारण करना पड़े फिर नया शरीर ग्रहण करना पड़े। निर्वाण वह है जिसे प्राप्त करके फिर जन्म नहीं धारण करना पड़ता।

इस प्रकार संसार रूपी सागर का शोषण करने वाले भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्हें मेरा वार वार नमस्कार है।

भाइयो, प्रभु ऋषभदेवजी तीनों जगत के पिता हैं, माता हैं, बन्धु हैं, त्राता हैं, परमेश्वर हैं। वे 'धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टी' हैं

अर्थात् धर्म के चक्रवर्ती हैं। ऊर्ध्वलोक में रहने वाले देवता मध्य लोक के मनुष्य और तिर्यञ्च, अधोलोक में रहने वाले वाण व्यन्तर तथा सम्यग्दृष्टि नारकी जीव भी भगवान् को मानते हैं उन पर श्रद्धा रखते हैं। अलबत्ता कोई कह सकता है कि हम तो उन्हे नही मानते। ऐसे उल्टी खोपड़ी के लोग भी मौजूद है। पर ऐसे लोगों की बात ही निराली है। कोई कपूत अपनी माता को माता न माने और उसका तिरस्कार करे तो क्या वह उसकी माता नहीं कहलाएगी? याद रखना चाहिए कि असलियत तो असलियत ही है। किसी के मानने से या न मानने से असलियत मिट नहीं सकती। देख लो, भारत-सरकार को भी ऐरी-गैरी पंच कल्याणी गालियाँ देने वाले लोग मौजूद हैं। वे यह भी कह सकते हैं कि हम इस सरकार को सरकार नहीं मानते हैं? मगर ऐसा कहने वालों की बात क्या मूल्य रखती है? उनके कह देने से भारत सरकार क्या भारत सरकार नहीं रही?

भगवान् ऋषभदेवजी तीनों जगत् में शान्ति करने वाले और सुखकारी हैं। वे तीनों जगत् के पिता हैं। जैसे पिता, पुत्र का रक्षक होता है, उसी प्रकार भगवान् जगत् के प्राणी मात्र की रक्षा के लिए उपदेश देते हैं। भगवान् तीन लोक की माता के समान भी हैं। जैसे माता, पुत्र का पोषण करती है, उसे शान्ति उपजाती है। उसी प्रकार भगवान् भी जगत् के जीवों का पोषण करते हैं, उन्हे शान्ति उपजाते है। वे प्रत्येक को दुःख से सदा के लिए बचाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इसी निमित्त धर्मोपदेश करते हैं। भगवान् सब के बन्धु हैं। बन्धु का काम बन्धु को मदद करना है। भगवान् ऐसी मदद करते हैं कि दुर्गति में ही नहीं पड़ने

देते। कोई जेलखाने में चला जाय तो उसका भाई उसे छुड़ाने का प्रयत्न करता है, इसी तरह भगवान् जीवों को नरक रूपी कारागार में पड़ने से बचाते हैं!

भगवान् जगत् के नाथ हैं। "योगक्षेमकरो नाथः" अर्थात् जो योग और क्षेम करने वाला हो वह नाथ कहलाता है। जो वस्तु प्राप्त न हो उसका प्राप्त होना योग कहलाता है और जो वस्तु प्राप्त है उसकी रक्षा होना क्षेम कहलाता है। भगवान् ऐसे ही योग क्षेम करने वाले हैं। जिन जीवों को सम्यक्त्व और चारित्र प्राप्त नहीं हैं उन्हें वे प्राप्त कराते हैं और जिन्हें प्राप्त हो गये हैं उनकी रक्षा का उपदेश देते हैं। इस प्रकार भगवान् नाथ भी हैं। भगवान् जगत् के रक्षक हैं, जगत् के हितकारी हैं और जगत् को सुख पहुँचाने वाले हैं। भगवान् ने जो कुछ प्रवचन किये हैं वे प्राणी मात्र की रक्षा के लिए किये हैं। भगवान् ने कहा है- "सव्वे पाणा न हन्तव्वा" अर्थात् किसी भी प्राणी का हनन मत करो, किसी को पीड़ा मत पहुंचाओ, किसी को मत सताओ, क्यों कि सभी प्राणियों को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है।

सभी तीर्थङ्करों ने अहिंसा का ही उपदेश दिया है। तीर्थङ्करों की वाणी सुनकर अनन्त जीव संसार-सागर को पार कर चुके हैं। भगवान् ने कैसे-कैसे जीवों को उबारा है! बड़े-बड़े पापियों को भी उन्होंने तार दिया है। जिनका कर्तव्य देखने से मालूम होता था कि ये नरक के मेहमान बनेंगे, उन्हें भी उपदेश देकर प्रभु ने नरक जाने से बचा लिये। उन्हें स्वर्ग या मोक्ष में पहुँचा दिये। उनके सारे पाप कहाँ चले गये? जैसे हजारों-लाखों

पूलों की गंजी में आग की एक चिनगारी डाल दी जाय तो सब पूले भस्म हो जाते हैं, इसी प्रकार शुक्ल ध्यान की एक ही प्रबल चिनगारी से समस्त कर्म भस्म हो जाते हैं और धर्म ध्यान की चिनगारी से भी कर्मों का नाश होता है।

भाइयो ! धर्म बहुत महत्त्व पूर्ण वस्तु है। धर्म अनन्त पाप-वर्गणाओं को भस्म करने में समर्थ है। अतः धर्म का सेवन करो। यह मत सोचो कि हमने इतने पाप किये हैं तो नरक में हमारा मुकाम हो चुका। ऐसी बात नहीं है। धर्म तुम्हारे पापों का विनाश कर देगा और नरक से छुड़ा लेगा धर्म से कर्म भी बदल जाते हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं-अनिकाचित और निकाचित। जैसे किसी ने सौ सुइयाँ लेकर लोहे के एक तार से बाँध दीं। फिर वह उन्हें अलग-अलग करना चाहे तो क्या देर लगती है ? तार को जरा सा ढीला करते ही सब सुइयाँ बिखर जाती हैं। किन्तु यदि उन्हीं सुइयों को तार से बाँध करके और खूब गर्म करके, एरन पर रख करके घन से कूटा जाय तो वे आपस में प्रगाढ़ रूप से बँध जाती हैं। उनको अलग-अलग करने में कितना समय लगता है ? वे जुदा नहीं हो सकेंगी। उन्हें तो नये सिरे से ही बनाना पड़ेगा और ऐसा करने में काफी समय लगेगा। तो निकाचित कर्म वह हैं जो अत्यन्त चिकने होते हैं और अपना फल दिये बिना किसी भी प्रकार आत्मप्रदेशों से जुदा नहीं होते। इसके विपरीत अनिकाचित कर्मों में एक प्रकार का रूखापन होता है। वे तार से बँधी हुई सुइयों की तरफ अल्प प्रयास से ही अलग हो जाते हैं। वे सिर्फ प्रदेशों से उदय में आकर खिर जाते हैं, उनका रसोदय नहीं भी होता है। धर्म में ऐसी शक्ति है।

तात्पर्य यह है कि धर्म कर्मों को बिखेर देने में समर्थ है। धर्म के प्रभाव से कर्म कभी-कभी बिना फल दिये ही खिर जाते हैं, कभी-कभी तीव्र रस वाले मंद रस वाले बन जाते हैं। अर्थात् उनका जो तीव्र फल होने वाला था वह घट कर मंद फल ही रह जाता है। हाँ, अगर निकाचित कर्म बँध गये हों, जैसे कि राजा श्रेणिक ने बाँधे थे, तो उनका फल भोगना ही पड़ता है। राजा श्रेणिक को निकाचित कर्म के प्रभाव से नरक मे जाना पड़ा। फिर भी यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी की हुई प्रभु की भक्ति वृथा हो गई। राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर स्वामी की जो भक्ति की थी, वह निष्फल नहीं हुई। उसके प्रभाव से वे नरक से निकल कर और मनुष्य भव धारण करके शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेंगे।

कर्म का बंध पड़ गया है या नहीं, अगर पड़ गया है तो चिकने कर्म का बंध हुआ है या रुखे कर्म का, यह बात छद्मस्थ नहीं जान पाता क्या कि बंध पड़ने की क्रिया और काल बहुत सूक्ष्म होता है। वह छद्मस्थ के ज्ञान में नहीं झलक पाता। उसे तो केवली भगवान् ही जान सकते हैं। लेकिन तुम्हें चाहे मालूम हो या न मालूम हो, केवली भगवान् के कथन पर तुम्हें विश्वास रखना चाहिये। केवली भगवान् से ज्यादा ज्ञानी जगत् में कौन हो सकता है? उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान में देख कर जगत् के उपकार के लिए जो बातें बतलाई हैं, उन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। संदेह करने से कोई लाभ नहीं है। आगम में कहा है—

तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।

श्रीमदाचारांग सूत्र

अर्थात्-जिनेश्वर देव ने जो कुछ कहा है, वही सत्य है और असंदिग्ध है। उसमें शंका नहीं की जा सकती।

भाइयो! यह उत्कृष्ट ज्ञानियों के वचन हैं। "इन वचनों पर वही परिपूर्ण श्रद्धा कर सकता है जिसका प्रबल पुण्य उदय में आया हो।" पापी जीव, जिनका कल्याण होने में देरी है, जिनेश्वर देव के वचनो पर श्रद्धा नहीं करते। अगर आपकी श्रद्धा अचल है तो आप भाग्यशाली है। आपका कल्याण होने में विलम्ब नहीं होगा।

कहने का आशय यह है कि धर्म संबंधी बहुतसी सूक्ष्म बातें ऐसी हैं जो छद्मस्थ प्राणियों की समझ में नहीं आती। उन बातों पर उपेक्षा मत करो। उन पर अविश्वास मत लाओ। अविश्वास करने में तुम्हारा कल्याण नहीं है और विश्वास करने में कल्याण है। धर्म की शक्ति पर श्रद्धा रक्खो। धर्म पापों का नाश करने वाला है। अतएव तुम श्रद्धापूर्वक धर्म का ही सेवन करो। स्मरण रक्खो कि आज तुम्हें जितना अनुकूल और उत्तम अवसर मिला है, वह शायद भविष्य में न मिले। अतएव प्रमाद मत करो। आलस्य में मत रहो। अपनी शक्ति के अनुसार धर्म की आराधना करो। शक्ति का सदुपयोग करो। अवसर से लाभ उठाओ। धर्म का आचरण करना ही इस जीवन का अमृत-फल है संभव है धर्म का आचरण करने में तुम्हें कुछ कष्ट उठाना पड़े मगर उसके अमृतमय फल का विचार करके उस

कष्ट को भी हर्षपूर्वक अंगीकार कर लो। यों धर्म आत्मा का स्वभाव है और उसका सेवन करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। अगर आप दुखी को देख कर दया करते हैं, गाली देने वाले पर क्रोध न करके क्षमा करते हैं, विषयों में आसक्ति नहीं रखते, न्याय-नीति और सचाई के साथ अपनी जीविका चलाते हैं तो इसमें क्या कठिनाई हो सकती है? यही तो सब धर्म है। अगर अपने जीवन को व्यवस्थित बना लो और विवेक की तराजू पर तोल कर व्यवहार करो तो धर्म का आचरण करने में आपको जरा भी कठिनाई नहीं मालूम होगी। यही नहीं आपको आनन्द की अनुभूति भी होगी और आपकी जिंदगी सुखमय बन जाएगी। हाथ-कंकण को आरसी की क्या आवश्यकता है? धर्म का फल तो आप चाहें तो इसी जन्म मे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं।

इस के विरुद्ध अगर आपकी मनोवृत्ति ही दुषित हो रही है, आपका जीवन व्यवस्थित नहीं है, आपके संकल्प में मजबूती नहीं है तो धर्म करने में अवश्य दिक्कत मालूम होने लगेगा। क्यों श्रावकजी! आज व्याख्यान सुनने नहीं आये? तब श्रावकजी कहते है क्या करूँ महाराज! सिर दुखने लगा था। या कहते हैं आ तो रहा था मगर रास्ते मे एक ग्राहक मिल गया तो वापिस लौटना पड़ा। इस प्रकार पाप करते हुए तो विघ्न नहीं आता, मगर-धर्म कार्य में विघ्न आड़े आ जाते हैं। यह सब वास्तव में क्या चीज है? यह संकल्प की कमजोरी ही है और कुछ भी नहीं। भगवान् फर्माते हैं —

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥

दश. अ. ८ गाथा. ३६

हे प्राणी ! जब तक तुझे बुढ़ापे ने आकर घेर नहीं लिया है, जब तक तेरे शरीर में किसी प्रकार की व्याधि नहीं बढ़ पाई है और जब तक तेरी इन्द्रियों में शक्ति बनी हुई है-इन्द्रियाँ स्थिल नहीं हो पाई हैं, तब तक तेरे लिए धर्म-सेवन का स्वर्ण अवसर है। इस अवसर को गँवा मत। धर्म का सेवन कर ले। जब वृथावस्था आ जायगी, शरीर रोगों का अड्डा बन जायगा और इन्द्रियाँ क्षीण हो जाएँगी तब तो जीवन भारभूत प्रतीत होने लगेगा ! उस समय समाधि के साथ धर्म का आचरण होना कठिन है। हे बुद्धिमान् ! पहले से सावचेत हो जा। आग लगने से पहले ही कुआ खुदवा लेने वाला विवेकवान् कहलाता है। घर मे आग लग जाने पर कुआ खुदवाने वाला मूर्खों की गिनती में आता है। तू समझदार प्राणी है। अपनी समझ से काम ले। समझ-बूझ कर नादान न बन।

भाइयो ! धर्म के मार्ग पर चलते हुए कदाचित् कोई कठिनाई सामने आये तो भी हिम्मत मत हारो। घबराओ मत। अपनी श्रद्धा में ढीलापन न आने दो। अपने संकल्प को बलवान् बनाये रक्खो। अगर तुम्हारा संकल्प सबल है तो तुम्हारे सामने आने वाले विघ्न निर्बल हो जाएँगे, और यदि तुम्हारा संकल्प निर्बल है तो बलहीन विघ्न भी प्रबल बन जाएँगे। जब तुम्हारे समक्ष कोई कठिनाई खड़ी हो तो अपने पूर्वज पुरुषों का स्मरण करो। देखो, भगवान् महावीर स्वामी जैसे परमपुण्यशाली महापुरुष के मार्ग में कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई थीं फिर भी वे क्या एक इंच भी पीछे हटे ? नहीं, वे डटे रहे और अग्रसर ही होते गये।

और राजा हरिश्चन्द्र के वृत्तान्त का स्मरण करो। राजा हरिश्चद्र को कितने कष्ट झेलने पड़े ? संसार में बड़ी से बड़ी जो मुसीबतें हो सकती हैं, सब उनके ऊपर आ पड़ी थीं। राज्य चला गया, पत्नी को बेचना पड़ा, खुद को बिकना पड़ा और वह भी चाण्डाल के हाथों बिकना पड़ा, श्मशान रक्षक की जीविका अपनानी पड़ी पुत्र का विछोह सहना पड़ा, पत्नी को अधनंगी करके अपने ही पुत्र का कफन माँगना पड़ा! यह सब क्या साधारण मुसीबतें थीं ? मगर देखो हरिश्चद्र की दृढ़ता को। जिन विपदाओं का वृत्तान्त सुनकर ही आपके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उन्हीं विपदाओं को दृढ़ता के साथ सहन करते हुए हरिश्चन्द्र अपने धर्म पर अविचल रहे। ऐसे-ऐसे पुरुष प्राचीन काल में हो गये है। उनका जीवन वृत्तान्त हमारे साहित्य में आज तक क्यों सुरक्षित है ? इसीलिए तो कि उससे आपको प्रेरणा मिले। आप उससे कुछ सबक सीखें और तुच्छ एवं नगण्य सी कठिनाइयाँ आने पर विचलित न हो जावें।

दुःख देखे बिना सुख नहीं मिलता। अगर मिल भी गया तो उस सुख में क्या स्वाद होगा ? भोजन का मजा तभी आता है जब कड़ाके की भूख लगी हो। जो भूख से छटपटाया नहीं, भूख से पीड़ित नहीं हुआ, उसे भोजन का आनन्द नहीं मालूम ! इसी प्रकार जिसने दुःख नहीं देखा वह सुख का मधुर रस अनुभव नहीं कर सकता। अगर तुम्हें सुख का सच्चा मजा लूटना है तो दुःख सहन करो। दुःख न आते हों तो उन्हें न्यौता देकर बुलाओ। आते हों तो उनका स्वागत करो। दुःखों से बचने की

प्रयत्न मत करो। अगर तुमने दुःखों का वीरता से सामना किया तो समझ लो कि सुख तुम्हारी मुट्ठी में ही है।

दुःखों से बचने की कोशिश करोगे तो भी क्या नतीजा होने वाला है ? सारा संसार दुःखों से भरपूर है। बचकर जाओगे भी तो कहाँ जाओगे ? जहाँ तुम जाओगे, तुम्हारे कर्म भी तुम्हारे साथ ही जाएँगे। तुम उनके फल से बच नहीं सकते।

दुःख सहन किये विना किसी भी कार्य में सिद्धि नहीं मिलती। किसानों को देखो, सख्त गर्मी में वे हल चलाते हैं और जब कड़ाके की सर्दी पड़ती है तब भी क्यारियों में पानी पिलाते है। वे अपने लोहू का पसीना करके अनाज पैदा करते हैं। मजदूर को कितनी मशक्कत करनी पड़ती है ? वह अपनी शक्ति से ज्यादा बोझ लादता है और बदले में पैसा पाकर अपना गुजर-बसर करता है। विद्यार्थी को भी क्या कम श्रम करना पड़ता है ? यह सब लोग पहले कष्ट उठाते हैं तो बाद में शान्ति पूर्वक जीवन व्यतित कर पाते हैं। बाल-बच्चों की सार सँभाल करने में, उनका पालन-पोषण करने में और उन्हें योग्य बनाने में क्या सैकड़ों झंझटें नहीं होती ? फिर भी लोग खुशी-खुशी उन सब को सहन करते हैं। इसीलिए कि बालक योग्य होकर हमारा आधार भूत बनेगा। हमें सुख पहुँचाएगा।

यही बात धर्म के विषय में क्यों नहीं सोचते हो ? धर्म में जरा-सी कठिनाई आ जाय तो उसे क्यों छोड़ बैठते हो ? इहलोक के लिए तो सैकड़ों और बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ सहन कर सकते हो किन्तु अनन्त भविष्य को सुधारने वाले-मंगलमय

बनाने वाले धर्म की उपेक्षा करते हो ? थोड़ी-सी कठिनाई आते ही पैर पीछे हटा लेते हो ? यह कायरता छोड़ो। धर्मवीर बनो। धर्म करते कोई तकलीफ आ पड़े तो घबराना नहीं चाहिए। किसी समय मुनिराजों का संयोग मिल जाता है और किसी समय नहीं भी मिलता। तो भी धर्म पर दृढ़ रहना चाहिए। मिथ्यात्व के चाले मत लगो।

कई लोग दीपक के समान होते हैं। जब तक दीपक में तेल रहे तब तक वह जलता है और तेल न रहने पर बुझ जाता है। इसी प्रकार वे लोग भी जब तक मुनिराज मौजूद होते हैं तब तक धर्म करते हैं और मुनिराजों के जाते ही धर्म-कर्म को ताख में रख देते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। धर्म आपकी रग-रग में समा जाना चाहिए। दुनिया में बहकाने वाले भी हैं, पर बहकने वालों को अपनी बुद्धि का उपयोग करना चाहिए। किसी के कहने पर गुमराह मत हो ओ। वे स्वयं उलटे रास्ते चलते हैं और दूसरों को भी उसी रास्ते पर चलाना चाहते हैं ! कोई धर्मो-पदेश सुनने जाता हो तो वे कहते हैं-अरे क्या धरा है उपदेश में। यों ही गपोड़े हाँकते हैं ! परन्तु तुम उन गपोड़-संखों की बातें मत सुनो, जिन्होंने स्वयं अपना दिवाला फूंक दिया है और दूसरों का भी दिवाला निकाल देना चाहते हैं।

दो दोस्त परदेश गये। अन्तराय टूटने के कारण उनको अच्छी कमाई हुई। मगर जानते हो, पैसे के मामले में मतभेद हो ही जाता है ! जहाँ लालच उत्पन्न हुई वहाँ बेईमानी भी आ-जाती है। दो-तीन वर्ष बाद दोनों में से एक अपने गाँव लौटा। दूसरे की स्त्री उसके पास गई और उसने अपने पति के समाचार

पूछे। मित्र ने कहा मैंने उनके प्रति अपना पूरा कर्त्तव्य पालन किया। किसी प्रकार की कसर नहीं रक्खी । मगर वे दगा दे ही गये।

यह शब्द सुनकर औरत समझी कि मेरे पति का देहान्त हो गया है। वह रोती हुई और छाती कुटती हुई घर आई । घर आकर और जोर-जोर से रोने लगी । उसका रुदन सुनकर पड़ौसिनें आई और वे भी रोने में उसकी सहायता करने लगी । तीसरे के बाद तेरहवाँ आया तो चूड़ा उतारा और काले कपड़े पहन कर कोने में बैठ गई ।

साल छह महिने वाद उसका पति आया और खूब कमाई करके लाया। वह गाँव के बाहर ठहरा। लोगों ने देखा । दो छोरों को भेजा कि जाकर कह दो कि तुम्हारे पति आ गये हैं । चूड़ा पहन लो और काले कपड़े उतार दो। छोरों ने आकर ऐसा ही कहा। परन्तु औरत को विश्वास नहीं आया । उसने तमतमा कर उत्तर दिया तेरी माँ का माटी आवे तो मेरा धनी आवे । हाय राम ! यह लोग मेरी हँसी करते हैं। जी को कैसी आफत हो गई।

इसके वाद फिर पाँच आदमी आये । उन्होंने भी कहा वात ठीक है। तुम्हारे पति आ गये है मगर औरत को फिर भी भरोसा न आया । वह क्रोध में आकर कहने लगी तुम सब मेरे प्राण लेने वाले हो। तुम जले पर नमक छिड़कते हो ! आस पास की औरतों ने भी कहा अरी, जल्दी कपड़े वदल ले। तेरे पत्ति आने वाले हैं। लेकिन उस औरत ने किसी की नहीं मानी ! उसे किसी के कहने पर विश्वास ही न आया । मृत पति लौट कर आ सकता है, यह कल्पना ही उसे नहीं आती थी ।

आखिर थोड़ी देर में उसके पति स्वयं आ गये। उसने घर आकर रंगढंग देखा तो दंग रह गया। पूछने पर औरत ने सारा वृतान्त कह सुनाया। तब पति ने बतलाया कि उसकी और मेरी लड़ाई हो गई थी। इसी कारण उसने यह धूर्तता की है। अब तुम चूड़ा पहन लो और कपड़े बदल लो।

पति की बात सुनकर पत्नी बोली देखो, जो जन्मा है सो अवश्य ही मरेगा। तुम अभी नहीं मरे तो आगे कभी न कभी मरना ही पड़ेगा। मैंने बड़ी मुश्किल से छातीकूटा करके, और छह महिने तक कोने में बैठ कर चूड़ा उतारा है और काले कपड़े पहने हैं। जब तुम मरोगे तो मुझे फिर दुबारा यही सब करना पड़ेगा! इसलिए मुझे तो माफ करो। मैं दुबारा यह सब करने को तैयार नहीं हूँ।

पति ने कहा मगर मेरे जीते जी तू विधवा होकर क्यों रहेगी? कहा मान ले, नहीं तो मैं दूसरी शादी कर लूँगा। फिर तू पछताएगी।

पत्नी बोली—कुछ भी हो, मैं दूसरी बार यह झंझटे मोल नहीं ले सकती।

अब पति ने उसकी कोई परवाह नहीं की और दूसरी शादी कर ली।

यह तो दृष्टान्त है। मतलब यह है कि साधु मुनीराजों का कर्त्तव्य तो देश-देशान्तर में विहार करना है। वे सदा एक जगह स्थिर होकर नहीं रहते। कभी दूसरे देश में चला जावें

और आपके यहाँ न आवें तो आप लोग रांड की तरह कभी चूड़ा मत उतारना। कोई आकर कहे तो उसकी क्या, उसके बाप की भी मत मानना। निश्शंक भाव से, अविचल श्रद्धा के साथ अपने धर्म पर दृढ़ रहना। अगर किसी ने भ्रम में पड़ कर, द्वेषी के कहने में आकर चूड़ा की तरह धर्म का त्याग कर दिया हो तो उसे फिर धारण कर लो।

भाइयो! अहिंसा में, सत्य में, अचौर्य में, ब्रह्मचर्य में, निर्लोभता में, क्षमा में और सन्तोष में धर्म है। इस सूत्र को भली-भांति याद रक्खो। इसे मत भूलना। कोई इसके विपरीत कहे तो उसके बाप की भी मत मानो। दूसरे के कहने में लग जाने से जैसे उस औरत का पति-सुख छिन गया उसी प्रकार मिथ्यादृष्टियों की बातों में फँस जाने से आपका मुक्ति-सुख छिन जायगा। आपको जन्म-जन्मान्तर में दुःखी होना पड़ेगा।

दूसरों का कहना मानकर धर्म का परित्याग कर देना बेवकूफी की हद है। आज बहुत-से लोग ऐसे हैं जो धर्म को ढोंग समझते हैं। वे अपने को धर्महीन घोषित करने में गौरव मानते हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वे घोर अज्ञान में पड़े हुए प्राणी दया के पात्र हैं। उन्हें विवेक नहीं है। उनमें समझ नहीं है। वे अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। तुम उनका अनुकरण मत करो। विश्वास रक्खो कि धर्म के प्रसाद से कभी दुःख नहीं होता। धर्म कभी किसी के जीवन को बिगाड़ नहीं सकता। अतएव ऐसे धर्महीन लोगों के सम्पर्क से दूर रहो। कई लोग धर्म को तो मानते हैं, मगर अधर्म को धर्म समझ कर मानते हैं। वे भी भ्रम में

पड़े हुए हैं। इनसे भी दूर रहो। वीतराग भगवान् का कहा हुआ धर्म कदापि मिथ्या नही हो सकता। उसी पर पूरी आस्था रक्खो।

जम्बूकुमार की कथाः—

भाइयो! धर्म पर कितनी गहरी आस्था होनी चाहिए, यह जानना हो तो जम्बूकुमार का जीवन चरित समझो। देखो, उनकी नव विवाहिता पत्नियों ने कितना प्रयास किया कि जम्बूकुमार अपने संकल्प को त्याग दें, मगर उनका संकल्प सुमेरु की तरह अटल रहा। कोई भी प्रलोभन उनके मन को अपनी ओर आकर्षित न कर सका। उनके वैराग्य का रंग बड़ा पक्का था। वैराग्य के रंग मे उनकी नस-नस रंग गई थी। फिर वह रंग कैसे छूटता?

जम्बूकुमार ने अपनी सातवीं स्त्री रूपश्री के कथन का उत्तर देते हुए कहा— प्रिये! तुमने जो उदाहरण दिया है, वह सच्चा है। मैं साधुपने रूपी शेर के मुख में से मोक्ष रुपी मांस निकालना चाहता हूँ। तुम मुझे भयभीत करना चाहती हो, साधुवृत्ति की कठिनाइयाँ कह-कर मुझे डराना चाहती हो, पर मैं डरने वाला कायर नहीं हूँ। मैं महावीर का शिष्य हूँ। महावीर का सच्चा शिष्य कायर नहीं हो सकता। मैंने मुक्ति प्राप्त करने का पक्का संकल्प किया है। वह मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति जीवन में न हुई तो जीवन ही वृथा हो जायगा। यह उत्कृष्ट जीवन भोग रुपी कीचड़ मे फँस कर नष्ट कर देने के लिए नहीं है। जो विषय भोग में जीवन व्यतित कर देते है, वे महामूढ़ हैं। बुद्धिमान् पुरुष वही गिना जायगा जो प्राप्त सामग्री का सदुपयोग करेगा और अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाएगा। केवल

वर्त्तमान में मस्त होकर भविष्य की चिन्ता न करना एक बड़ी मूर्खता है। क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारा पति ऐसा मूर्ख बने ?

किसी राजा का एक राजकुमार था। उसके तीन मित्र थे। उनमें से एक मित्र आठों पहर उसके साथ रहता था। वह राजकुमार के साथ ही अच्छे से अच्छा भोजन करता था, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनता था, हवाखोरी करने जाया करता था और साथ ही उठता-बैठता था। वह राजकुमार के साथ सब काम किया करता था। दूसरा मित्र सिर्फ चार पहर तक अर्थात् सुबह से शाम तक ही राजकुमार के साथ रहा करता था। मगर खान-पान आदि व्यवहार इसके साथ भी वैसा ही था, जैसे पहले मित्र के साथ था। तीसरा मित्र कभी-कभी मिलता जुलता था। जब मिलता तो जुहार कर लिया करता था।

राजकुमार शरीर से स्वस्थ था, सुन्दर था, नवयुवक था और समझदार था। राजा अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा उसे समझता था। क्योंकि राजा भी नीतिमान् था, और कुमार भी नीतिमान् था।

एक बार, रात्रि में सोते-सोते अचानक ही राजा की नींद खुल गई। उसने विचार किया आज मैं जीवित हूँ और शायद कल न भी रहूँ। इस शरीर का क्या ठिकाना है ? क्षणभंगुर शरीर का कोई भरोसा नहीं है। मेरे बाद राजकुमार राज्य का स्वामी बनेगा। कदाचित् उस समय वह कठिनाई में पड़ जाय तो कौन उसकी सहायता करेगा ?

उधर दीवान को भी राजकुमार की सुशीलता पर पूरा पूरा भरोसा था। राजा के उपर्युक्त शब्द सुन कर उसे भी अचंभा हुआ। उसने क्षणभर अपने मन में विचार किया कि यह क्या वात है ? अचानक क्या घटना घट गई ? मगर दीवान होने के नाते उसे स्थिति को सँभालना था। अतएव वह चुप नहीं रह सका। उसने राजा से कहा—अन्नदाता! आखिर राजकुमार से क्या अपराध वन गया है ?

मगर राजा ने आज नया ही नाटक रचा था। उसने दीवान के प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर न देते हुए दीवान से कहा—तू भी चला जा! तुझे बीच में टांग अड़ाने की क्या आवश्यकता थी ?

राजा का हुक्म ठहरा! और फिर इस समय का हुक्म था जो तीव्र क्रोध के साथ दिया गया था। दीवान ने विचार किया कि अगर हुक्म का पालन करने में देर की और मुँह से कोई बात निकाली तो मेरी आवरु पर पानी फिर जायगा। जान वची और लाखों पाये। यह सोच कर दीवान चुप-चाप दरबार से चल दिया।

इधर राजकुमार को भी हिम्मत न हुई कि वह राजा से अपने अपराध के वारे में पूछताछ करे। अतएव दरवार से सीधा लौट कर वह अपने शयनगृह (सोने के कमरे) में आया और पलंग पर वैठ कर रोने लगा। मनुष्य अपराध करके जव दंड पाता है तो उसे कुछ तसल्ली रहती है। मगर जव सर्वथा निर-पराध होते हुए दंड भुगतना पड़ता है, तव उसकी वेदना

असह्य हो जाती है। राजकुमार समझ नहीं पा रहा था कि मेरा क्या अपराध है और पिताजी इतने अधिक रुष्ट क्यों हो गये हैं ? इसी कारण उसके हृदय में घोर वेदना हो रही थी।

राजकुमार को रोते देख उसका अष्ट पहरिया मित्र उसके पास आया। उसने रोने का कारण पूछा। तब राजकुमार ने कहा-अन्नदाता का मेरे ऊपर तीव्र कोप हो गया है। मेरे हक में इसका नतीजा बड़ा भयानक होगा। दीवान साहब ने मेरे अपराध के विषय में जानना चाहा तो पिताजी ने उन्हें भी निकाल बाहर कर दिया है। ऐसी स्थिति में आज तुम्हारी आवश्यकता है। तुम मेरे रात-दिन आठ पहर के साथी हो, मित्र हो। तुम्हीं इस विपदा से बचा सकते हो।

राजकुमार की मुसीबत का हाल सुनकर आठ पहरिया मित्र सोचने लगा-राजकुमार का पक्ष लेने से जब दीवान साहब जैसे उच्च श्रेणी के अधिकारी को भी महाराजा ने निकाल दिया तो मैं किस खेत की मूली हूँ। मुसीबत में पड़ने के लिए मैंने राजकुमार को अपना मित्र नहीं बनाया है। मजा-मौज करने के लिए ही मैंने मित्रता की है। ऐसी दोस्ती किस काम की जो आफत में डाल दे !

ऐसा सोचकर आठ पहरिया मित्र किसी बहाने वहाँ से खिसक गया और अपने घर पर जा पहुँचा। दूसरा मित्र चार पहरिया था। वह शाम तक तो अपना कर्त्तव्य बजाता रहा, मगर उसके बाद उसने भी अपना रास्ता नापा !

अब राजकुमार अकेला बैठा-बैठा रोने लगा। जब कुछ रात बीत गई तो उसने विचार किया रोने से कुछ मतलब हल

राजा को मालूम था कि राजकुमार के तीन मित्र हैं। मगर वह यह नहीं जानता था कि इनमें कौन सच्चा मित्र है जो विपत्ति में सहायता करे और कौन ऐसा स्वार्थी है जो किनारा काट कर अलग हो जाय ? अतएव राजा ने तीनों की परीक्षा करने का विचार किया।

वास्तव में सच्चा मित्र वही है जो आड़े वक्त में सहायक बनता है। नीतिकार कहते हैं:—

पापन्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

बहुतेरे लोग आप बिगड़े होते हैं और अपने मित्र को गलत राह पर ले जाकर बिगाड़ देते हैं। मगर सच्चा मित्र वह है जो अपने मित्र को पाप-कार्य से रोकता है। हितकर मार्ग पर चलाता है। मित्र में अगर कोई दोष भी हो तो उसे छिपाना, कम से कम दुनिया में उसे प्रकट न करना और उसके गुणों को ही प्रकट करना मित्र का खास कर्त्तव्य है। मित्र को चाहिए कि जब उसके मित्र पर किसी किस्म की आपत्ति आ पड़े तो किनारा काट कर अलग न हो जाय। मुसिबत के वक्त में उसको छोड़ देने वाले मित्र स्वार्थी हैं, सच्चे मित्र नहीं हैं। इसके अतिरिक्त समय पड़ने पर मित्र को आवश्यक धनादि देकर उसकी सहायता करनी चाहिए। यह सब बातें जिसमें पाई जाएँ वही सच्चा मित्र है, ऐसा सतपुरुषों ने बतलाया है।

संसार में ऐसे सच्चे और कर्त्तव्यनिष्ठ मित्र की प्राप्ति हो जाना बड़े ही सौभाग्य की बात है। अधिकांश मित्र स्वार्थ के पुतले होते हैं। और जब तक उनका मतलब सधता है, चापलूसी किया करते हैं। और ज्यों ही स्वार्थसिद्धि में बाधा पड़ी कि दूर जा खड़े हुए! ऐसे मित्रों के होने से न होना अच्छा है।

राजा विचारवान् था। उसने अपने पुत्र के मित्रों की परीक्षा करके जानना चाहा कि उसके तीन मित्रों में कौन सच्चा मित्र है और कौन नहीं? प्रातःकाल हुआ। राजा दैनिक कृत्यों से निवट कर दरबार में आया। दरबार में दीवान आदि पहले से ही मौजूद थे। थोड़ी देर बाद राजकुमार भी अपने पिता के चरण स्पर्श करने के लिए आ पहुँचा। परन्तु आज राजा ने उसके आने पर मुँह फेर लिया। राजकुमार विस्मित हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि आज पिताजी किस कारण असन्तुष्ट हैं? आखिर राजकुमार ने कहा—अन्नदाता!

राजा जोर से झिड़क कर बोला—मेरी आँखों के सामने से चला जा नालायक कहीं का! तू मेरी गद्दी के लायक नहीं है! कमीने! मैं तेरा मुँह भी देखना पसन्द नहीं करता।

राजा ने आज तक कभी भी राजकुमार को ऐसे कठोर शब्द नहीं कहे थे। प्रथम तो स्वयं राजकुमार ही सुशील था और किसी को असन्तुष्ट होने का अवसर ही नहीं देता था, खास तौर से वह अपने पिता के प्रति बहुत आदर का भाव रखता था और बड़ा आज्ञाकारी था। उसे स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि पिताजी मुझ पर रुष्ट हो सकते हैं।

नहीं होगा। सुबह होते ही महाराज मुझे शूली पर चढ़ा देंगे। तब कुछ पुरुषार्थ क्यों न किया जाय ? अपराध मैंने कुछ किया नहीं है। फिर अपने बचाव के लिए कुछ प्रयत्न तो करना ही चाहिये। इस प्रकार सोचकर वह अपने महल से रवाना हुआ और आठ पहरिया मित्र के पास पहुँचा। उसकी चार मंजिल की हवेली थी, वहाँ पहुँच कर राजकुमार ने अपने मित्र को आवाज दी। ऐ अजीज ! ओ मेरे प्यारे मित्र ! दरवाजा खोलो। मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ। मगर मित्र ने राजकुमार की आवाज सुनी अनसुनी कर दी। जब राजकुमार दरवाजे से नहीं टला तो आखिर वह आया और बोला—इस समय यहाँ क्यों आये हो ?

राज०—अन्नदाता मुझ पर कुपित हो गये हैं, यह बात तो तुम्हें मालूम ही है। यह भी सुना है कि सुबह मुझे शूली पर चढ़ा देने का हुक्म हुआ है। जो मेरी सहायता करेगा उसे भी शूली दी जायगी। ऐसे खतरे के समय तुम्हारे पास आना मेरे लिए योग्य तो नहीं था, मगर जानते हो कि प्राण सभी को प्यारे होते हैं। बिना बचाव किये चुपचाप जान दे देना भी ठीक नहीं है। बचने की कुछ तो कोशिश करनी ही चाहिए। इसी विचार से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मेरे सब से बड़े और गहरे मित्र हो। मेरे प्राणों की रक्षा के लिए जो उपाय हो सकता हो सो करो।

आठ पहरिया—देखो भाई ! जब तक अन्नदाता आपके ऊपर खुश थे, तब तक ही तुम्हारी-मेरी मित्रता थी। अब, जब कि महाराजा तुम्हारे ऊपर कुपित हो गये हैं, मैं कुछ नहीं कर सकता। सहायता करने से मेरा कुछ विगाड़ न होता तो भी मैं

सोचता, मगर यहाँ तो बात ही दूसरी है! कहीं तुम्हारी सहायता करने से मुझे भी शूली मिल गई तो क्या होगा? सच्चे मित्र का क्या यही कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्र के प्राणों का ग्राहक बने? राजकुमार! तुम मुझे कितनी बड़ी विपदा में डाल रहे हो! मैं नहीं जानता था कि तुम इतने स्वार्थी हो। अगर तुम्हारे यहाँ आने की बात महाराज को मालूम होगी तो मेरे ऊपर संकट आ पड़ेगा! अतएव अच्छा यही है कि तुम उलटे पाँवों वापिस चले जाओ! एक मिनट भी यहाँ मत्त ठहरो। अगर इसी वक्त न चले गये तो मैं पत्थर फैकूँगा। तुम्हारा सिर फूट जायगा। सुबह के बदले अभी मर जाओगे!

भाइयो! यह उस आठ पहरिया मित्र का जिक्र है जो राजकुमार का सबसे बड़ा साथी बना हुआ था! जिसे राजकुमार ने रात-दिन अपने साथ रख कर खूब खिलाया-पिलाया था! जिसे उसने अपने ही समान समझा था! राजकुमार समझ गया कि इन तिलों में तेल नहीं है। निराश होकर वह वहाँ से रवाना हो गया।

राजकुमार का दूसरा मित्र चार पहरिया था। वह उसके पास पहुँचा और बोला—भाई साहब! किवाड़ खोलो। वह मित्र सामने आया। उसने नम्रतापूर्वक कहा—मैं आपका गुलाम हूँ। कहिए, क्या आज्ञा है? राजकुमार ने सारा वृत्तान्त उसे बतला कर कहा—मैं आपको अपने घर में आश्रय देने में असमर्थ हूँ, लेकिन सहायता कर सकता हूँ। मेरे यहाँ बढ़िया पाँच सौ रुपये का घोड़ा तैयार है। आप इस पर सवार होकर भाग जाइए। आपके खर्च के लिए साथ में कुछ असर्फियाँ भी बाँध

देता हूँ। आप जानते हैं कि राज्य के हाथ लम्बे होते हैं। मेरे छोटे छोटे बालक हैं। मैं आपको कैसे आश्रय दे सकता हूँ? और बचाने की शक्ति तो मुझ में है ही नहीं?

आखिर वह पाँच-पचास कदम उसके साथ गया और राजकुमार की दुर्दशा पर आँसू बहाता हुआ लौटकर अपने घर आ गया।

राजकुमार वहाँ से भी निराश होकर अपने जुहारु मित्र के पास पहुँचा। राजकुमार को इसके साथ कोई घनिष्ठता नहीं थी। कभी मिल जाता तो राम-राम हो जाती थी। फिर भी राजकुमार ने उसके पास जाना ही उचित समझा। डूबते को तिनके का सहारा भी बड़ा मालूम होता है।

राजकुमार ज्यों ही उस तीसरे मित्र के पास पहुँचा और उसके द्वार खटखटाये कि तुरंत ही वह सामने आया। राजकुमार को देखते ही उसने कहा—आप भीतर हवेली मे पधारिये। हवेली में ले जाकर उसने असमय में, बिना ही सूचना दिये, आने का कारण पूछा। राजकुमार ने अपनी सारी विपत्ति कथा उसे सुनाकर कहा—कोई बचाव का उपाय कर सकते होओ तो करो।

मित्र ने कहा—एक बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। वह यह कि वास्तव में आपने कोई अपराध किया है या नहीं? सच सच कह दीजिए।

राजकुमार—मैं सत्य कहता हूँ, मैंने न कोई अपराध किया और न मेरे खिलाफ कोई आरोप ही लगाया है। बिना

अपराध और बिना आरोप ही मुझे सजा दी जा रही है। मैंने महाराज की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी तो नहीं किया है! मैं नहीं जानता कि मामला क्या है?

मित्र - जब आप निर्दोष है तो आपका बाल भी बांका नहीं हो सकता। आप बेफिक्र रहिए।

राजकुमार—फिर भी तुम अपनी स्थिति पर विचार कर लो। मुझे बचाने का प्रयत्न करते कहीं तुम्हारे प्राणों पर संकट न आ पड़े!

मित्र—मैंने सब सोच लिया है। किस की मजाल है कि बेकसूर को सता सके। फिर भी अगर मुझे मरना पड़ेगा तो न्याय की प्रतिष्ठा के लिए मैं सहर्ष मरना कबूल कर लूँगा।

आखिर उसने एक कमरे में ले जाकर राजकुमार को पलंग पर बिठला दिया और अपनी पत्नी से बढ़िया बादाम का सीरा और शाक-पूरी आदि आदि बनाने के लिए कहा। जब रसोई बनकर तैयार हो गई तो थाल परोस कर राजकुमार के सामने रक्खा।

जिसके मस्तक पर मौत नाच रही हो उसे भोजन की इच्छा कैसे हो सकती है? राजकुमार की यही हालत थी। उसे भोजन-पानी कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने कहा—भाई! भोजन मुझे करना नहीं है। मेरी आँखों के आगे तो मौत ही मौत नाच रही है।

मित्र ने धैर्य बँधाते हुए कहा—जब आप निर्दोष हैं तो डरते क्यों हैं ? मुझे अपने लिए तो लेश मात्र भी भय नहीं हो रहा है क्या आपको नहीं मालूम है कि साँच को आँच नहीं लगती"। आप विश्वास रखिए, मेरे जीते जी आपका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता।

आखिर उसने राजकुमार को भर पेट जिमाया और फिर सोने की सब सुविधा कर दी। कहा—आप निश्चिन्त होकर सो जाइए।

राजकुमार का यह जुहारु मित्र भी रईस था। उसके पास अस्त्र शस्त्र और कई, जवान सिपाही थे। राजकुमार को सुलाकर वह अपने सिपाहियों के पास आया। सिपाहियों को शस्त्रा से लैस होकर सावधान रहने के लिए कहा। उसने यह भी कह दिया कि कोई राजकुमार को पूछता आये तो उसे बंदूक दिखला कर कह देना—हाँ, राजकुमार यहाँ मौजूद हैं।

सिपाही सतर्क होकर खड़े हो गये। वह जाकर अपने बिस्तर पर लेट गया पर उसे नींद नहीं आई। कहा है:—

अर्थातुराणां न पिता न बन्धुः, क्षुधातुराणां न बलं न तेजः।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा, कामातुराणां न भयं न लज्जा॥

जिसके चित्त पर चिन्ता सवार रहती है उसे नींद नहीं आती। राजकुमार की भी यही स्थिति थी, उस ने इधर-उधर करवटें बदलते-बदलते रात पूरी की।

प्रातःकाल होते ही राजा ने दीवान को बुलवाया और उससे कहा— देखो, राजकुमार मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है मैंने उसके मित्रों की परीक्षा करने के लिए ही यह काण्ड रचा है। इसी कारण तुम्हारे ऊपर भी बनावटी क्रोध करके तुम्हें घर रवाना कर दिया था। देखो, किसी को यह बात प्रकट नहीं होना चाहिए।

दीवान ने सोचा—मैंने बड़ी भूल की जो राजकुमार को अपने घर पर नहीं रख लिया। खुलकर राजकुमार का पक्ष लिया होता तो कितना अच्छा रहता।

जो बुध पीछे होत है, सो बुध पहले होय।
काम न बिगड़े आपणो, जग में हँसे न कोय॥

राजकुमार को महल से गायब हुआ देख राजा ने उसकी खोज करने का आदेश दिया। दीवान फौज लेकर पहले पहल आठ पहरिया मित्र के घर गया। पूछा—क्या यहाँ राजकुमार आये थे? उसने उत्तर दिया—हाँ, यहाँ आये तो थे, मगर मैंने उन्हें अपने घर में ठहरने नहीं दिया। मैंने उसी समय डरा धमका कर भगा दिया था।

दीवान उसे राजा के पास लाया। उसने पूर्वोक्त सारा वृत्तान्त राजा के समक्ष भी कह दिया। राजा ने ऊपरी मन से कहा—शाबास, तुमने उचित ही किया है। तुम सच्चे राजभक्त हो। राजा ने उसे कुर्सी पर बिठला कर उसके आदर का प्रदर्शन किया। मन ही मन सोचा कितना नालायक है! कैसा कृतघ्न

है ! सम्पति के समय साथ देने वाले और मौज उड़ाने वाले तथा विपति आने पर किनारा काट लेने वाले नराधम ऐसे होते हैं ।

इसके बाद दूसरा चार पहरिया मित्र बुलवाया गया । उससे पूछा तो उसने भी सच्चा-सच्चा समस्त वृतान्त राजा के सामने सुना दिया । राजा ने सोचा यह इतना नालायक नहीं है ।

इसके बाद तीसरा मित्र बुलवाया गया । राजा के सिपाहियों ने जाकर पूछा क्या यहाँ राजकुमार हैं ? तब दरवाजे पर तैनात सिपाहियों ने बंदूक तानकर कहा-हाँ, है । क्या उन्हे ले जाने के लिए आये हो ?

देखादेखी हिजड़े, बाँध लई तलवार ।
सुतन में मुतन लगे, जब चलन लगी तलवार ॥

रजाकार लोग कितनी बड़ी-बड़ी बातें बनाते थे ? उनके भाषणों और लेखों से ऐसा लगता था कि मानों वे बड़ी भारी ताकत के धनी हैं । मगर जब भारत की फौजों ने हैदराबाद मे प्रवेश किया तो बढ़-बढ़ कर बातें बनाने वालों में से एक भी तो सामने नहीं आया ।

जुहारु मित्र के सिपाहियों को सस्त्रास्त्र से सुसज्जित देख कर राजा के सिपाही भाग आये उन्होंने राजा के पास आकर कहा-अन्नदाता ! वहाँ तो सिपाही मरने मारने को खड़े हैं ।

यह सुनकर राजा ने आदेश दिया-अच्छा, तोपखाना ले जाओ और हवेली को उड़ा दो ।

मगर राजा ने दीवान के कानों में चुपके से कह दिया हवेली उड़ा देने की धमकी देना, मगर उड़ाना मत।

खट-खट करता हुआ तोपखाना आ पहुँचा। राजकुमार ने अपने मित्र से कहा--बन्धु! अब हठ करना व्यर्थ है। तुम मुझे सेना को सौंप दो। मेरा जो भवितव्य है सो हो जायगा। मेरे पीछे तुम क्यों बर्बाद होते हो ?

आखिर जुहारु मित्र हवेली के बाहर आया। उसने दीवान से कहा-दीवान साहब! आपके पास शक्ति है, मगर शक्ति अत्याचार करने के लिए नहीं, अत्याचार का प्रतीकार करने के लिए होनी चाहिए। राजकुमार को मैंने आश्रय दिया है, परन्तु राजकुमार निर्दोष है। राजकुमार के विरुद्ध कोई भी अभियोग नहीं लगाया गया है और आश्चर्य यह है कि उन्हें प्राणदंड का हुक्म दे दिया गया है। यह अत्याचार की चरम सीमा है। अगर राजकुमार आपकी निगाह में अपराधी हैं तो क्यों नही उन पर अभियोग लगाया जाता ? क्यों नही प्रजा के सामने उस पर विचार किया जाता ? अगर वास्तव में वे दोषी साबित हो तो उन्हे और उन्हें आश्रय देने के कारण मुझे खुशी से शूली पर चढ़ा दीजिए। मगर अपने प्राण रहते किसी निर्दोष की हत्या नहीं देख सकता। दीवान साहब! याद रखिए कि अगर आपके तोपखाने में ताकत है तो सत्य में उससे भी बड़ी जबर्दस्त ताकत है। आप हवेली उड़ा देने के लिए आये है, मगर यदि सत्य में शक्ति है तो हवेली की एक ईंट भी नहीं उड़ सकती।

जुहारु मित्र के वक्तव्य का आशय राजाजी के पास पहुंचाया गया। राजा ने फौज और तोपखाने को वापिस लौट

आने का हुक्म दे दिया। उसने जुहारु मित्र और राजकुमार को भी अभय दान देने की घोषणा करके अपने पास बुलाया। राजा का उद्देश्य पूरा हो चुका था। राजकुमार के मित्रों की कसौटी हो चुकी थी।

साँच के आगे तदबीर, झूठी चल नहीं सकती।
मिला देखो साँच में झूठ, वो हर्गिज मिल नहीं सकती॥

सत्य की प्रचण्ड शक्ति के सामने झूठ कितनी देर तक खड़ा रह सकता है ?

राजकुमार अपने मित्र के साथ घोड़े पर सवार होकर और पचास शस्त्रधारी सिपाहियों के साथ दरबार में पहुँचा। राजकुमार को देखते ही राजा सामने दौड़ा आया। राजकुमार को गले लगाया और अपने पास बिठलाया।

सारा वातावरण पलट गया। राजा, राजकुमार, दीवान और दरबारियों की आँखों मे आँसू आ गये। राजा ने कहा—मेरे प्यारे पुत्र! तू ही तो मेरे जीवन का आधार और भविष्य का सहारा है। तुझे शूली पर चढ़ा दूँगा तो राज्य किसको दूँगा? तुझे कल और आज जितना कष्ट हुआ है, उससे अठारहे गुना कष्ट मुझे हुआ है। शूली पर चढ़ाने योग्य अगर कोई है तो यह तेरा कृतघ्न आठ पहरिया मित्र है, जिसने तेरे साथ विश्वासघात किया है। इस घटना का परिणाम बड़ा सुखद है। अगर तुम्हारे मित्रों की परीक्षा न की गई होती तो तुम भ्रम मे ही पड़े रहते और ऐसे विश्वासघाती पर भरोसा करके खतरा उठाते!

भाइयो ! तीन मित्रों की यह कथा केवल मनोरंजन के लिए नहीं है। इसमें गंभीर भावार्थ छिपा हुआ है। जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते हैं:—

प्रिये ! सुनो ! आठ पहरिया मित्र के समान यह शरीर है। इसे आठों पहर दीन-रात तुम अपने साथ लिये फिरती हो। कभी क्षण भर के लिए इसका त्याग नहीं करती। हमेशा इसकी चिन्ता फिक्र सार संभाल की जाती है। प्रतिदिन स्नान कराया जाता है, भोजन कराया जाता है। सुशोभित किया जाता है, सुन्दर वस्त्रों से और आभुषणों से विभूषित किया जाता है, मगर संकट पड़ने पर यह साथ नहीं देता। जब यमरुपी राजा कुपित होता है तो सबसे पहले यह शरीर ही जवाब दे देता है !

चार पहरिया मित्र के समान कुटुम्ब-परिवार के लोग हैं। यह लोग वक्त पड़ने पर सहानुभूति प्रकट करते हैं, मृत्यु के सन्निकट आने पर दुःख प्रकट करते हैं, बचाने के लिए पैसा भी खर्च करने को उद्यत हो जाते हैं, मगर मौत से बचाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। मर जाने के बाद थोड़ी दूर तक श्मशान तक पहुंचा आते हैं और रोते रोते वापिस लौट आते हैं।

तीसरे प्रकार के मित्र गुरु महाराज हैं, जो कभी-कभी आते हैं और मिल जाते हैं। जब मृत्यु समीप आती है तो कहते हैं—महाराज को लाओ। महाराज पहुँच कर उससे पूछते हैं-भाई ! तुमने सामयिक तो की है ? दान तो दिया है ? दया पाली है ? तपस्या की है ? अगर यह सब किया है तो निश्चिन्त रहो। डरने की आवश्यकता नहीं है अगर तुम्हारा जीवन सत्यमय रहा है

तो तुम्हारी किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। अगर तुम्हें धर्म प्रिय रहा है तो रोने की कोई बात नहीं है। पापी रोते हैं, धर्मी को रोने की क्या आवश्यकता है?

जिसने अपने जीवन में धर्म का आचरण किया है, जिसका जीवन नीतिमय व्यतीत हुआ है, जिसने नाना प्रकार के व्रतों, नियमों और शीलों का आचरण किया है, वह मृत्यु के सन्निकट आने पर व्याकुल नहीं होता। शरीर के छूटने का उसे भय नहीं होता वह अपने जीवन मे आत्मा और शरीर की भिन्नता की भावना करता रहा है। शरीर को भिन्न समझता रहा है। अतएव जब शरीर आत्मा से जुदा होने लगता है तो वह किसी प्रकार का खेद नहीं करता, क्योंकि शरीर के प्रति उसकी ममता नहीं होती। वल्कि ज्ञानी पुरुष तो मृत्यु को अपना मित्र ही मानते हैं। उनकी विचारधारा दूसरे ही प्रकार की होती है। वे विचार करते हैं—अगर मैं जीवित रहता तो किये धर्म का फल पूरी तरह भोग नहीं सकता था। मैंने धर्म का आचरण करके जो पुण्य-धर्म उपार्जन किया है, उसका फल मृत्यु रूपी मित्र की सहायता से ही प्राप्त हो सकता है उस सत्फल को प्राप्त कराने के लिए मृत्यु मित्र सहायता कर रहा है, अतएव मुझे दुखी नहीं होना चाहिए, वल्कि प्रसन्न ही होना चाहिए।

जब मृत्यु समीप आती है तो धर्मप्रिय व्यक्ति सोचता है—मेरे उद्धार का यह अवसर आया है। मैं शरीर रूप कारागार में कैद हूँ। वहुत समय बीत जाने पर भी मैं इस कारागार से मुक्त नहीं हो पाया था। अब पुण्य के योग से मृत्यु रूपी राजा ने मुझ पर अनुग्रह किया है। वह इस कैदखाने से मुझे छुड़ा रहा

है। ऐसे समय में मुझे दुखित क्यों होना चाहिये ? यह तो प्रमोद का अवसर है।

इस प्रकार की शुभ भावनाओं के साथ धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने शरीर का त्याग करते हैं। उनका परलोक सुधरता है। वे स्वर्ग और मोक्ष के अधिकारी बनते हैं।

जम्बूकुमार कहते हैं—हे वल्लभे! तुमने दीर्घ दृष्टि से विचार नहीं किया। तुम्हारा दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण है और वह भी मोह के कारण धुंधला बना हुआ है। उसे विशाल बनाओ और निर्मल बनाने की भी कोशिश करो। अपने जीवन के महान् लक्ष्य पर ध्यान दो। इस उत्तम जीवन के द्वारा किस लक्ष्य की पूर्ति करना चाहिए ? इस प्रश्न पर विचार करो। तभी तुम सही मार्ग पर आ सकोगी। मैं तुम्हारा और तुम मेरा कल्याण नहीं कर सकती। प्रत्येक को अपना कल्याण आप ही करना पड़ता है और भोगों से विरक्त हुए विना, सांसारिक तृष्णा का त्याग किये विना कल्याण हो नहीं सकता। यह जान कर मैंने भोग-तृष्णा का परित्याग किया है। तुम भी ऐसा ही करो। विश्वास करो कि इस प्रकार का शुभ अवसर बार-बार नहीं मिला करता। यह जान कर तुम भी धर्म का सहारा लो।

मैं श्री सुधर्मास्वामी के चरणों का आश्रय लूँगा। तुम भी अपना हित चाहो तो प्रातःकाल होते ही साध्वी बन जाओ और अक्षय सुख की साधना करलो। "जिसे भोग भुजंग के समान भयंकर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह भोगों में कैसे अनुरक्त हो सकता है"।

जम्बूकुमार का कथन सुन कर सातवीं स्त्री भी चुप हो गई। जब आत्मा में सच्ची जागृति उत्पन्न होती है तो उसके मार्ग में कोई बाधक नहीं हो सकता। वह आत्मा जिस मार्ग पर चलती है, उसमें आनन्द ही आनन्द होता है।

२७-६-४८]





कर्मपुरुष, भोगपुरुष, धर्मपुरुष

()—()—()—()

॥ स्तुति ॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धि बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाए जाएँ ?

प्रभो ! आप देवों द्वारा अर्चित हैं। देव आपके अनन्त बोध कीपूजा करते हैं। आपने सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर

लिया है। अथवा यह कहें कि आत्मा में जो अनन्तज्ञान शक्ति रूप में विद्यमान था, उसे आपने व्यक्त कर लिया है। आप बोधमय हो गये हैं। अतएव आप बुद्ध हैं, सबुद्ध हैं, बुद्ध भगवान् हैं।

प्रभो ! अगर हम आपको शंकर कहें तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि आप तीनों लोकों के शँकर हैं-प्राणी मात्र को धर्म का उपदेश देकर सुखी बनाने वाले हैं। शंकर' शब्द का अर्थ है—सुखकारी। 'शं' अर्थात् सुख को 'कर' अर्थात् करने वाले।

प्रभो ! आप धाता या विधाता भी हैं। धाता या विधाता का अर्थ है। ब्रह्मा। भगवान् ऋषभदेवजी ने कर्मभूमि की आदि में समस्त लौकिक व्यवस्थाओं की नींव डाली थी और प्रजा का सामाजिक जीवन व्यवस्थित एवं नीतिमय बनाया था। तत्पश्चात् संयम धारण करके, उग्र तपस्या करके, केवल ज्ञान प्राप्त करके, जगत् में, इस अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम धर्मव्यवस्था की स्थापन की थी। इस प्रकार लौकिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं का सूत्रपात करने के कारण भगवान् ऋषभदेवजी ही सच्चे विधाता हैं। वही इस लोक में वास्तविक ब्रह्मा हैं।

प्रभो ! आप अपने असाधारण और अनुपम गुणों के कारण पुरुषोत्तम भी है। पुरुषोत्तम विष्णु को कहते हैं; परन्तु पुरुषोत्तम शब्द का अर्थ है—पुरुषों में उत्तम। जिन प्रभु ने मानव जाति को नीत्ति की मर्यादा सिखलाई और फिर धर्म की मर्यादा बतलाई, जो अनन्त बोध प्राप्त कर चुके हैं, जगत् के जीवों के सुखकारी है, वे पुरुषोत्तम न होगें तो फिर कौन पुरुषोत्तम होगा ?

आचार्य महाराज ने इस पद्य में भगवान् ऋषभदेवजी की उदार भाव से अनेक नामों के द्वारा स्तुति की है। यह स्तुति सचमुच बड़ी ही हृदयग्राही है और बोध जनक भी है।

परमात्मा के अनेक नाम हैं। परमात्मा अनन्त प्रतीत गुणों के आधार हैं, अतएव उनके नाम भी अनन्त होते हैं। कोई किसी भी नाम से भगवान् की स्तुति करे, अगर उसके चित्त में परमात्मा का स्वरूप सही अंकित है, तो उसकी स्तुति परमात्मा तक पहुँचती ही है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा—

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया
वीतदोष कलुषः स चेद्भवान्, एक एव भगवन् ! नमोऽस्तुते

किसी सम्प्रदाय या परम्परा में, जिस किसी रूप में, किसी भी नाम से आप कहे जाते हों, आप समस्त दोषों की कलुषता अगर अतित है तो सर्वत्र एक ही हैं। ऐसे हे एक रूप भगवन् ! आपको हमारा नमस्कार हैं।

तातपर्य यह है कि परमात्मा के नाम को लेकर किसी भी प्रकार का विवाद नहीं होना चाहिए। बुद्धिमान पुरुष नाम के लिए विवाद नहीं करते। नाम तो पहचान के लिए है। असली वस्तु स्वरूप है। नाम अनन्त होने पर भी अगर उन सब नामों से एक ही स्वरुप का बोध होता हो तो झगड़े का क्या कारण है ? जब परमात्मा में अनन्त गुण विद्यमान है और एक नाम एक ही गुण का बोधक हो सकता है तो फिर परमात्मा के नाम भी अनन्त ही होने चाहिए। ऐसी स्थिति में परमात्मा को चाहे बुद्ध कहो,

चाहे शंकर कहो, चाहे विधाता या पुरुषोत्तम कहो, एक ही बात है। यही बात प्रसिद्ध तार्किक श्री अकलंक देव ने कही है:—

योविश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृष्टवा,
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीमम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम्,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥

आचार्य ने इस स्तुति में सर्वप्रथम परमात्मा का स्वरूप स्पष्ठ कर दिया है। वह इस प्रकार है:—जिन्होंने जगत् के समस्त ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थों को जान लिया है अर्थात् जो सर्वज्ञ है, जो सर्वदर्शी हैं, जिनके वचनों में पूर्वापर विरोध नहीं है, जिनके वचन अनुपम और निर्दोष है अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाण से बाधित नहीं हो सकते, जिन्होंने काम, क्रोध, मद, मोह, अज्ञान आदि समस्त दोषों को नष्ट कर दिया है अर्थात् जो वीतराग दशा को प्राप्त कर चुके हैं, मतलब यह है कि जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, धर्मोपदेशक और वीतराग हैं, वही सच्चे पर—मात्मपद के अधिकारी हैं। ऐसे परमात्मा को समस्त सतपुरुष वन्दनीय मानते हैं। उनका नाम चाहे बुद्ध हो, वर्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो या शिव हो! इन नामों की भिन्नता के कारण परमात्मा में कोई भेद नहीं होता।

संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) कम्मपुरिसा (२) भोगपुरिसा और (३) धम्मपुरिसा। अर्थात् कर्मपुरुष भोगपुरुष और धर्मपुरुष। श्रीठाणांगसूत्र के तीसरे स्थानक में यह कथन आया है।

जो पुरुष अपने ही पुरुषार्थ पराक्रम के बल पर राज्य स्थापित करते हैं, वे कर्मपुरुष कहलाते हैं। बलदेव और वासुदेव ऐसे ही पुरुष होते हैं। वे अपने प्रबल पराक्रम के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करते और फैलाते हैं। वे ३६० संग्राम करते हैं और भरतक्षेत्र के तीन खण्डों पर राज्य करते हैं। वे महापुरुष कैसे होते हैं, इस बात का प्रश्नव्याकरणसूत्र में खूब विस्तार के साथ वर्णन किया गया है उनके शरीर पर १०८ शुभ लक्षण होते हैं उनमें बीस लाख अष्टापद का बल होता है। उनके बल का इसी से अनुमान लगा लीजिए कि अगर करोड़ मन का भारी पत्थर हो तो भी उसे वे उलट सकते हैं। उनकी शक्ति अत्यन्त प्रचण्ड होती है और उनके सामने कोई विरोधी टिक नहीं सकता।

वासुदेव बलदेव के पास एक रथ होता है। वह भी इतना जबर्दस्त होता है कि अगर शत्रु की सेना खड़ी हो और रथ की खोली उतार दी जाय तो उसकी चमचमाहट से ही सेना भाग जाती है। शास्त्र में शीलवती को ३२ उपमाएँ दी जाती हैं। प्रश्नव्याकरणसूत्र में कहा है कि जैसे सबसे बड़ा और प्रभावशाली रथ कृष्ण महाराज का संग्रामक रथ होता है, उसी प्रकार सब धर्मों में शीलधर्म बड़ा और प्रधान है। शीलधर्म का मतलब है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य धर्म कृष्ण वासुदेव के संग्रामक रथ की भाँति सब में श्रेष्ठ है। इस प्रकार शीलधर्म को वासुदेव के रथ की उपमा दी गई है।

वासुदेव के शरीर का सौन्दर्य भी असाधारण होता है। मनुष्य की छाती पर स्तनों का जैसा आकार होता है, वैसा वासुदेव के नहीं होता। स्तन चिन्ह के स्थान पर उनके साथिए

(स्वस्तिक) का चिन्ह होता है। उनका शरीर बड़ा ही सुन्दर, सुडौल, रूपवान्, प्रभावशाली और मोहक होता है! उसकी छटा अनोखी होती है।

प्रत्येक अवसर्पिणी काल में और प्रत्येक उत्सर्पिणीकाल में ६३ श्लाघ्य पुरुष होते हैं। इन्हें शलाकापुरुष भी कहते हैं। ये सब भव्य होते हैं। एक भी अभव्य नहीं होता है। २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव ६ वासुदेव और ६ प्रतिवासुदेव, ये सब ६३ श्लाघ्य पुरुष हैं। राम और लक्ष्मण में लक्ष्मण वासुदेव थे और रामचन्द्र बलदेव थे। बलदेव, वासुदेव के बड़े भाई हुआ करते हैं। वासुदेव के विरोधी और वासुदेव के समान ही शक्ति के स्वामी प्रति वासुदेव होते हैं। जैसे कृष्ण वासुदेव के जमाने में जरासंध और लक्ष्मण के समय रावण प्रतिवासुदेव हुए। प्रतिवासुदेव भी तीन खंड पृथ्वी पर शासन करते हैं, बड़े तेजस्वी होते हैं और मर्यादा में रहते हैं। वे वासुदेव के विरोधी होते हैं। जैसे नाटक में नायक का विरोधी प्रतिनायक कहलाता है, उसी प्रकार वासुदेव के विरोधी प्रतिवासुदेव कहलाते हैं।

संयोग कुछ ऐसा है कि वासुदेव के हाथ से ही प्रतिवासुदेव की मृत्यु होती है। यह निश्चित नियम है। वासुदेव बड़े जबर्दस्त होते हैं। दस लाख फौज एक तरफ खड़ी हो और दूसरी तरफ एक अकेले वासुदेव हों तो वे अकेले ही सारी फौज को चिड़िया की तरह उड़ा देते हैं। वासुदेव को कभी-बीमारी नहीं होती। उनके शरीर का संहनन वज्र-ऋषभनाराच संहनन होता है। चाहे कितनी ही वजन वाली गाड़ी उनके हाथ के ऊपर होकर चली जाय, हाथ की हड्डी नहीं टूट सकती। उनका संस्थान (आकर) समचौरस

होता है। समचौरस या समचतुरस्र संस्थान सर्वोत्तम संस्थान माना जाता है। पद्मासन लगा कर बैठ जाइए। अगर नापने पर एक घुटने से लेकर दूसरे घुटने तक, ऊपर से लगा कर नीचे तक तथा घुटने से लेकर जंघाओं के मूल तक शरीर का नाप बराबर हो तो समझ लीजिए कि आपका संस्थान समचौरस है।

वासुदेव को जो समृद्धि, जो प्रभाव, जो तेज और महत्त्व प्राप्त होता है, उसका प्रधान कारण है तप। उन्होंने पूर्व जन्म में तपस्या की होती है। उसी तपस्या का तेज वासुदेव के भव में अपनी महिमा प्रकाशित करता है।

वासुदेव के समक्ष जो नम्र होकर रहता है, उसे ये प्राणों के समान प्यारा समझते हैं। इसके विपरीत अगर कोई टेढ़ा होकर रहता है तो उसकी खैर न समझिए। उसे ये मच्छर की तरह उड़ा देते हैं। उसे तो फिर नयी माता का ही दूध पीना पड़ता है। इस प्रकार वासुदेव कर्मपुरुष कहलाते है जो पुरुषार्थ के बल पर अपने राज्य को कायम किया करते हैं।

दूसरे प्रकार के पुरुषों को भोग पुरुष कहा है। भोग पुरुष चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ति। छह खंड पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य करते हैं। चौदह रत्नों और नौ निधियों के स्वामी होते हैं। चक्रवर्ती के रत्न बड़े ही प्रभावशाली और दिव्य शक्ति से अधिष्ठित होते हैं। उनमें से एक दंड रत्न ही ऐसा होता है कि उसे फेर दें तो चार कोस की जमीन, पहाड़ वगैरह सब समतल हो जाते हैं।

चक्रवर्ती के प्रभाव की बात ही निराली है। प्रातःकाल अनाज बोया, दूसरे पहर में सींचा, तीसरे पहर में पक कर तैयार

हो गया और काट लिया गया तथा चौथे पहर में रांध कर खा लिया ।

भाइयो ! इस शास्त्रीय वर्णन से पता चलता है कि भारत-वर्ष में, प्राचीन समय में, कृषिविज्ञान आश्चर्यजनक सीमा तक पहुंच चुका था। सुबह आम लगाया और शाम को खा लिया ! यह क्या साधारण बात है ? किन्तु आज देश का इतना अधः-पतन हो गया है और लोगों की बुद्धि इतनी संकीर्ण हो गई है कि वे इस विज्ञान की सचाई को स्वीकार भी नहीं कर सकते । प्राचीन काल की ऐसी तमाम महत्ताओं को कपोलकल्पित बात या गप्प कह कर उड़ा देना आज का आम भारतीय स्वभाव बन गया है। ऐसा करने में बुद्धिमत्ता समझी जाती है । लोग समझते हैं कि हम बड़े विवेकवान् हैं जो ऐसी २ बातों पर विश्वास नहीं करते ! किन्तु वेही बातें जब आधुनिक विज्ञान के द्वारा समर्पित हो जाती है तब उन्हें मस्तक झुका कर स्वीकार करना पड़ता है । उचित तो यह है कि पुरातन भारतीय विज्ञान के बिखरे हुए इन वर्णनों को एकत्र किया जाय, इन पर श्रद्धा रक्खी जाय और प्रयोगों के द्वारा इनकी सचाई की खोज की जाय ! ऐसा करने से भारत का गौरव तो बढ़ेगा ही, मानवजाती का महान् कल्याण भी होगा ।

खास तौर से इस जमाने में, जब कि इस देश में अन्न की बहुत कमी है, अन्नसंकट विकराल रूप धारण किये समस्त सुन्दर और हितकारी योजनाओं को चुनौती दे रहा है, इस विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है । यदि भारत अपने भूले हुए विज्ञान को फिर किसी प्रकार प्राप्त कर सके तो लाखों आदमियों

के प्राणों की रक्षा हो सकती है। जगत् का महान् उपकार हो सकता है। मगर भारत के लोगों में आज इतना पुरुषार्थ और इतनी श्रद्धा कहां है ? वे तो झट कह देते हैं—अजी, ये तो मनगढंत बातें हैं। ऐसा कहने में कोई दिक्कत नहीं होती, पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता ! सस्ते में ही पिण्ड छूट जाता है। मगर प्रयोग और पुरुषार्थ करके उसकी सच्चाई सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है ! इस झंझट में कौन पड़े। खेद है कि भारत के लोगों में अपनी संस्कृति, साहित्य, विज्ञान और कला के प्रति घोर उपेक्षावृत्ति उत्पन्न हो गई है और इसी कारण बहुत-सी चमत्कार उत्पन्न करने वाली महत्त्वपूर्ण विद्याओं का लोप हो गया है। बची-खुची विद्या लुप्त हो रही हैं। यह देशवासियों के लिये गौरव की बात नहीं है। देशभक्ति का सच्चा अर्थ यही है कि देश की संस्कृति को, साहित्य को, विज्ञान और कला को उन्नत और विकसित किया जाय !

हाँ, तो चक्रवर्त्ती पूर्वोपार्जित महान् पुण्य लेकर आते हैं। इस जगत् में पुण्यशाली जीवों के लिए कोई भी सांसारिक वस्तु दुर्लभ नहीं है। कहा है—

पादे पादे निधानानि, योजने रसकुम्पिका।
भाग्यहीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा ॥

भाइयो ! इस भूमि का नाम "वसुन्धरा" है। "वसु" का अर्थ है धन। यह भूमि अपने उदर में विपुल और असीम धन को धारण किये हुए है। नाना प्रकार के रत्न इसी भूमि के गर्भ में छिपे हुए हैं। सोना और चांदी कहाँ से आते हैं ? हीरा और पन्ना आदि

रत्न मनुष्य ने कहाँ से पाये हैं ? ये सब इसी भूमि की वरद देन है। सभी कुछ इस भूमि से प्राप्त होता है। इस भूमि में पग-पग पर खजाने हैं और योजन-योजन पर रस की कुंपिकाएँ हैं। किन्तु जिन्होंने पुण्य का उपार्जन नहीं किया है, वे इन चीजों को नहीं पा सकते। पुण्यवानों को ही उनकी प्राप्ति होती है। पुण्यवान् के लिए कोयला भी हीरा बन जाता है और पुण्यहीन पुरुष यदि हीरे को हाथ लगाये तो कोयला बन जाता है।

मगर ये सब बातें उन्हीं की समझ में आती हैं, जिनके हृदय में विवेक है। विवेकविकल व्यक्ति ऐसी बातें सुनकर और उल्लू बन जाते हैं। उसकी संकीर्ण-सी खोपड़ी में ये बड़ी-बड़ी बातें समा ही नहीं सकती हैं।

एक पुण्यशील पुरुष थे। उनके यहाँ घी की आढ़त का व्यापार होता था। देहाती लोग घी लेकर उनकी दुकान पर बेचने के लिए आते थे। घी लाने वालों में एक स्त्री भी थी। वह घी लेकर आ रही थी। पानी पीते समय, किसी प्रकार उसकी ईंडाणी गिर गई। ईंडाणी के बिना मटका टिकना कठिन था। अतएव उसने एक बेल खींचली और उसकी ईंडाणी बनाकर सिर पर रख ली। उस पर मटका रख कर शहर में ले गई। आढ़तिया की दुकान पर ले जाकर उसने कहा-घी तोल लो। दुकानदार घी तोल कर खाली बरतन लाया और उस बर्त्तन को उसने उसी ईंडाणी पर रख दिया। ईंडाणी पर रखते ही घी का पात्र फिर पहले की तरह घी से भर गया। व्यापारी दूसरों का घी तोलने में लग गया। स्त्री ने अपना बर्त्तन देखा तो वह घी से भरा था। उसने व्यापारी से पूछा-क्या आपने हमारा घी तोला नहीं है ?

व्यापारी ने कहा—तोल तो लिया है। मगर रह गया हो तो भी पता नहीं। क्या बरतन खाली नहीं है?

स्त्री ने हँसते हुए कहा—अच्छे भुलक्कड़ हो। घी ज्यों का त्यों पड़ा है। और कहते हो तोल लिया है।

व्यापारी ने देखा और सोचा। मैं शायद भूल गया हूँ! उसने दुबारा घी तोल लिया, बरतन खाली कर दिया और खाली बरतन लाकर ईडाणी पर रख दिया। ईडाणी पर रखते ही बरतन जब फिर घी से भर गया तो व्यापारी हैरत में आ गया। वह समझ गया कि यह सब ईडाणी का ही प्रताप है। इस बार व्यापारी ने वह ईडाणी रख ली और अकेला घड़ा उस स्त्री को सौंप दिया। स्त्री ने अपनी ईडाणी मांगी तो व्यापारी ने टालमटूल कर दी।

ईडाणी में यह गुण था कि जिस चीज़ से भरा बरतन खाली करके उस पर रख दिया जाय, दुबारा ज्यों का त्यों भर जाता था। उस ईडाणी की करामात से वह व्यापारी असीम धन का स्वामी हो गया।

भाइयो! मतलब यह है कि योजन-योजन पर ऐसी जड़ियां मौजूद हैं। किन्तु जिसका भाग्य प्रबल नहीं है उसे उनका पता नहीं चलता।

संवत् १९२५-३० की बात है। दीपचन्दजी नामक एक साधु थे। दांतड़िया गांव के रहने वाले थे। जब वे साधु नहीं हुए थे, तब एक जड़ी की उन्होंने बहुत तलाश की किन्तु मिली

नहीं। थोड़े दिनों बाद उन्हें वैराग्य हो गया और वे साधु हो गये। एक दिन वे विहार करते हुए जा रहे थे। एक बाड़े में वही जड़ी उगी हुई थी। साधुजी की दृष्टि उस पर पड़ गई। मगर साधुजी के किस काम की थी अब। उसे देख कर उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—हट ! हट।

अचानक मुनिराज के मुँह से यह शब्द सुन कर श्रावक, जो उनके साथ चल रहे थे, आश्चर्य में आ गये। उन्होंने सोचा – बात क्या हुई ? क्या हम में से किसी ने कोई गलती कर दी है ? जब कोई बात समझ में नहीं आई तो उन्होंने मुनिराज से ही पूछना उचित समझा। मगर मुनिराज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उन्होंने सोचा—अगर मैं बतला दूँगा तो ये लोग इस वनस्पति को उखाड़ कर ले जाएंगे।

यह मालवा प्रान्त की बात है। हम उस गाँव में गए थे। वहाँ का रास्ता हमें मालूम नहीं था तो एक भील ने रास्ता बतलाया। उसीने पास के छायण गाँव में जाकर समाचार दे दिया कि तुम्हारे मुँहपत्ती वाले साधु आये हैं। छायण गाँव के जिस सेठ को भील ने यह समाचार दिया, उस भील पर सेठ का पाँच रुपया कर्ज था। सेठ ने इस समाचार को सुनाने के उपलक्ष में पाँच रुपया माफ कर दिये। कहा—जा, तुझ से पाँच रुपया नहीं लूँगा।

पाँच रुपये के पुरस्कार की बात सुनकर आप सोचते होंगे- यह कौन-सी बड़ी बात है। मगर आप भूलते हैं। आज अपनी भावना के गज से दूसरे की भावना को मापने तो चलते हैं, मगर परिस्थितियों की विषमता को भुला देते हैं। इस कारण आपका

माप गलत साबित हो जाता है। धनवान् लोग बड़ी-बड़ी राशियों पर ही नजर दौड़ाते हैं। चंदे का प्रश्न आयेगा तो लखपति के सौ रुपया दान की मुक्त कंठ से सराहना की जायगी; मगर गरीब के एक रुपया की कोई कीमत नहीं आंकी जायगी ! भले ही उसने अपनी शक्ति से ज्यादा ही क्यों न दिया हो।

पाँच रुपये की छूट उस गरीब भील के लिए बहुत बड़ी चीज थी। उससे उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। क्योंकि करीब पचीस वर्ष से वे पाँच रुपया उसके खाते बाकी के बाकी ही निकलते आते थे। अब जाकर खाता पूरा हुआ ऐसी स्थिति में उसकी प्रसन्नता को वही समझ सकता है।

वह दीपचंदजी साधु करामाती थे। एक बार घूमते-घूमते वे शत्रुंजय पहाड़ को देखने गये। यों ही मर्जी हो गई कि पास में आये हैं तो देखलें !

भक्त दो प्रकार के होते हैं। धर्मी और धर्मान्ध। जो भक्त धर्म के तत्त्व को भली भाँति समझकर उसका आचरण करते हैं वे धर्मी भक्त कहलाते हैं। धर्मान्ध भक्त धर्म के मर्म को नहीं समझते। वे धर्म के ऊपरी कलेवर से चिपटे रहते हैं और इतर धर्म के अनुयायियों के प्रति ईर्षा, द्वेष करना उनका मुख्य काम होता है। वे न तो दूसरों के धर्मस्थान में जाना पसंद करते हैं और न दूसरों का अपने धर्मस्थान में आना ही अच्छा समझते हैं। धर्म के नाम पर दुराग्रह, खींचतान और क्लेश करना उन्हें रुचिकर होता है। इस प्रकार के धर्मान्ध भक्तों का कभी कल्याण नहीं हो सकता। वे धर्म के नाम पर अंधे होते हैं। उनके लिए

धर्म भी मानों एक प्रकार की मदिरा है, जिसके सेवन से वे पागल बने रहते हैं। धर्म के नाम पर वे बड़े से बड़ा पाप करते संकोच नहीं करते। तलवार लेकर मनुष्य को कत्ल कर देना भी उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। धर्म के अंधे लोग ही तो हैं जो हजारों बकरों का बलिदान कर देते हैं और पाडों के प्राण लेने में नहीं झिझकते! जो धर्मान्ध न होगा, जिसमें धर्म संबंधी विवेक होगा, वह ऐसे क्रूरतापूर्ण कार्य किस प्रकार कर सकता है?

जैन धर्म का कथन है कि धर्मात्मा बनो, धर्मान्ध न बनो! धर्मान्ध तो किसी हद तक अधर्मी से भी ज्यादा खतरनाक होता है। अधर्मी धर्म के नाम पर हिंसा नहीं करता, मगर धर्मान्ध कर डालता है।

जब मुनि दीपचन्दजी शत्रुञ्जय पर्वत पर चढ़ने लगे तो उन्हें कुछ धर्मान्ध भक्त मिले। उन्होंने मुनिजी से से कहा—आप पहाड़ पर नहीं जा सकते!

मुनिराज उन लोगों के मना करने पर रुक गये। नीचे ध्यान धर कर खड़े रहे। जिन्होंने मुनि को पहाड़ पर जाने से रोका था, वे लोग जब पहाड़ पर गये तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। वे जिधर नजर फेरते उधर वही साधु उन्हें दिखलाई पड़ते थे; मानो साधुजी ने अपने अनेक रूप बना लिए थे। यह देख कर उन लोगों के नेत्र खुले। वे चकित और आत्मविस्मृत से होकर नीचे उतरे। मुनि के पास जाकर उन्होंने कहा—महाराज, पधारो; आप पर्वत को देख लो। अब हम आपको नहीं रोकते।

मुनिराज ने संक्षिप्त उत्तर दिया—अब जाने की जरूरत नहीं रह गई है। हम देख आये हैं।

इन्हीं मुनिराज ने एक बार खाचरौद में चौमासा किया। चौमासे के दरम्यान एक श्रावक से कहा—पँचरंगी कर।

श्रावक बोला-महाराज ! जिसके माथे कर्ज हो उसे तप करना नहीं सुहाता। कर्ज उतर जायगा तब पँचरंगी करूँगा।

रात्रि हुई। श्रावक बैठा-बैठा सोच रहा था कि किसी प्रकार इतना ऋण चुक जाय तो अच्छा है। उसी समय अकस्मात एक आदमी उसके पास आया। उसने कहा—चिन्ता मत करो। जितना रुपया चाहिए, ले लो।

उस श्रावक को रुपया मिल गया। उसने दूसरे ही दिन समस्त ऋण चुका दिया और फिर पँचरंगी तपस्या की।

वह मुनि जहाँ ठहरे थे, वहाँ किसी को भी ठहरने की अनुमति नहीं दी जाती थी। किन्तु एक मूर्ख और जिद्दी मनुष्य वहीं रह गया। रात्रि में ऐसा प्रकाश हुआ कि उसे देखकर वह भयभीत हो गया और उसका मल बाहर निकल पड़ा।

मुनिराज दीपचंदजी के रिश्तेदार चाणो में अब भी मौजूद हैं।

भाइयो ! असली ताकत तप और संयम में है। तप और संयम के प्रताप से देवताओं का आना क्या बड़ी बात है ! इनके प्रभाव से तो केवलज्ञान भी प्रकट हो जाता है।

पूज्य श्रीलालजी महाराज किसी भाई को दर्शन देने गये जो उठ भी नहीं सकता था। मगर पूज्य श्री के पहुंचते ही वह उठ बैठा और वापिस लौटते समय उन्हें पहुँचाने आया।

पूज्य मन्नालालजी महाराज जब जम्मू गये थे, तब की बात है। एक भाई को कोढ़ था। उसके कुटुम्बी इलाज कराने के लिए उसे बाहर ले जा रहे थे। किसी ने उनसे कहा अरे, कहाँ भटकते फिरते हैं ! यहीं, इसी गाँव में तो बड़ी भारी औषध आई है ! उन्होंने जाना स्थगित कर दिया। पूज्य महाराज वहाँ विराजे और उसने आस्था रक्खी तो बिना औषध लिये ही उसकी बीमारी हट गई !

"आस्था शोक का अमोघ शस्त्र है।"

प्राचीन काल में बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी और संयम के धनी मुनिराज हो गये हैं। कहते हैं, बारह महीने तक जो मौन धारण कर लेता है और परमात्मा का स्वच्छ चित्त से स्मरण करता है, उसे वचनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, तब जो उम्र भर तप और संयम का पालन करते हैं, उन्हें वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? मगर संयमी साधु नहीं चाहते कि दुनिया में हमारी प्रशंसा हो। प्रथम तो प्रशंसा ही मुनियों के लिए एक प्रकार का उपसर्ग है और फिर जब प्रशंसा फैल जाय तो लोग आ-आकर इतना परेशान करने लगें कि साधु को प्रतिक्रमण करना भी कठिन हो जाय। यह विचार कर त्यागशील मुनिराज अपनी सिद्धियों को भी प्रकट नहीं करते हैं।

लोग चमत्कार को नमस्कार करते हैं। अगर उन्हें पता चल जाय कि फलां साधु में अमुक चमत्कार है तो उसे परेशान कर दें। मगर याद रक्खो कि भाग्यहीन का मनोरथ पूरा नहीं होता। तुम चाहते हो कि तुम्हारे घर में आकाश से मोहरें बरसने लगें।

मगर वह बरसें कैसे ? कभी पवित्र हृदय से दान दिया है ? परोपकार किया है ? कभी किसी को गुप्त सहायता दी है ? किया धरा कुछ नहीं और खाली हाथ चले आये हो । कहते हो-हमारे हवेली नहीं है ! हमारे पास धन नहीं है, यह नहीं है, वह नहीं है !

भाई ! पहले नहीं किया तो अब सही । जो कुछ बने वही करो । चार रोटियाँ खाते हो तो तीन ही खाओ । कुछ न बने तो प्रतिदिन समायिक ही किया करो । दो घड़ी ईश्वर को याद करो । तुम्हारे प्रयत्न से गरीबों को लाभ हो सकता हो तो दलाली अवश्य करो । केरियाँ खाना हैं तो आम बोना पड़ेगा । आम बोना न चाहोगे तो क्या पा लोगे ? करनी करना अच्छा नहीं लगता और चाहते हो कि फल उत्तम मिल जाय ! यह तो होगा नहीं भाई ! करनी किए बिना फल नहीं मिलेगा । कहा है—

पूर्व जन्म का किया मिला,
अब करो वही फिर पाओगे ।
जो गफलत के बीच रहे तो,
मित्र ! बहुत पछताओगे ॥

भाइयो ! आपने पूर्वजन्म में जो कुछ किया था, उसे आज भोग रहे हो । आज आपको सुख या दुख की जो भी सामग्री प्राप्त हुई है, वह किसी दूसरे की कृपा का फल नहीं है । वह तो आपके ही कृत्यों का फल है । और इस समय जो कर रहे हो उसका फल भविष्य में मिलने वाला है । जब कर्म उदय में आता है और प्रबलता के साथ उदय में आता है, तब आप

चाहे कुछ करें अथवा न करें, फल मिले विना नहीं रहता । देखो, एक आदमी शौच जा रहा था। वैठे २ उसे कुछ घुन सवार हुई। वह लकड़ी के टुकड़े से जमीन कुरेदने लगा । कुरेदते-कुरेदते, संयोग की वात है कि, उसे एक वरतन की कोर नजर आई । उसने अव मिहनत के साथ खोदना शुरु किया तो मोहरों से भरा हुआ एक चरु निकल आया । उसे बहुत प्रसन्नता हुई । सोचने लगा—वड़ा अच्छा रहा ! मगर मैं इसे अभी ले जाऊँगा तो कोई देख लेगा। सरकार इसे छिन लेगी या मैं चोर कहलाऊँगा। यह सोच कर उसने उस चरु को उसी गड्डे में रख दिया । ऊपर से मिट्टी डाल दी। घर आ गया।

शाम हुई, रात्रि हो गई। वह भोजन आदि से निवृत्त हो कर सोने की तैयारी करने लगा। मगर उसे नींद नहीं आई । इधर-उधर करवटें वदलने लगा । उसकी स्त्री ने पूछा—आज क्या वात है ? नींद क्यों नहीं आती ?

स्त्री जव यह प्रश्न कर रही थी, उसी समय उसके घर में चार चोर घुस आये। वे चुप्पी साध कर मौके की ताक में थे । चोर सोच रहे थे कि जव इन्हे नींद आएगी तव माल उठाकर ले चलेंगे।

स्त्री के प्रश्न के उत्तर में उस आदमी ने मोहरों का चरु मिलने का सम्पूर्ण वृतान्त उसे सुना दिया वृत्तांत सुन कर स्त्री ने कहा—मेरा तो घाघरा और ओढ़ना भी फट गया है। तुम चरु को उठा ही क्यों न ले आए ?

पुरुप—पुलिस पकड़ लेती तो लेने के देने पड़ जाते।

स्त्री—तो थोड़ी-सी मोहरें तो गाँठ में बांध लाते।

पुरुष मैं इस तरह लाना पसन्द नहीं करता। परमात्मा देगा तो छप्पर फाड़ कर ही देगा।

स्त्री—खैर, कल ले आना।

चोरों ने यह सारी बातें सुन लीं। वे उसके घर से निकल कर सीधे उसी जगह पहुँचे, जहाँ उस आदमी ने चरु बतलाया था। चोरों ने जो मिट्टी हटाई और चरु निकाला तो उसमें हजारों बिच्छू चांदनी में दिखाई दिये।

यह देख चोरों को बड़ा क्रोध आया। वे आपस में कहने लगे—वह आदमी बड़ा ही धूर्त और बदमाश है। उसने हम लोगों को मारने के लिए ही यह बात कही थी! सोचा होगा-हम लोग हाथ डालेंगे तो सैकड़ों बिच्छू एक साथ काट खाएँगे। ऐसे बदमाश की पूरी खबर लेनी चाहिए। आज चोरी करना छोड़ो और उसी को सबक सिखलाओ। सबक सिखलाने का अच्छा तरीका यही है कि यह चरु ले चल कर उसके ऊपर ही औंधा कर दिया जाय, जिससे कि बिच्छू गिरकर उसके डंक लगाएँ और वह मर जाय। उन्होंने यह सोच कर वह चरु उठा लिया। वे बिना पैसे के मजदूर बन कर चरु लाद कर चले। कहा भी है:-

चाहे जितनी तू तदबीर करे, तकदीर बिना नहीं पावेगा।
चलती नहीं हुज्जत वहाँ किसकी, चाहे जितना मगज लड़ावेगा।

याद रक्खो, कितना ही पुरुषार्थ क्यों न करो, तकदीर में नहीं होगा तो मिलने वाला नहीं है। इसके विपरीत चाहे कहीं

भी होओ, जो तुम्हारी तकदीर में लिखा है, वह तुम्हारा है। उसे कोई छीन नहीं सकता।

लिखितमपि ललाटे प्रोञ्झितुं कः समर्थः।

तुम्हारे पहले के बँधे हुए कर्म फल दिये बिना नहीं रह सकते। उन कर्मों का अनुभाग बंध जिस रूप में पड़ गया है, उसे भोगना ही पड़ेगा। वह मिट नहीं सकता, अन्यथा नहीं हो सकता। तुम चाहते हो कि तुम धन्ना सेठ बन जाओ, उच्च श्रेणी के अधिकारी बन जाओ और हुकूमत किया करो; परन्तु होगा वही जो तुम्हारे भाग्य में है।

बारह महीने तक भगवान् ऋषभदेवजी को निराहार रहना पड़ा। इसका कारण क्या था ? छह महीने तक तो उन्होंने आहार की इच्छा ही नहीं की थी, मगर उसके बाद तो वे आहार-प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहे। फिर भी उन्होंने जो प्रबल अन्तराय कर्म बाँधा था, उसके फल स्वरूप आहार प्राप्त नहीं हो सका। जिन्होंने मानव जाति को भूखों मरने से बचाया और भोजन बनाने, पकाने एवं उत्पन्न करने की विधि बतलाई, उन्हें स्वयं कर्मों के प्रभाव से निराहार रहना पड़ा! बात यही है कि चाहे कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो, भले ही तीर्थङ्कर ही क्यों न हो, यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये हैं तो उन्हें भोगना ही पड़ता है। "समरथ को नहिं दोस गुसाईं' की बात कर्मों के आगे नहीं चल सकती। अच्छे कर्म करोगे, अच्छा फल पाओगे, बुरे कर्म करोगे तो बुरा फल मिलेगा। कर्म करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। मगर फल

भोगना इच्छा पर निर्भर नहीं है शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है, मगर जो पी लेगा, उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मतवाला होना पड़ेगा। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना। इस लबड़ धोधा से कुछ नहीं होगा। अगर भविष्य को सुखमय बनाना चाहते हो तो अच्छे कर्म उपार्जन करो। चित्त में पवित्र विचार ही आने दो, असभ्य, पापमय और पीड़ाजनक वाणी मत बोलो और शरीर को सेवा एवं परोपकार में लगाओ। तुम्हारे सामने अगर कोई प्राणी पीड़ा से छटपटा रहा हो तो तुम्हें चैन नहीं पड़ना चाहिए। उसकी पीड़ा को अपनी ही पीड़ा समझो। अपने आत्मीयजनों की वेदना जैसे तुम सहन नहीं कर सकते, उसी प्रकार उसकी पीड़ा भी सहन न करो। प्राणी मात्र को अपना समझो। कषाय भाव को मन्द और मन्दतर करते जाओ। अन्याय के मार्ग पर कदम न उठाओ। असत्य का भूलकर भी आश्रय न लो। व्यापार में या दूसरे व्यवहार में अप्रामाणिकता का स्पर्श भी मत होने दो। इसके साथ प्रभु का भजन, कीर्तन, गुणगान आदि जो कुछ बन सके, शक्ति के अनुसार करते रहो।

भाइयों। अपने भविष्य को अगर सुधारना है तो इतना अवश्य करो। कभी मत भूलो कि वर्तमान तो बीत रहा है, केवल भविष्य से ही पाला पड़ना है। अतएव भविष्य को मंगलमय बनाने का प्रयत्न करो।

बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग आलम फाजिल होकर भी दर-दर मारे-मारे फिरते हैं। पूर्वजन्म के पुण्य के बिना उन्हें जूतों पर

पालिश करके पेट भरना पड़ता है। ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से पढ़ाई हो जाती है, पर सुखमय सामग्री के लिए तो साता-वेदनीय का उदय चाहिए। साता-वेदनीय कर्म वही उपार्जन कर सकते हैं, जिन्होंने दूसरों को साता पहुँचाई।

कहने का आशय यह है कि अपने भाग्य का निर्माण करना पूरी तरह तुम्हारे ही हाथ में है। तुम जैसा चाहो अपना भाग्य बना सकते हो। मगर भाग्य-निर्माण हो जाने के बाद—कर्मों का बंध हो चुकने पर उसमें उलटफेर नहीं हो सकता। उसे भोगे बिना कोई चारा नहीं है। अतएव पहले ही सावधान रहो। देखोः—

जर जेवर महल तिजोरी को दे ताला कुंजी पास रखे।
तकदीर बिना धन कैसे रहे वो यों का यों ही उड़ जावेगा ॥

कितना ही प्रयत्न क्यों न करो, धन की हिफाजत के लिए कितनी ही चेष्टा करो, भाग्य में जब नहीं होगा तो वह नहीं रहेगा। ताले लगे होंगे तो भी वह उड़ जायगा। तुम्हारा कोई भी उपाय उसे नहीं रख सकेगा।

एक गाँव में इसी तरह धन ताले में से उड़ गया। तलाश किया तो एक आदमी ने स्वीकार किया कि धन मैंने उड़ाया है। उससे कहा गया—अब तो उसे वापिस लौटा दो, तब उसने उत्तर दिया—वह अब मेरे पास भी नहीं रहा। मुझ से जबर्दस्त के पास पहुँच गया है।

मनमाड़ के पास पहाड़ों में बड़े-बड़े मकान बने हुए हैं। सुना है, वहाँ लोग ऐसा काजल लगाते हैं कि जमीन के भीतर का सोना वगैरह नजर आने लगता है। प्राचीन काल में ऐसा काजल बनाया जाता था और उसके बनाने की कुछ तरकीवें संस्कृतभाषा के ग्रन्थों में लिखी हुई आज भी मिलती है। तो उसे उन काजल लगाने वालों ने देखा कि यहाँ बहुत सोना जमीन में दबा हुआ है! भला जमीन में सोना दिखाई दे जाय तो उसे कौन छोड़ना चाहेगा।? उन लोगों ने भी जमीन खोदना शुरु किया। वे खोदते ही चले गये। सोने के ऊपर सोने का देवता बैठा था। उसने कहा—अरे, तुम लोग यहाँ से भाग जाओ। यह सोना तुम्हारी तकदीर में नहीं बदा है! यह सुनकर वे वहाँ से भाग गये। आखिर जान सोने से भी अधिक प्यारी होती है।

भाइयो, मैं अभी कह चुका हूँ कि यह पृथ्वी रत्नगर्भा है, मगर 'पुण्य बिना नर पावत नाहीं'। पुण्यहीन नर गड़े हुए सोने को खोद कर देखता है तो उसे सोने के बदले कोयला नजर आता है। एक दादी ने अपने पोते से कहा कि यहाँ मेरे हाथों का गाड़ा हुआ धन है। उसे निकाल ले। पोते ने उसी जगह खोदना शुरु किया तो कोयले निकले।

आप भी चाहते होंगे कि आपको भी मोहरों का एक चरु मिल जाय, किन्तु कुछ करनी करके भी आये हो कि नहीं? अगर करनी करके नहीं आये हो तो कुछ भी मिलने वाला नहीं है। सन्तोष धारण करो और आगे पाने के लिए तैयारी करो।

हाँ, तो वे चारों चोर बिच्छुओं से भरे चरु को लेकर उस आदमी के घर पर आये। मकान पर चढ़कर उन्होंने केलू हटाये और चरु का मुँह औंधा करके उँड़ेल दिया। चरु के सारे बिच्छु फिर मोहरों के रूप में परिणत हो गये। यह हाल देख उस आदमी ने अपनी पत्नी से कहा—देखो, मैंने कहा था कि ईश्वर देगा तो छप्पर फाड़ कर देगा। उसने दे दिया न ?

चोर जल्दी जल्दी भाग गये। उन्होंने समझा कि हम बिच्छू बरसा कर जा रहे हैं और घर के मालिक ने समझा—ईश्वर छप्पर फाड़ कर मोहरें बरसा रहा है। ज्ञानी जन समझते हैं कि यह सब पुण्य का प्रताप है। वास्तव में तीव्र पुण्य कमाया हो तो ऐसा सुयोग मिलता है।

भाइयो ! इन बातों पर ध्यान दो। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो तो सही, फिर मैं देखता हूँ कि कैसे सुखी नहीं होते हो ! मिजाज में मत अकड़े रहो। कुछ न कुछ दान दो, शील पालो, शुभ भावना भाओ, गरीबों पर दया करो—उन्हें फायदा पहुँचाओ, दुखियों के दुःख दर्द को दूर करने में मददगार बनो। ऐसा करने से तुम अवश्य ही पुण्य का उपार्जन कर सकोगे। पुण्य का उपार्जन करने वाले ही वासुदेव बनते हैं और चक्रवृर्त्ती का पद पाते हैं चक्रवृर्त्ती राजा का पुण्य बहुत तीव्र होता है। जहाँ चक्रवृर्त्ती पहुँचते हैं वहीं के राजा उनके पैरों पड़ कर करोड़ों की सम्पति उन्हें भेंट करते हैं। उनका छह खंड पृथ्वी पर निष्कटक साम्राज्य होता है। उनके शरीर पर भी १०८ शुभ लक्षण होते हैं। जब चक्रवर्त्ती गर्भ में आते हैं तो उनकी माता १४ शुभ स्वप्न देखती है। यह चक्रवर्त्ती दूसरे नंबर के पुरुष-भोगपुरुष कहलाते हैं।

तीसरे प्रकार के पुरुष धर्मपुरुष हैं। इस श्रेणी में चौवीसों तीर्थङ्कर आते हैं। ये किसी को किंचित् भी कष्ट नहीं पहुंचाते। जब गृहस्थ-अवस्था में रहते हैं तब भी उनकी वृत्ति अत्यन्त पवित्र होती है, अलिप्त रहते हुए सांसारिक कृत्य करते हैं। जब दीक्षा धारण करके साधु बन जाते हैं। तब तो किसी को कष्ट पहुँचाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। तीर्थङ्कर की पदवी प्राप्त होना साधारण बात नहीं है। जन्म-जन्मान्तरों के प्रबल और अत्यन्त उज्ज्वल संस्कारों का परिपाक होने पर ही तीर्थङ्कर गौत्र का बंध होता है। यह पुण्य का परम प्रकर्ष है। "संसार में तीर्थङ्कर के समान कोई भी पुण्य का भाजन नहीं हो सकता।" तीर्थङ्कर देव बड़े से बड़े वैभव को ठुकरा कर साधु बनते हैं और जगत् का कल्याण करते हैं। अपनी आत्मा को जब पूर्णता पर पहुँचा देते हैं तब देश-देश में विचर कर धर्म का उपदेश करते हैं और अन्त में निरंजन निराकार पद को प्राप्त करते हैं। उनके शरीर पर १०८ शुभ लक्षण होते हैं। वक्षस्थल पर स्वस्तिक होता है।

तीर्थङ्कर गौत्र कर्म का बंध वही कर सकता है जिसने पूर्वभव में निम्नलिखित बीस बोलों में से किन्हीं की विशिष्ट आराधना की हो:—

अरिहंत-सिद्ध पवयण गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसु
वच्छलया य तेसिं, अभिक्खणं णाणोओगे य ॥
दंसण विणय आवस्सए य, सीलव्वए य निरइयारे
खणलव तव—चियाए, वेयावच्चं समाहीय ॥

अपुव्वनाण गहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं करणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥

ज्ञाता सूत्र अ. ८

अर्थात् (१) अरिहन्त (२) सिद्ध (३) प्रवचन (४) गुरु (५) स्थविर-वृद्ध मुनि (६) बहुश्रुत शास्त्रों का विशेष ज्ञाता (७) तपस्वी, इन सातों का गुणानुवाद करना (८) निरन्तर ज्ञानोपार्जन करने मे उपयोग लगाना (९) निर्मल-निरतिचार सम्यक्त्व का पालन करना (१०) गुरु आदि पूज्य पुरुषों का यथोचित विनय करना (११) नियमित रूप से षड् आवश्यक का अनुष्ठान करना (१२) शीलों, व्रतों, नियमों आदि का पालन करना (१३) निरन्तर विरक्ति भाव होना (१४) छह प्रकार की बाह्य और छह प्रकार की आन्तरिक तपश्चर्या करना (१५) सुपात्रदान देना (१६) गुरु, रोगी, तपस्वी और वृद्ध की सेवा करना (१७) समाधिभाव रखना (१८) नित्य नया ज्ञान सीखना (१९) श्रुतभक्ति करना (२०) अरिहंत भगवान् के शासन की प्रभावना करना ।

यह आवश्यक नहीं है कि इन बीसों बोलों की आराधना करने से ही तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति हो, इनमें से एक-दो आदि बोल की आराधना से भी तीर्थङ्कर गोत्र बँध सकता है, परन्तु यह आवश्यक है कि उस बोल की आराधना में उत्कृष्ट रसायन आवे । उत्कृष्ट रसायन आये बिना तीर्थङ्कर गोत्र का बँध नहीं हो सकता । उत्कृष्ट रसायन आने का मतलब है-परिपूर्ण तल्लीनता ।

इन बोलों में से किसी या किन्हीं की आराधना करके तीर्थङ्कर अवतरित होते हैं । ये धर्मपुरुष कहलाते हैं । तीर्थङ्कर

भगवान् कितने बलशाली होते हैं, इसका अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि वे अपने जन्मकाल में ही, पैर के अंगुठे से सुमेरु पर्वत को कम्पायमान कर देते हैं।

कहते हैं, बाईसवें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमीजी की जबर्दस्त ताकत देख कर कृष्ण वासुदेव भी चकित हो गये। चकित ही नहीं, भयभीत भी हुए कि तीन खंड का राज्य तो यही ले लेंगे। तब बलभद्रजी ने कृष्णजी को बतलाया कि ये धर्मी पुरुष हैं। इनके लिए तीन खंडों का, सारी पृथ्वी का राज्य भी तुच्छ है। ये तीन खंड के नहीं, तीन लोक के अधिपति बनने वाले है। ऐसे अधिपति बनने के लिए अकिंचन अनगार बनना पड़ता है। जो सभी कुछ त्याग देता है, उसे सभी सुख प्राप्त होते हैं।

जम्बूकुमार की कथाः—

अभी-अभी तीन प्रकार के पुरुषों का जो विवेचन किया गया है, उनमें यदि जम्बूकुमार का समावेश करना चाहें तो वे धर्मी पुरुषों की श्रेणी में ही आ सकते हैं। धर्मी पुरुषों में उनकी गणना करना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वे बचपन से ही धर्म के संस्कार लेकर आगे बढ़े हैं। अब, जब कि नवयौवन में उन्होंने पाँव रक्खा है, ससार के समस्त विलासों को त्याग देने के लिए तैयार हो गये हैं। उनकी रग-रग में अगर धर्म रम न गया होता तो ऐसी अद्भुत त्याग वृत्ति किस प्रकार जागती है ? ऐसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति विरले ही होते हैं। वास्तव में जम्बूकुमार की त्याग वृत्ति जगत् के, भागों के कीचड़ में फँसने वाले लोगों को एक असर कारक चुनौती है। वह एक जीता-जागता सबक है। जम्बूकुमार

की जीवनी से उन लोगों को कुछ शिक्षा लेनी चाहिए, जो कब्र के किनारे तक जा पहुँचे हैं, वृद्धावस्था जिनके सिर पर सवार हो चुकी है, जिनका अंग-अंग ढीला पड़ गया है, इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं, फिर भी जो विषय-वासना से मुक्त नहीं होते। जिनका मन भोग-विलास में ही डूबा रहता है!

भाइयो! वह समय धर्म के लिए कितना उज्ज्वल था जब ऐसे-ऐसे ऋद्धिशाली और प्रभावशाली नौजवान घर त्याग कर भिक्षुक का पद स्वेच्छा से, अन्तःकरण की प्रेरणा से अंगीकार करते थे। तभी धर्म की प्रभावना होती थी, तभी संयम के प्रति आकर्षण बढ़ता था। उस काल से इस काल की तुलना करें कि समझ में ही नहीं आता कि कितना अन्तर पड़ गया है! इस अन्तर का कारण मनुष्य की मानसिक दुर्बलता है। जिसमें मानसिक दुर्बलता होगी वही वासनाओं का शिकार होगा। मनुष्य में शांसारिक दुर्बलता के साथ-साथ मानसिक दुर्बलता भी बढ़ती चली जा रही है और इसी कारण वह विषय-वासनाओं में अधिकाधिक फँसता चला जाता है। ऐसे समय में जगत् के समक्ष जम्बूकुमार जैसे महान् मनस्वी और तेजस्वी पुरुषों के जीवन-आदर्श प्रस्तुत करने की विशेष आवश्यकता है।

जम्बूकुमार अपनी पत्नियों के बहुत प्रयत्न करने पर भी अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। उन्होंने सातवीं पत्नी को जो उत्तर दिया था, उसका आशय कल बतलाया जा चुका है। कुमार का उत्तर सुन कर और उन्हे अपने निश्चय पर दृढ़ समझ कर वह भी चुप हो रही। अब केवल एक आठवीं पत्नी ही रह गई थी। वह साहस करके उठी और कहने लगी:—

नाथ ! मैं इन सातों बहनों से छोटी हूँ छोटे की बात अधिक सहानुभूति के साथ सुनी जाती है । अतएव आपसे मैं यही निवेदन करती हूँ कि आप सहानुभूति के साथ मेरी बात सुनें। मस्तिष्क से नहीं किन्तु हृदय से उस पर विचार करें ।

आपने मेरी इन बहनों को झूठी झूठी बातें बनाकर समझा लिया है । वे भीतर से चाहें समझी हों या न समझी हों, फिर भी चुप हो गई हैं । करें भी तो क्या करें ? आपका दुराग्रह दूर नहीं होता । मगर मैं इस प्रकार संतुष्ट होने वाली नहीं हूँ । आप वैसी ही बातें बना रहे हैं जैसी उस ब्राह्मण की छोकरी ने राजा के सामने बनाई थीं ।

जम्बूकुमार—प्रिये ! वह बात मुझे भी तो बतला दो । छोकरी ने राजा से क्या कहा था ?

तब वह कहने लगी—वसन्तपुर नामक एक गाँव था । उसमें महाजन और ब्राह्मण आदि सभी जातियों के लोग निवास करते थे । वहाँ का राजा बड़ा न्यायी था और नीतिमर्यादा के अनुसार ही प्रजा पर शासन करता था । परन्तु उसे एक शौक लग गया था । वह यह कि राजा प्रतिदिन कोई न कोई नयी बात सुनता था और सुनाने वाले को दस हजार रुपया इनाम दिया करता था ।

यों करते-करते कई दिन हो गये । ब्राह्मणों की बारी आई राजा ने ब्राह्मणों से कह दिया—मुफ्त का खाते-खाते बहुत दिन हो गये हैं । अब प्रतिदिन आकर कोई न कोई नयी बात सुनाया

करो। अगर नयी बात न सुनाई तो सब जागीर वगैरह जब्त कर ली जायगी और दण्ड दिया जागया।

राजा की यह आज्ञा सुनकर ब्राह्मण पशोपेश में पड़ गये। आखिर वे सोच-सोचकर नयी बात सुनाने लगे। एक दिन एक गरीब ब्राह्मण की बारी आ गई उसने अपनी क्वांरी लड़की से कहा—बेटी! आज का दिन बड़ी मुसिबत का है। आज नयी बात सुनाने की बारी मेरी है और मुझे कोई नयी बात आती नहीं है। मैं राजा के पास जाकर क्या सुनाऊँगा? नहीं सुना सका तो दंड भुगतना पड़ेगा!

इस प्रकार कह कर ब्राह्मण रोने लगा। तब लड़की ने कहा—पिताजी! आप चिन्ता क्यों करते हैं? मुझे नयी बात आती है। मैं राजा को सुना आऊँगी और इनाम ले आऊँगी। आप अपनी जगह मुझे भेज देना।

इधर यह बात हो रही थी कि सामने से राजा का चपरासी आ पहुंचा। उसने कहा—चलो, आज कौन कथा सुनाएगा?

ब्राह्मण ने कहा-मेरी यह पुत्री नर्मदा कथा सुनाएगी।

सिपाही उसे साथ लेकर राजा के पास पहुँचे। नर्मदा ने राजा को देख कर नमस्कार किया। राजा ने पूछा-इतनी देर करके क्यों आई हो?

नर्मदा-अन्नदाता! कुछ न पूछिए। मेरा दिल ही जानता है। राजा फिर भी कहो तो सही, क्या हुआ?

नर्मदा-मेरी सगाई इसी गाँव में हुई है। मेरा रुप देखने के लिए मेरा क्वांरा पति आया था। वह आया और सीधा घर के भीतर चला आया। उस समय मैं घर में अकेली थी। माता जी और पिताजी काम से बाहर गये हुए थे। अपने पति को अचानक सामने आया देखकर मैं अकबका गई। मै असमजस में पड़ गई कि इनसे बोलूँ या न बोलूँ ? सोचा बोलना लोकव्यवहार के विरुद्ध है। अड़ौसी-पड़ौसी सुनेगा तो गाड़ी भर थूकेगा। लोग ताने मारने लगेगें। कहेगे कि लड़की बड़ी कलमुही है जो विवाह से पहले, अपने पिता के घर आये पति से बातें करती है ! न बोलूँ तब भी गति नहीं। आखिर वे मेरे पिता के घर के सगे जमाई थे। साधारण परिचित आदमी आ जाता है तो उसके साथ भी शिष्टाचार की बातें करनी पड़ती हैं। फिर उनसे कोई बात भी न करें, यह तो शिष्टता का बड़ा भारी उल्लंगन था। वे बुरा मान जाते। मुझ पर भी नाराज हो जाते। शादी होने के बाद मिलते तो यही कहते कि तूने मुझ से बात भी नहीं की थी। इस तरह थोड़ी देर मैं असमंजस में पड़ी रही। मगर निर्णय करने में विलम्ब भी नहीं करना था।

मैंने तत्काल मन में निर्णय करके उनसे कहा-रसोई बनाती हूँ। आप जीमकर पधारना।

वे चारपाई पर बैठ गये भोजन थोड़ी देर में तैयार हो गया। उन्होंने भोजन किया। भोजन करने के बाद न मालूम क्या हुआ कि उनके पेट में जोर का दर्द उठ खड़ा हुआ। वे वेदना से तड़फने और कराहने लगे। मैं फिर मुसीबत में आ गई। किससे जाकर कहूँ और कहूँ भी तो क्या कहूँ ?

इतने में ही वेदना के मारे उन्होंने शरीर त्याग दिया। मैं यह देख कर बहुत दुखी हुई। मैंने सोचा-मेरे कर्म फूट गये! आखिर मैंने घर के अंदर ही गड़हा खोद कर उन्हें गाड़ दिया और जमीन फिर बराबर कर दी। इतना कर ही पाई थी कि आपका सिपाही आ पहुँचा और मैं आपके पास चली आई।

राजा ने चकित भाव से पूछा-अरी यह तो बता कि क्या यह कहानी सच्ची है? मन से गढ़ कर तो नहीं कह रही है?

नर्मदा आप प्रतिदिन कहानी सुनते है। अगर वे कहानियाँ सच्ची हैं तो यह भी सच्ची है। जैसे प्रतिदिन इनाम देते हैं। वैसे ही आज भी दीजिये। किसी से भी पूछ देखिये कि यह बात नयी है या नहीं? अगर सभी इसे नयी बतला दे तो इनाम मिलना चाहिये।

राजा—तो क्या तेरा मतलब यह है कि दूसरे लोग झूठी कहानियाँ सुनाया करते हैं।

नर्मदा—और नहीं तो क्या।

राजा—तब तो मेरा इतना समय व्यर्थ ही बर्बाद होता है। ऊपर से दस हजार खर्च होता सो अलग ही।

राजा ने उसी दिन से कहानी सुनना बन्द कर दिया।

जम्बूकुमार की आठवीं पत्नी ने कहा—नाथ! जैसे ब्राह्मण की उस छोकरी ने राजा के सामने, कपोल-कल्पित कहानी कह सुनाई थी, उसी तरह आप भी मनगढंत कहानियाँ सुना-सुना कर

हमें बहकाना चाहते हैं। मैं इस प्रकार बहकावे में नहीं आ सकती। ऐसी बातों पर विश्वास कर लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। हाँ, ज्ञान की कोई बात कहो तो जरूर मान लूँगी।

प्राणनाथ चाहे हजार बातें कहकर आप चुप कर दें, मगर आप का व्यवहार उचित नहीं सिद्ध हो सकता। अभी विवाह करके हमें लाये हो और अभी-अभी त्याग देने की बात करने लगे हो! यह कहाँ तक उचित है? यह आपकी बहादुरी नहीं कायरता ही कहलायेगी। इस प्रकार अबलाओं पर अत्याचार करना शिष्ट और विवेकवान् पुरुषों को शोभा नहीं देता। ऐसा करके आप यश नहीं पाएँगे। अगर इतिहास में यह घटना लिखी गई तो जब तक लोग पढ़ते रहेंगे, आपको बुरा ही कहेंगे। मैं नहीं चाहती कि मेरे पति युग-युग में बदनाम हों।

प्रियतम! हम आपका प्यार चाहती हैं। मगर आप वैराग्य दे रहे हैं। भोजन के इच्छुक को रेत देना क्या उचित है? आपको स्त्री हृदय की कोमलता का पता नहीं है। आप नहीं जानते कि आपके यह वचन-बाण किस निष्ठुरता के साथ हमारे कलेजे को घायल कर रहे हैं। कहा है 'जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।' आप हमारी गूढ़ वेदना को समझ नहीं पा रहे हैं। कदाचित् आप स्वयं स्त्री होते और आपके प्रति ऐसा व्यवहार किया जाता तो आपको पता चलता कि कैसी बीतती है!

नाथ! आप दीक्षा लेने की बात कह कर क्या सारे परिवार को दुखी नहीं कर रहे हैं? क्या आपके माता-पिता हृदय

से आपको दीक्षा लेने देना चाहते हैं ? अगर आप उन्हें आज्ञा देने के लिए बाध्य न करें तो वे हर्गिज आपको आज्ञा नहीं देंगे। ऐसी स्थिति में वह आज्ञा क्या सच्ची आज्ञा कहला सकती है ? समस्त परिवार के चित्त को आघात पहुँचा कर, सबको दुखी करके आप संयम लेने जाते हैं, यह उचित नहीं है। हिंसा करके अहिंसा की साधना करने का आपका ढंग अनोखा है।

हाँ, हमने मर्यादा के विरुद्ध कोई काम किया हो तो हमें समझाइए। हम ऐरी-गैरी पंचकल्याणी नहीं हैं। जैसे ब्राह्मण की छोकरी ने इधर उधर की गप्पें हाँकी, उसी प्रकार आप भी गप्पें मार रहे हैं। पर ऐसी गप्पों से थोड़ी देर का मनोरंजन हो सकता है, जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। हम इतनी ज्यादा भोली नहीं हैं कि आपके बहकावे में आ आजाएँ। आप अकेले हैं और हम आठ हैं। चाहेंगी तो आपको पकड़ कर जबर्दस्ती रोक लेंगी। दिन उगने दीजिए, फिर देखना कि आप कैसे हमें छोड़कर जा सकते हैं।

नाथ! आप किस जन्म का बदला ले रहे हैं ? अथवा नया बदला बाँध रहे हैं ? आप बेर की तरह ऊपर से मुलायम और भीतर से कठोर मालूम होते हैं। जहाँ भीतर कठोरता होती है वहाँ संयम का पौधा पनप नहीं सकता! अतएव पहले आप अपने अन्तःकरण को कोमल बनाइए और उसके पश्चात् संयम ग्रहण करने का विचार कीजिएगा।

प्राणवल्लभ! मेरा अन्तःकरण व्यथित हो रहा है। मेरा मस्तिष्क इस समय ठिकाने नहीं है। अतएव मर्यादा से विरुद्ध

कोई बात निकल गई हो तो आप उदारता पूर्वक क्षमा कर दें, परन्तु बातों पर गहराई से विचार अवश्य करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अगर आपने मेरी बातों पर, आग्रह त्याग कर, समभाव को धारण करके, ध्यान दिया तो आप अपने इरादे को त्याग देंगे और जब इस इरादे को त्याग देंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

ता० २८-६-४८





मन का मंजन

()—()—()—()

॥ स्तुति ॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो! कहाँ तक आपके गुण गाए जाएँ ?

हे महाप्रभो! आप अव्यय हो अर्थात् आपके स्वरूप का कभी व्यय नहीं होता, विनाश नहीं होता। व्याकरण में अव्यय

वे कहलाते हैं जो प्रत्येक स्थिति में एक से रहते हैं। प्रभु भी सदैव शुद्ध स्वरूप में स्थिर रहते हैं, अतएव वे अव्यय हैं भगवान् विभु अर्थात् सर्वव्यापक हैं। उनका स्वरूप बुद्धि से अतीत और इन्द्रियों से भी अगोचर हैं। वे असंख्य हैं आद्य है, ब्रह्मा है, ईश्वर है अनन्त हैं, अनंग केतु हैं, योगियों के स्वामी हैं, योग के ज्ञाता हैं, एक रूप होते हुए भी अनेक रूप हैं, उन्हें सन्त जन ज्ञानस्वरूप और निर्मल कहते हैं। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा वार-वार नमस्कार है।

जैनधर्म की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। यह सिद्धान्त सर्वव्यापी है इसका कोई अपवाद नहीं हो सकता। अगर निष्पक्ष बुद्धि से विचार किया जाय तो इस सिद्धान्त की सचाई सहज ही समझ में आ सकती है। हम समस्त पदार्थों को जहाँ अपने-अपने मूल स्वरूप में स्थिर पाते हैं, वहाँ प्रतिक्षण परिवर्तन शील भी देखते है। पदार्थ का मूल स्वरूप ज्यों का त्यों बना रहता है तो उसकी पर्याय निरन्तर बदलती भी रहती है। किसी भी वस्तु को लिजिए, वह द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य ही प्रतीत होगी। जड़ और चेतन सभी के लिए यह नियम समान रूप से लागू होता है यहाँ तक कि परमात्मा भी इसका अपवाद नहीं है। परमात्मा सिद्ध अवस्था में सदैव विद्यमान रहते हैं तब भी पर्याय की दृष्टि से उनमें परिवर्तन होता रहता है।

कई लोगों का कहना है कि जीव मोक्ष में जाता है तो कभी न कभी तो वापिस लौटता ही होगा। मोक्ष से लौट कर फिर जन्म

धारण करना ही होगा। मगर भाई, चावल का छिलका अलग हो जाने पर भी अगर चावल उग सकता हो तो जीव भी मोक्ष गये बाद संसार में जन्म-मरण करे। जैसे छिलके से रहित चावल नहीं उगता, उसी प्रकार कर्म से रहित जीव फिर कभी भी जन्म नहीं लेता है। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। जिस जीव ने कर्मजनित समस्त अशुद्धियों को दूर कर दिया है, उसमें फिर अशुद्धि किस प्रकार आ सकती है? कहा भी है—

जो पहले आत्मा शुद्ध था तो, फिर किसने अशुद्ध बनाया है।।
और अशुद्ध बनाने वाले ने, कहो नफा कौनसा पाया है? ।।

जो आत्मा एक बार शुद्ध हो चुका है, उसे अशुद्ध कौन बना सकता है? यदि कोई कहे कि जीव अपने आप अशुद्ध बन जाता है तो परमात्मा भी अशुद्ध हो जाना चाहिए। परन्तु ऐसा कभी होता नहीं है। अगर कोई कहे कि परमात्मा अशुद्ध बना देता है तो उससे यही कहना होगा कि तुमने परमात्मा का स्वरूप समझा ही नहीं है कोई आदमी मकान के चौथे मंजील पर बैठा है। किसी दूसरे ने उसे धक्का देकर नीचे पटक दिया। गिरने वाले के हाथ पैर टूट गये। अब कहो कि पटकने वाले के हाथ में क्या आ गया? सारांश यह है कि जो जीव एक बार शुद्ध हो चुका है वह कभी अशुद्ध नहीं हो सकता। जिसने मुक्ति प्राप्त करली है, वह कभी संसार में नहीं लौट सकता। कहा है—

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न प्ररोहति भवाङ्कुरः ।।

वीज से अंकुर उत्पन्न होता है और अंकुर से वीज उत्पन्न होता है। वीज और अंकुर का यह कार्य—कारणभाव अनादि काल से चला आ रहा है। किन्तु जब वीज को जला दिया जाता है तो लाख चेष्टा करने पर भी वह अंकुर को उत्पन्न नहीं कर सकता। अनादि काल की वह कार्य-कारण की परम्परा उसी समय, अनन्तकाल के लिए सदैव के लिए - समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार कर्म और संसार में भी कार्य कारणभाव है। अतः कर्म रूपी वीज के भस्म हो जाने पर संसार अर्थात् जन्म-मरण रूपी अकुर उत्पन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार जिसने एक बार सिद्ध दशा प्राप्त कर ली, वह सदैव के लिए "अव्यय" हो जाता है। उसका पुन जन्म-मरण नहीं होता। वह कदापि कर्मों से लिप्त नहीं होता। इसीलिए तो आगम में कहा है—'अपुणरावित्ति-सिद्धिगइनामधेयं ठाणं सपत्ताणं' अर्थात् सिद्ध भगवान् ऐसे सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हुए हैं, जो "अपुनरावृत्ति" है, अर्थात् जिससे पुनरागमन नहीं होता! इसी अभिप्राय से भगवान् को "अव्यय" कहा गया है।

भगवान् को "विभु" भी कहा गया है। विभु का अर्थ है-सर्वव्यापी। कई लोगों का ख्याल है कि ईश्वर शरीर से सर्व-व्यापी है, जैसा कि कहा है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः।
विश्वतो वाहुरुत विश्वतः पात् ॥

अर्थात् ईश्वर की आँखें सभी जगह हैं, मुख सर्वत्र हैं, भुजाएँ सव जगह हैं और पैर भी सभी जगह हैं।

ऐसा समझने वाले लोग वास्तव में भ्रम में हैं। जब एक गलत बात स्वीकार कर ली जाती है तो उसके पीछे या उसका समर्थन करने के लिए बहुत-सी गलत बातें माननी पड़ती हैं। जिन लोगों ने ईश्वर को जगत् का कर्त्ताहर्त्ता माना उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि संसार बहुत विशाल है, तो ईश्वर कहाँ कहाँ पहुँच कर सृष्टि की रचना करता होगा ? तब वे मानने लगे कि ईश्वर के हाथ-पैर भी सर्वत्र हैं। जगत् की रचना करने के लिए उसे दौड़धूप नहीं करनी पड़ती। वह जहाँ है वहीं रहता हुआ जगत् का निर्माण कर देता है। इस प्रकार ईश्वर की शरीर से व्यापकता की मान्यता का आविष्कार हो गया। मगर उन्होंने यह नहीं सोचा की अगर ईश्वर सर्वव्यापी है-संसार की सारी जगह ईश्वर के देह से ही घिरी हुई है तो ईश्वर जिन पदार्थों की रचना करता है, वे किस जगह रह सकेंगे ? उनके लिए तो कहीं ठौर-ठिकाना ही नहीं रह जायगा।

असली बात यह है कि ईश्वर के शरीर ही नहीं है। फिर भी उसे विभु या व्यापक कहा जाता है सो केवल ज्ञान की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। ईश्वर सर्वज्ञ है और सर्वदर्शी है। ईश्वर का ज्ञान जगत् के रूपी, अरूपी समस्त पदार्थों को जानता है। इसी कारण ईश्वर विभु कहलाता है।

ज्ञान आत्मा का गुण है और गुण, गुणी को छोड़ कर कदापि अलग नहीं रह सकता। घड़े का रूप क्या घड़े को छोड़ कर अन्यत्र जा सकता है ? नहीं। इसी प्रकार ज्ञान आत्मा को छोड़ कर अन्यत्र नहीं रह सकता। वह सब जगह फैला हुआ नहीं है। फिर भी जगत् के समस्त पदार्थों को जानने की उसमें क्षमता

है। इसी अपेक्षा से ज्ञान सर्वव्यापी कहा जाता है और इसी अपेक्षा से ईश्वर भी सर्वव्यापी कहलाता है।

भाइयो ! भगवान् से कोई भी बात छिपी हुई नहीं है। वह घट-घट की बात का जानने वाले हैं। आप इस बात को जानते और मानते हैं तो क्या आपको इस पर पूरा भरोसा आ-गया है ? अगर भरोसा आ गया है तो क्यों ऐसा कहते हो कि ऐसी जगह चलो जहाँ कोई न देख पाये ? कोई नहीं मैं तो ईश्वर भी आ गया। दुकान में चलो या मकान में घुस कर यह काम करो, ऐसा कहने वालों को क्या ईश्वर की विभूती पर विश्वास है ? क्या वे समझते हैं कि ईश्वर वहाँ नही देखेगा ? या उनकी तरफ से आँखें बंद कर लेगा ? भाई, ईश्वर से कुछ भी छिपा नहीं है। मनुष्य ने ऐसे—ऐसे आविष्कार कर लिये हैं कि हड्डी के भीतर के जख्म का भी फोटो उतार लिया जाता है। चाहे जितने वस्त्र पहने हो तो भी नग्न दिखलाई देता है। जब मशीन के द्वारा ही इतना मालूम हो जाता है तो ईश्वर केवल ज्ञान से क्या प्रत्येक के घट घट की नहीं जान सकता है ? वस्तुतः ईश्वर सभी कुछ देखते हैं और सभी कुछ जानते हैं। इस तरह जिसे ईश्वर पर पूर्ण भरोसा होगा, उससे बुरे काम कदापि नहीं होंगे। कोतवाल के सामने क्या कोई किसी की जेब काट सकता है ? इसी प्रकार ईश्वर जब सब जगह मौजूद है तो लोग लुक-छिप कर, एकान्त में, पाप कर्म क्यों कर रहे हैं ? ईश्वर देख रहा है, इस बात पर लोगों को पूरा भरोसा नहीं है। अपने पति के सामने कोई स्त्री दूसरे से बात नहीं करती है, तो फिर आ-पका अडंगा कैसे चल रहा है ?

भाइयो ! तुम मानो या न मानो, विश्वास करो अथवा न करो, ईश्वर सभी कुछ देख रहा है, सभी कुछ जान रहा है। ईश्वर अन्तर्यामी है ! कहाँ तो उदायी राजा सिन्ध हैदराबाद की तरफ था और कहाँ भगवान् महावीर ७०० मील दूर पूर्व में थे ! उदायी राजा मन मे सोचता है कि भगवान् महावीर पधार जाएँ तो कल्याण कर लूँ । पर राजा जो सोच रहा था उसे भगवान् जान रहे थे। यही नहीं, राजा ने जब विचार नहीं किया था, तब भी भगवान् जानते थे कि वह ऐसा विचार करेगा।

भगवान्, जो चीज मर्यादा मे है उसे भी जानते हैं और जो अमर्यादित है, उसे भी जान रहे हैं। मगर जिसकी असत्ता है उसकी सत्ता को नहीं जानते हैं। कदाचित् कोई कहे भगवान् जीव को जानते हैं तो यह भी जानते होंगे कि जीव की आदि कब से है ? अगर वे जीव की आदि नहीं जानते तो सभी कुछ जानने वाले नहीं कहलाये ! किन्तु भाई, सर्वज्ञ होने का मतलब यह नहीं है कि जो नहीं है उसे भी वह जाने। जीव कभी बना नहीं है, अतएव उसकी आदि भी नहीं है। जीव अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। ऐसी स्थिति में जीव की आदि कैसे जानी जा सकती है ?

एक गोलाकार थाली तुम्हारे सामने रक्खी है क्या तुम उसका किनारा बतला सकते हो ? अच्छा, थाली को रहने दो और चूड़ी की तरफ देखो। चूड़ी कहाँ से शुरु हुई है यह बतला सकते हो ? जैसे तुम चूड़ी को भलि भाँति देखते हो, मगर उसे गोल-गोल ही देखते हो, उसका सिरा नहीं देखते, क्यों कि सिरा है ही नहीं, इसी प्रकार भगवान् जीव के स्वरूप को पूरी तरह देखते और

जानते है, किन्तु उसकी आदि को नहीं जानते, क्योंकि आदि है ही नहीं। सर्वज्ञ का काम वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानना है जो चीज जैसी है वैसी जान लेना ही ज्ञान की सच्चाई है।

कहा जाता है कि जीव अगर अनादि है तो कर्म कबसे है ? क्या कर्म पहले नहीं थे और बाद में चिपट गये हैं ? इसका उत्तर यह है कि जैसे जीव की आदि नहीं है उसी प्रकार कर्म संयोग की भी आदि नहीं है। प्रवाह से कर्म अनादि हैं। प्रत्येक कर्म किसी न किसी समय बँधता है और जब उसकी स्थिति पूरी हो जाती है तो जीव से अलग हो जाता है। कोई भी कर्म अनादि काल से लगा हुआ नहीं चला आ रहा है। मगर कर्म की परम्परा अनादि काल से है। उसका आरम्भ कभी नहीं हुआ है। जैसे तुम उधार लेते रहते हो और चुकाते रहते हो और खाता चालू बना रहता है, उसी प्रकार कर्म बँधते रहते हैं उनकी निर्जरा भी होती रहती है, फिर भी उनका प्रवाह चलता है।

जैसे तिलों में तेल मिला हुआ है, दूध में मक्खन मिला हुआ है, फूल में खुशबू मिली हुई है, उसी प्रकार जीव के साथ कर्म मिले हुए हैं। जैसे प्रयत्न करके तेल अलग कर दिया जाता हैं और खल अलग कर दिया जाता है, फूल से सुगन्ध अलग खींच ली जाती है, दूध में से मक्खन अलग कर लिया जाता है, उसी प्रकार कर्म और आत्मा को भी अलग-अलग कर दिया जाता है। कर्म जब अलग हो जाते है तो आत्मा निष्कर्म दशा को प्राप्त कर लेता है। अपने पूर्ण विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वह जन्म और मरण से छुटकारा पा लेता है।

कर्म यद्यपि जड़ हैं तथापि चेतना का संसर्ग पाकर के उनमें फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसे अफीम में मस्ती पैदा कर देने की शक्ति है, शराब में पागल बना देने की शक्ति है, दूध में पुष्टि की शक्ति है, वैसे ही कर्मों में शुभ-अशुभ फल देने की शक्ति है। जीव कर्मों का उपार्जन करने अथवा न करने में स्वतन्त्र है किन्तु कर्मों का उपार्जन करके फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं है। किये कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। जैसे शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी की बात है, मगर शराब पीने से जो उन्माद होता है उसे रोक देना हाथ की बात नहीं है। हाँ, यह संभव है कि कर्मों का फल आप जल्दी ही भोग लें।

आम दो तरह से पकते हैं। एक तो पेड़ में लगे-लगे स्वाभाविक क्रम से पकते हैं और दूसरे जल्दी पकाने हों तो पाल में रख दिये जाते हैं। इसी प्रकार कर्मों को यथा समय भोगना हो तो देरी लगती है और यदि जल्दी भोग कर छुटकारा पाना हो तो तप, संयम आदि का आचरण करना चाहिए। खास तौर से तपस्या करके कर्मों को जल्दी नष्ट किया जा सकता है।

कर्मों को बाँधने वाले भी तुम्हीं हो और भोगने वाले भी तुम्हीं हो। तुम्हारे पड़ोस में यदि कोई झूठ बोल रहा है तो वह पाप तुम्हे नहीं लगेगा। जो झूठ बोलेगा उसी को वह पाप लगेगा। कल्पना करो, कोई आदमी प्यासा मर रहा है और तुमने दया लाकर शुभ भावना से उसे पानी पिला दिया। पानी पीने से उसकी असाता मिट गई— उसकी अशान्ति दूर हो गई। वह

चंगा हो गया और अपने घर चला गया। इसके बाद उसने चोरी की। अब अगर कोई यह कहता है कि—देखो, तुम उसे पानी न पिलाते तो वह चोरी न करता। तुमने पानी पिलाया, इस कारण वह जिन्दा बच गया और जिन्दा बच गया इसी कारण उसने चोरी की। अतः चोरी का सारा पाप पिलाने वाले को लगा। मगर इस प्रकार सोचना और कहना गलत है। पानी पिलाने वाले की भावना चोरी करने, कराने की नहीं थी। वह तो सिर्फ उसे शान्ति पहुँचाना चाहता था। उसने दयाभाव से प्रेरित होकर पानी पिलाया है, चोरी करवाने के लिए नहीं पिलया है। पानी पिलाने वाले का मन, वचन, काय चोरी का लेश मात्र भी निमित नहीं है। फिर उसे चोरी का पाप कैसे लगेगा? अतएव उसकी भावना के अनुसार उसे शान्ति पहुँचाने का ही फल मिलेगा-चोरी के पाप के फल को वह नहीं भोगेगा। अलबत्ता चोरी-करने वाला या दूसरा कोई भी पाप करने वाला अपने पाप का फल अवश्य भुगतेगा। पानी पिलाने वाले को अगर चोरी का पाप लगता हो तो साधु धर्म का उपदेश भी न दे सकेंगे। मान लीजिए, किसी साधु ने दान, शील, तप आदि का उपदेश दिया। उनका उपदेश मानकर कोई श्रावक स्वर्ग में देव रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ उसे देवांगनाएँ भोगने के लिए मिली। और भी विविध प्रकार की भोगसामग्री प्राप्त हुई। उसने उन सबको भोगा। तो क्या उन सब भोगों को भोगने का पाप साधुजी को लगेगा? न साधुजी धर्म का उपदेश देते, न वह देव लोक में उत्पन्न होता, न भोग भोगता। इस प्रकार साधुजी के उपदेश से ही वह देव हुआ, अतः क्या वे पाप के भागी होंगे? फिर तो इस पाप से साधुजी डूब जाएँगे और नरक में जाएँगे!

भाइयों ! आपकी सहज बुद्धि क्या उत्तर देती है ? अगर आपकी समझ के अनुसार धर्मोपदेश करने से साधु नरक के भागी बने हों तो पानी पिलाने वाला भी पाप का भागी बन सकता है । अगर साधुजी सिर्फ तारने के लिए ही उपदेश देते हैं, देवलोक के भोग भोगने के लिए नहीं और इस कारण वे पाप के भागी नहीं बनते तो पानी पिलाने वाला भी सिर्फ साता उपजाने के लिए ही पानी पिलाता है, चोरी करवाने के लिए नहीं । ऐसी स्थिति में वह भी चोरी के पाप का भागी किस प्रकार बन सकता है ? जो जैसा करेगा उसे वैसा ही फल भुगतना पड़ेगा । पुण्य और पाप अपनी नीयत में है ।

मैं पूछता हूँ पाप धन में है या मन में हैं ? अगर धन में है तो भरत चक्रवर्ती घोर पापी होने चाहिए थे । चौदह रत्नों, नौ निधियों और अनुपम ऋद्धि एवं ऐश्वर्य के स्वामी होने के कारण वे सबसे बड़े पापी होने चाहिए थे । मगर अनाशक्ति भाव के कारण वे क्या बड़े पापी गिने गये हैं ? नहीं । वास्तव में पाप मन में है, धन में नहीं है । जीव को मोक्ष में जाते हुए धन नहीं रोक सकता है और न तन ही रोक सकता है । किन्तु पापमय मन ही मुक्ति में रुकावट डालता है । देखो, मरुदेवी माता हाथी के हौदे पर गृहस्थ वेष में बैठी थी । गृहस्थ के वेष में थी तो गहने और कपड़े भी पहने होगी । फिर भी भावना शुद्ध हो जाने के कारण उन्हे उसी समय केवलज्ञान हो गया और मोक्ष भी प्राप्त हो गया । क्या रुका उनका मोक्ष धन से ? नहीं । भाइयो ! पाप धन में नहीं, मन में है ।

योगवाशिष्ट पुराण में वशिष्ठजी कहते हैं:—

मनसैव कृतं कर्म; न शरीरकृतं पुनः ।
येनैवालिङ्गयते कान्ता, तेनैवालिङ्गयते सुता ॥

यहाँ बतलाया गया है कि पाप कर्म का उपार्जन मन से ही किया जाता है, तन से नहीं। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है, उसी शरीर से पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। मगर दोनों के आलिंगन में भावना का कितना महान् अन्तर होता है !

बिल्ली बच्चों को जन्म देती है। जिस जगह वह अपने बच्चों को रखती है, उसे अगर संकटपूर्ण समझती है, अर्थात् वहा अगर किसी प्रकार का खतरा अनुभव करती है तो वह बच्चों को मुँह में दबा दबा कर दूसरे निरापद स्थान में ले जाती है। इस प्रकार बिल्ली अपने बच्चों को भी मुँह से पकड़ती है और चूहे को भी उसी मुँह से पकड़ती है। परन्तु दोनों के पकड़ने में भावना का कितना भेद रहता है।

असल बात मन के अध्यवसायों की है मन के अशुभ अध्यवसायों में ही पाप है। अतएव सर्वप्रथम मन की शुद्धि करनी चाहिये। मानसिक विचार ही मनुष्य को डुबोने वाले और उबारने वाले हैं। अगर आपका विचार शुद्ध होगा तो उच्चार भी शुद्ध होगा और विचार एवं उच्चार शुद्ध होगा तो आचार भी शुद्ध होगा। विचारों का जीवन निर्माण में मुख्य भाग है। मन के विचार मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन-व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन्द्रियाँ, मन की दासी हैं। मन उन्हे जिस ओर ले जाना चाहता है, उसी ओर वे चली जाती है। अतएव अगर आपने अपने

जीवन को पवित्र और उच्च बनाने का संकल्प कर लिया है तो आप निरन्तर मन की चौकसी करते रहिए । क्षण भर के लिए भी मन को गंदगी की ओर मत जाने दीजिए । इसी का नाम साधना है और यही बड़ी से बड़ी साधना है। दृढ़ और सावधानी-पूर्ण थोड़े दिनों की इस साधना से ही आपका मन सध जायगा। फिर वह स्वतः पवित्रता की ओर ही प्रेरित होगा । तब आपका जीवन अत्यन्त सात्विक, पवित्र, उच्च और कल्याणमय बन जायगा।

इसके विपरीत अगर आप मन को ढीला छोड़ देंगे, मन के अनुचर गुलाम बन जाएँगे, मन को अपवित्रता की ओर जाने से नहीं रोकेगें तो वह आपको ले डूबेगा । आपका सारा जीवन अपावन बन जायगा। आपकी आत्मा पतित हो जायगी।

पीया पाप न कीजिए, अलगो रहिये आप ।
करणी का फल पायगा, कुण बेटा कुण बाप ।।

कसाई कसाई खाने में बकरा काटता है । उसका फल उसी को भोगना पड़ेगा। जो बाप करेगा पाप तो बाप को ही भोगना होगा और बेटा करेगा तो बेटे को ही भोगना होगा। अगर तीव्र पाप उदय में आया है तो उसके फल से बचा लेने की शक्ति किसी में नहीं है। पुरुष की ताकत नहीं कि स्त्री को बचा ले और न स्त्री में ही वह शक्ति है जो पुरुष की रक्षा कर सके । औरों को जाने दो, चौसठ इन्द्र मिलकर आजाएँ तो भी वे पाप के फल से किसी को बचा नहीं सकते । उस समय धन-सम्पदा, महल-मकान

मोटर-बग्घी, हाथी-घोड़ा आदि कुछ भी काम नहीं आता। अतः जब तक—

जब तक मन तेरा नहीं सफा है।
मुँह धोने से क्या नफा है?
खोटी करणी बेवफा है, रोएगा तकदीर को।
कर अन्दर साफ शरीर को वैतरणी का गोता है॥
नर! क्या मुखड़ा धोता है,

लोग शरीर को मल-मल कर स्नान कराते हैं, सुगंधित तेल और साबुन लगाते हैं, तौलिया रगड़ते हैं, और फिर साफ सुथरे होकर फूल उठते हैं। कई लोग पाउडर लगा कर डाकी जैसे बन जाते हैं। परन्तु इस सफाई से कुछ होने वाला नहीं है। अगर सचमुच भलाई चाहते हो तो दिल को साफ करो। हृदय को पवित्र भावनाओं के जल में स्नान कराओ। तुम चाहे कहीं किसी भी तीर्थ में जाकर नहा लो, गंगा यमुना या पुष्कर में गोते मार आओ, किन्तु जब तक दिल साफ नहीं है तो आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं।

गंगा भी नहाया जमना भी नहाया,
पुष्कर में मल–मल के नहाया रे।
तूने मन का न मैल मिटाया रे।

तू सब जगह नहा कर आ गया परन्तु मन का मैल तो घुला ही नहीं। मन में तो पाप की कालिमा लगी ही रह गई। ज

मलीनता थी, पाप था, वह ज्यों का त्यों रह गया तो तेरे स्नान का फल क्या हुआ ? क्या तू समझता है कि शरीर की सफाई कर लेने से मन निर्मल हो जायगा ? और आत्मा पवित्र हो जायगी ? अगर तेरा यह विचार है तो तू भ्रम में है। आत्मा को पतन के गहरे गड़हे में गिराने वाली कालीमा तो मन में थी और उसे तूने ज्यों की त्यों रह जाने दी है। तब तेरा उद्धार किस प्रकार होगा ?

और शरीर की सफाई की बात क्यों करता है ? हाड़, मांस, रक्त, चर्बी, मल, मूत्र जैसे अपावन पदार्थों से बना हुआ यह शरीर क्या कभी पवित्र हो सकता है ? शरीर तो प्रकृति से ही अपावन है। यह जल से अथवा साबुन से या ऐसे किसी भी अन्य पदार्थ से कदापि पावन नहीं हो सकता। यही नहीं, शरीर के संसर्ग से पावन पदार्थ भी अपावन, घृणास्पद और हेय हो जाते हैं। भला जो शरीर उत्तम से उत्तम पदार्थों को भी अपने संसर्ग मात्र से अपवित्र बना देता है, वह जल से कैसे पावन हो सकता है ? यदि उसमें ऊपर से चमक-दमक आभी गई तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है ?

मानसिक पवित्रता से ही आत्मा की उन्नति होती है। मानसिक पवित्रता ही स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग को सुगम बनाती है। अगर तुम्हारा मन पवित्र है तो तुम्हारा जीवन धन्य है। मगर यह समझ लेना चाहिए कि मन की पवित्रता का प्रमाण क्या है ? अगर तुम अपने स्वार्थ के लिए या किसी के दबाव में आकर असत्य को नहीं अपनाते, प्राणों पर संकट आ पड़ने पर भी सत्य का ही अनुसरण करते हो तो समझा जायगा कि तुम्हारा मन पवित्र है। जिस प्रकार तुम्हें अपना जीवन प्रिय है और जैसे

तुम अपने प्राणों को किसी भी कीमत पर नहीं दे सकते, उसी तरह अन्य प्राणियों को भी अपने-अपने प्राण प्यारे हैं। अगर किसी भी मूल्य पर तुम उनके प्राण लेने को तैयार नहीं हो तो माना जायगा कि तुम्हारा मन पवित्र है। तुम अन्याय पूर्वक अपनी सम्पति खोना पसद नहीं करते हो, अपने हक की वस्तु दूसरों के अधीन होना नहीं पसंद करते हो तो दूसरों की सम्पति और अधिकारों के विषय में भी ऐसा ही सोचो और ऐसा ही आचरण करो। अगर तुम्हारा विचार और आचार इसी प्रकार का है तो समझ लो कि तुम्हारा मन पवित्र है। कोई पुरुष तुम्हारी बहिन, बेटी या बहू की ओर बुरी नजर से देखे तो क्या तुम सहन कर सकते हो ? नहीं। तुम उसे घोर अनीति और अधर्म समझते हो। यही बात अपने विषय में भी सोचो। अगर तुम परायी स्त्री की ओर खराब नजर से नहीं देखते और पर स्त्री को अपनी माता - बहिन समझते हो तो माना जायगा कि तुम्हारे मन में पवित्रता का वास है। अगर अनुचित लोभ-लालच में फँसे नहीं हो, दिन रात हाय पैसा, हाय पैसा नहीं करते रहते हो, बल्कि न्याय-नीति के साथ निर्वाह के योग्य धन उपार्जन करके सन्तोष मान लेते हो और परमात्मा के भजन के लिए समय बचा लेते हो, बड़े से बड़े प्रलोभन के सामने होने पर भी अपनी मर्यादा से नहीं गिरते हो और धर्म के पथ पर अग्रसर होते चले जा रहे हो तो निसन्देह तुम्हारा मन पवित्र है।

अगर आप अपनी शक्ति के अनुसार दान देते हैं, साधु-संतों एवं द्वार पर आये भूखे गरीब भिखारी को खाली नहीं जाने देते हैं और जिस दिन दान का अवसर नहीं मिलता उस दिन मन में संताप का अनुभव करते हैं, अगर आप शील का पालन

करते हैं, यथाशक्ति तपस्या करते हैं और स्व-पर हित की पवित्र भावना से विभूषित हैं, तो माना जायगा कि आपका मन पवित्र है।

अगर आपके अन्त. करण में क्षमा का भाव बना रहता है, किसी के थोड़ा या बहुत अपराध कर देने पर भी आपका दिल क्रोध से जल नहीं उठता, अगर आप अपने धन का, बल का, ज्ञान का, बुद्धि वैभव का, कुल का, जाति का, तप का एवं ऐश्वर्य आदि का अभिमान नहीं करते, अगर आप निष्कपटभाव सेअपना जीवन व्यतीत करते हैं, अगर आप अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हैं, खान पान आदि में लोलूपता एवं असंयम नहीं होने देते, अगर आप जगत् के हित के लिए अपने स्वार्थों का वलिदान कर देते है और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं तो आपका मन पवित्र है ।

यह और ऐसा ही अन्य नैतिक एवं धार्मिक नियमों का पालन जब आदत रूप बन जाता है तो सहज ही मानसिक पवित्रता की रक्षा होती रहती है । ऐसी पवित्रता से ही आत्मा का परम कल्याण होता है ।

आज गंगा में स्नान करके लौटे और कल ही अदालत में झूठी गवाही देने को खड़े हो गये, आज प्रयाग में डुबकी लगाई और कल ही करने लगे ठगाई तो भाई ! तुमने असलियत नहीं पाई ! पाई भर भी पवित्रता नहीं पाई ! तुम्हारा वह स्नान कोरा ढोंग ही कहलाएगा। उससे कोई लाभ नहीं होगा । न इहभव सुधरेगा, न परभव सुधरेगा । खोटी करणी करोगे तो अपनी

तकदीर को रोओगे। नरक के वैतरनी कुंड में जाकर दुःख उठाओगे। इसलिए मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ। कि सबसे पहले मन को शुद्ध बनाओ। "मन चंगा तो कठौती में गंगा।" मन शुद्ध है तो सभी तीर्थ तुम्हारे पास ही हैं। फिर तुम्हे कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है।

महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद पाण्डवों ने श्री कृष्णजी से कहा-हम ६६ ही तीर्थों में पाप उतारने को जाते हैं। कृष्णजी बोले-जाते ही हो तो हमारी एक छोटी-सी तूंबी भी लेते जाओ। पाण्डवों ने तूंबी। ले जाना स्वीकार किया। पाण्डव सब तीर्थों में स्नान करके आ गये। उन्होंने कृष्णजी से कहा-आपकी दयादृष्टि से हम सब तीर्थों में स्नान करके और पाप उतार करके सकुशल वापिस लौट आये हैं।

कृष्णजी ने पूछा—ठीक है, पर हमारी तूंबी को स्नान कराया या नहीं ?

पाण्डव—भला आपकी तूंबी को कैसे भूल जाते ? उसे सबसे पहले और खूब अच्छी तरह स्नान कराया है।

कृष्णजी के मँगवाने पर उनकी तूम्बी उपस्थित की गई। कृष्णजी ने तूंबी लेकर उसे चाकू से चीरा और कुछ टुकड़े करके पाण्डवों को खाने के लिए दिये। पाण्डवों ने थू थू करके थूकना शुरु किया। तब कृष्णजी ने मुस्करा कर पाण्डवों से पूछा-क्यों, तूंबी क्या मीठी नहीं हुई ? पाण्डव—महाराज ! पानी तो बाहर बाहर लगा है। भीतर से मीठी कैसे हो जायगी ?

श्रीकृष्ण—यह बात है तो तीर्थों में स्नान करने से तुम्हारे पाप किस प्रकार उतर गये ? तुम्हे क्या शरीर के बाहरी हिस्से में ही पाप लगे थे ?

पाण्डव स्तब्ध रह गये। अब उनकी समझ में आया कि स्नान करने से, बाहर से शरीर साफ हो सकता है; आन्तरिक शुद्धि नहीं हो सकती। फिर उन्होंने पूछा—महाराज ! आत्मा को शुद्ध करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ? तब कृष्णजी ने कहा:—

आत्मानदी संयमतोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र ! न वारिणा शुद्‌ध्यति चान्तरात्मा ॥

—महाभारत।

आत्मा रूपी नदी में संयम रूपी जल भरो। शील का तट बनाओ। सत्य से उसे बहने दो और दया की लहरें उत्पन्न करो। ऐसी आत्मा रूपी नदी में स्नान करो। तभी तुम्हारे पापों का प्रक्षालन होगा। हे पाण्डु-पुत्र ! पानी से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं हो सकती। मुसलमानों के धर्म शास्त्र में लिखा है कि अगर पानी न मिले तो मिट्टी से हाथ रगड़ कर वजू कर।

ब आवे इबादत वज्जु ताजेदार।
के फरजाने आतिश शंवि रूस्तगार ॥

शेख सादी कहते हैं कि तूझे अगर वजू करना है तो इबादत के पानी से वजू कर। ईश्वर में ध्यान लगाने को वजू कहते हैं।

दोजख (नरक) में जो आतिश (आग—गर्मी) है, उससे बचने के लिए इबादत के पानी से ठंडक कर।

इस सारे विवेचन से स्पष्ट रूप से समझ में आ जाना चाहिए कि असली चीज मन की शुद्धि है। अगर मन शुद्ध हो गया तो आत्मा पवित्र हो जाता है और वह सुख का भागी होता है मन शुद्ध न हुआ तो दिन में दस वार मल-मल कर स्नान करने से भी कुछ लाभ नहीं है। इसके विपरीत यदि मन पावन हो गया है तो शरीर की सफाई का कोई महत्त्व नहीं है, क्यों कि शरीर स्वभाव से ही अपावन है।

तीरथ चाल्या तीन जना, कामा कपटा चोर।
गये थे पाप उतारवा, सौ मन लाये और॥

कामी, कपटी और चोर तीनों मिल कर तीर्थ स्नान करने चले। उन्होंने विचार किया कि जिंदगी में बहुत पाप किये हैं तो चलो। तीर्थ में उन्हें वहा आवें। ऐसा सोच कर वे पाप उतारने के लिए चले थे, मगर पाप उतरे नहीं, वरन् सौ मन और चिपट गये!

भाइयो! आप लोगों को भ्रम में नहीं रहना चाहिए। अब तक आप अगर बाह्य शुद्धि को ही महत्त्व देते रहे हैं तो अब सत्य को समझो। मैं स्नान करने की मनाई नहीं कर रहा हूँ, मगर यह बतला रहा हूँ कि स्नान करने से अन्तरात्मा की शुद्धि हो जायगी, यह विचार एकदम गलत है। अगर आपने इस विचार का परित्याग न किया और आत्मा शुद्धि के लिए वास्तविक प्रयत्न न किया तो आपको हाथ मल-मल कर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

असली शुद्धि पापों का परित्याग करने से होती है। आप जब सत्संगति करें, संतों का समागमन करें तो क्रमशः पापों का त्याग करते चले जाएँ। अभी आपके पास पापों का भरापूरा भंडार है। थोड़े-थोड़े पापों का त्याग कर देने पर भी आप दरिद्र नहीं हो जाएँगे! फिर भी वहुतेरे पाप आपके पास रह जाएँगे।

मैं पहले कह चुका हूँ कि पाप न तन में है, न धन में है, किन्तु मन में है। इस कारण मन की ही सफाई करना आवश्यक है। मन को शुद्ध रक्खोगे तो संताप नहीं होगा और एक प्रकार की अनूठी शान्ति आपके अनुभव में आने लगेगी।

भाइयो! यह मन वड़ा वदमाश, कपटी और धूर्त है। यह आपको वहकाता है, फुसलाता है, ललचाता है, और फिर वुराई की ओर ले जाता है। प्रायः लोग मन के अधीन हो जाते हैं और वह जिधर ले जाना चाहता है उधर ही चले जाते हैं। इस कारण वे घोर यातनाएँ भुगतते हैं और विविध प्रकार की वेदनाओं के पात्र वनते हैं। ऐसे लोगों का जीवन चंचल होता है। उन्हें क्षण भर को भी सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होती। जिन्हें अपने भविष्य को उज्ज्वल वनाना है, जो सच्चे सुख की राह पर चल कर दुःखों से सर्वथा मुक्त हो जाना चाहते हैं, जो वर्त्तमान जीवन में ही शान्ति के अमृत का पान करना चाहते हैं, उनका परम कर्त्तव्य है कि वे अपने मन की साधना करें, मन को नियंत्रण में रखें, मन की शुद्धि करने के लिए सदा उद्योगशील वने रहें।

इस धूर्त्त मन को ईश्वर प्रेम के रंग में ऐसा पक्का रंग दो कि फिर इसका रंग उड़ न सके। ईश्वर प्रेम का दिखावा करने

से कुछ लाभ नहीं होगा, सचाई के साथ ईश्वर प्रेमकरो। सीता मे सचाई थी तो आग भी पानी बन गई। सुदर्शन में सचाई थी तो शूली का सिंहासन हो गया। तो भाई, सचाई बड़ी चीज है।

भाइयो! गधी के ऊपर से कभी गौण नहीं उतरती जब तक उसमें चलने फिरने की शक्ति रहती है, तब तक उसकी पीठ पर बोझ लदता ही रहता है। क्या तुम भी अपनी यही हालत बनाना चाहते हो? क्या तुम भी गधी की भाँति जीवन के अन्तिम श्वास पर्यन्त, घर-गिरस्ती, कुटुम्ब-परिवार आदि का बोझ लादे रहना चाहते हो? जिंदगी में थोड़ा-सा समय तो ऐसा निकालो कि जब संसार के भार से मुक्त हो कर, निश्चिन्त भाव से परमात्मा का भजन कर सको और अपने अगले जीवन के लिए खुराक इकट्ठी कर सको। अब तक की सारी जिंदगी तुमने दुनिया के द्वंदफंद में व्यतीत करदी है। थोड़ा-सा समय बचा है। इसे तो सार्थक करो। वृद्धावस्था में तो भगवान् का स्मरण करो। गधी पर से अबतो गौण उतरने दो।

आनन्द श्रावक का स्मरण करो। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय को किस प्रकार भगवान् के भजन में और धर्म की साधना में बिताया था? शास्त्र में उनका चरित किसलिए वर्णन किया गया है? इसीलिए तो कि तुम उसको पढ़कर, सुनकर, समझकर, अनुकरण करो। आनन्दजी ने भगवान् महावीर श्रावक के व्रत ग्रहण किये और फिर ग्यारह प्रतिमाओं का पालन किया। और इस प्रकार श्रावक धर्म का पालन करते हुए अपना शेष जीवन व्यतीत किया। जब समय आया तो संथारा

ले लिया। गृहस्थ होते हुए भी भावना शुद्ध रखने के कारण आनन्द को अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

जीवन की ऐसी उत्कृष्टता दृढ़ रहने से प्राप्त होती है. अपने जीवन को क्रमशः उन्नत वनाते चलो, चित्त को निर्मल वनाने का प्रयास करते रहो। चित्त जव कभी कुमार्ग की ओर जाने लगे, उसी समय उसे रोक दो, जैसे गलत रास्ते पर जाने को उद्यत हुए घोड़े की लगाम खींच ली जाती है। ऐसा करने से धीरे-धीरे वह आपके अधीन हो जायगा और फिर कुमार्ग की ओर जाना ही पसंद नहीं करेगा।

कहने का आशय यह है कि इस जीवन की सार्थकता मनः शुद्धि मे ही निहित है। जव आपका मन शुद्ध हो जायगा तो आपको इसी जीवन में परम सात्विक आनन्द की अनुभूति होने लगेगी। मानसिक शुद्धि के अनेक साधन हो सकते हैं। भगवान् का भजन करना, स्तवन करना, नाम जपना, स्वाध्याय करना, ध्यान करना, तत्त्व-चर्चा करना, विशेष ज्ञानवानों से विनय पूर्वक नवीन ज्ञान सीखना, अपने से थोड़े ज्ञान वालों को प्रेमपूर्वक ज्ञान सिखलाना आदि किसी भी उपाय से मन को स्थिर और पवित्र वनाया जा सकता है। मगर इन सव उपायों में एक अत्यन्त सरल उपाय है संतों का समागम करना। संसार से जो विरक्त हैं, जो वैराग्य की मूर्ति हैं, जिन्होंने साधना के द्वारा अपनी इन्द्रियों को भलीभाँति जीत लिया है, जिन्होंने मन पर अंकुश लगा लिया है, जो सम्पूर्ण रूप से समभावी हैं, जो सव प्रकार की निन्दा और विकथा से दूर रहते हैं, जो तत्त्व ज्ञान की खोज में तन्मय रहते हैं, ऐसे महाभाग मुनियों के समागम से मन

में पवित्रता आती है, मन की कलुषता नष्ट हो जाती है। अतएव सर्व साधारण के लिए संत पुरुषों का समागम बहुत कल्याणकारी है। जो अपने जीवन को उच्च बनाना चाहते हैं, उन्हें उपयुक्त बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

जैसे साबुन से वस्त्र स्वच्छ होता है और जैसे मंजन से दांत चमकने लगते हैं, उसी प्रकार भगवद् भजन, संत समागम आदि उपायों से चित्त स्वच्छ और पवित्र होता है। उस पवित्रता को प्राप्त करना ही जीवन का बड़े से बड़ा लाभ है। इसी में दुर्लभ मानव-जीवन की सार्थकता और सफलता है। इसी में धर्म की उपयोगिता है।

जम्बूकुमार की कथा:—

जम्बूकुमार भाग्यशाली थे जो उन्हें श्रीसुधर्मा स्वामी सरीखे संत के समागम का स्वर्ण-अवसर मिल सका। जम्बूकुमार ने संत समागम का पूरा लाभ उठाया। संत की वाणी सुन कर उनकी आत्मा जाग उठी। उनके सोये हुए संस्कार प्रबुद्ध हो गये। उनके संकल्प में ऐसी दृढ़ता आ गई कि मोहमयी नारियों को हाव भाव, अनुनय-विनय आदि का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा।

जम्बूकुमार की आठवीं पत्नी ज्येष्ठश्री ने सम्पूर्ण साहस बटोर कर सभी कुछ कह दिया। कुछ मधुर वाक्य भी कहे और कुछ कटु वचन भी कह डाले। मनुष्य जब अपने स्वार्थ को भंग होते देखता है और प्रयत्न करने पर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता, जब उसमें हद दर्जे की निराशा की भावना उत्पन्न हो जाती है, तब उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता। ज्येष्ठश्री की यही

हालत थी। फिर भी वैराग्य की मूर्ति जम्बूकुमार बिना त्यौरी चढ़ाये, चित्त में जरा-सी भी तेजी बिना लाये, चुप चाप सब कुछ सुनते रहे। जब ज्येष्ठश्री अपना भाषण समाप्त कर चुकी तब उन्होंने शान्त भाव से गंभीर ध्वनि में उत्तर देना आरंभ किया।

जम्बूकुमार ने कहा-प्रिये ! तुमने जो दृष्टान्त दिया है और अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए जो-जो बातें कही हैं, उन सब के मूल में तुम्हारी भ्रान्त धारणा ही है। तुम्हारी दृष्टि इस समय समीचीन नहीं है। अतएव सब बातें तुम्हे विपरीत ही मालूम पड़ रही हैं। जब दृष्टि ठीक नहीं होती तो सच्चे वस्तु-स्वरूप का निर्णय नहीं हो सकता। लोक में कहावत है-"सावन के अंधे को हरा-हरा ही नजर आता है"। इसका मतलब यह है कि जिसकी धारणा जैसे बन जाती है, वह सभी घटनाओं को और सभी तथ्यों को उसी रूप में ढाल लेता है। जिसकी आँखों पर जैसे रंग का चश्मा लगा होगा उसे-सब वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई देने लगेंगी। हालांकि सब वस्तुएँ उस रंग की नहीं हो जाती हैं, सब का अपना-अपना रंग कायम रहता है, फिर भी हरे रंग का चश्मा लगाने वाला सब वस्तुओं को हरा-हरा ही समझता है। उसे लोग समझाते हैं कि यह तेरा भ्रम है, मगर वह कहता है कि क्या मैं अपनी आँखों पर भरोसा करना छोड़ दूँ ? वह भले ही जान-बूझ कर झूठ न बोलता हो, फिर भी है वह भ्रम में ही। ज्येष्ठश्री। तुम्हारी भी यही स्थिति है। तुम्हारे भीतरी नेत्रों पर मोह का चश्मा चढ़ा है। इसी कारण तुम प्रत्येक बात को विपरीत रूप में ग्रहण कर रही हो। भले ही इस समय तुम्हे यह बात समझ में न आती हो, मगर जब मोह का चश्मा उतर जायगा तो अवश्य ही तुम अनुभव करने लगोगी कि तुम भ्रम में पड़ी थीं।

शास्त्र में सम्यग्दर्शन का मोक्ष का आद्य कारण बतलाया गया है। एक कवि कहते हैं —

मोक्षमहल की परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता लहे सो दरसन धारो भव्य ! पवित्रा ॥

सम्यग्दर्शन मोक्ष रूपी महल की प्रथम सीढ़ी है। जब तक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हो जाता, समस्त ज्ञान और चारित्र मिथ्या ही बने रहते हैं। अतएव सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन का सीधासादा अर्थ है—दृष्टि की निर्मलता। दृष्टि यदि निर्मल नहीं होती तो सभी कुछ विपरीत ही विपरीत नजर आता है। जिसे यथातथ्य विचार करना है, सही सही बात समझनी है, उसे अपनी दृष्टि को निर्मल बना लेना चाहिए। ज्येष्ठश्री ! अगर तुम तटस्थ भाव से मेरी बात को सुनोगी और उस पर मनन करोगी तो तुम्हारा हित ही होगा।

जम्बूकुमार दृष्टांत देते हुए कहने लगे एक बड़ा ही सुन्दर नगर था। उस नगर का राजा बड़ा बली और पराक्रमी था। उसी नगर में धनदत्त नामक एक सेठ रहता था। सेठ का इक-लौता बेटा था—ललीतांगकुमार। ललितांगकुमार पढ़ा लिखा होशियार लड़का था। नवयुवक था। सेठ के पास असीम धन-सम्पति थी। अतएव ललितागकुमार को धनोपार्जन की कोई चिन्ता नहीं थी। उसे उक्त आदत थी। वह यह कि ललितांग-कुमार एक अत्यन्त सुन्दर घोड़ी पर सवार होकर हवाखोरी के

लिए निकला करता था। घोड़ी खूब सजी हुई होती थी। मख-मल का जीन होता और इधर-उधर मोतियों की झालरें लटकती थी! ललितांग बहुत बढ़िया और कीमती वस्त्र-आभूषण धारण करता, हाथ में रेशमी रूमाल लेता। मुँह में पान दबाता और बड़ी शान-शोकत के साथ निकलता था। चेहरा ऐसा कोमल और खिला हुआ जैसे गुलाब का फूल हो। उसे प्राकृतिक सौन्दर्य ऐसा प्राप्त हुआ था कि हजारों में ढूंढे न मिले।

ललितांग इस प्रकार सज-धज के साथ एक दिन हवाखोरी के लिए निकला। वह जिधर से निकला उधर ही राजमहल पड़ता था। रानी अपने महल के झरोखे में बैठी हुई थी। ज्यों ही ललि-तांग उधर से निकला कि रानी की नजर उस पर जा पड़ी। वह इच्छा करने लगी कि किसी पकार यह नवयुवक मेरा पति बन जाय तो क्या ही अच्छा हो।

भाइयो! संसार में अमृत भी है और विष भी है। यहाँ सदाचार की प्रतिमाएँ भी मिलेगीं तो दुराचार की मूर्तियाँ भी मिलेंगी। अनेक सती स्त्रियाँ हैं जिनके उज्ज्वल चरित्र से देश और समाज का गौरव बढ़ता है। और कुछ ऐसी बिगड़ैल स्त्रियाँ भी होती हैं जो अपने जीवन को नष्ट करने के साथ ही साथ औरों के जीवन की पवित्रता को भी मिट्टी में मिला देती हैं।

वह रानी ऐसी ही बिगड़ैल स्त्रियों में थी। वह ललितांग कुमार को देखकर उस पर मोहित हो गई। उसने अपनी पद-मर्यादा पर ध्यान न देकर अपनी दासियों को हुक्म दिया कि इस नवयुवक को इशारा करो ताकि वह इस ओर नजर डाले।

दासियों ने इशारा किया और ललितांग की नजर उस ओर घूम गई जब ललितांग रानी की ओर देखने लगा तो रानी ने इशारे से उसे अपनी ओर आकर्षित किया और भीतर आने को कहा ।

ललितांग घोड़ी पर से उतर कर राजमहल के अन्तःपुर में चला गया । रानी उसका स्वागत करने के लिए पहले से ही तैयार खड़ी थी । उससे मुस्करा कर स्वागत किया, पलंग पर बिठलाया और पान का बीड़ा दिया । रानी कामवासना से विह्वल हो गई । उसका विवेक नष्ट हो गया । कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान न रहा । वह वासना के वशीभूत होकर मीठी-मीठी बातें करने लगी ।

मगर अचानक ही राजा के आने का समाचार पाने से उसकी सारी योजना धूली में मिल गई । उसके मसूबे मन में ही रह गये । वह हड़बड़ा कर ललितांग से कहने लगी—महाराजा आ रहे हैं !

ललितांग की दशा भी बड़ी विचित्र हो रही थी । वह सोचने लगा—मैं किस मुसीबत मे फँसा ! मजे से सैर-सपाटा करने निकला था और कहाँ का कहाँ आ गया ! घबराहट के कारण वह थर-थर काँपने लगा । दुराचारी मनुष्य में हिम्मत नहीं होती । फिर ऐसा घोर दुराचार करने वाले में तो हिम्मत हो ही कैसे सकती है ! तिस पर वह तो राजा के विरुद्ध दुराचार था ! उसे जिंदा रहने की आशा नहीं रही । सोचने लगा—राजा आते ही तलवार से मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा ! आखिर काँपते हुए ललितांग ने कहा— रानीजी ! अब क्या करना होगा ? बचाव का कोई उपाय करो ।

रानी उसे चौथे मंजिल पर ले गई। वहाँ पाखाना बना था। रानी ने उस पाखाने के खड्डे में घुस जाने के लिए कहा। जब ललितांग ने खड्डे मे घुसने से इंकार किया तो रानी और उसकी दासियों ने मिलकर जबर्दस्ती उसे घुसेड़ दिया। किन्तु कुछ मोटा होने के कारण वह बीच ही में अटक कर रह गया!

रानी लौट कर अपने कमरे में आ गई और भीतर से द्वार बंद करके बैठी रही। राजा ने आकर दरवाजा खटखटाया तो उसने किवाड़ खोले।

उधर ललितांग पाखाने के बीच में लटका हुआ घोर मुसीबत सहन कर रहा है। टट्टी, पेशाब, सब उसके ऊपर होकर जाता है। वह मानो मनुष्य जीवन में ही नरक की यातना भोग रहा है। न खाने को पाता है, न पीने को कुछ मिलता है! ऊपर से प्रतिदिन मल—मूत्र से नहाता है और औंधा लटका हुआ है! ऐसी हालत मे रानी को भी उस पर दया नहीं आती। इस हालत में कई दिन बीत गये, फिर एक, दो, चार, आठ और नौ मास व्यतीत हुए। खड्डे में डाली जाने वाली जूठन के दाने उसे कभी-कभी अलबत्ता मिल जाते थे। उन्हीं के आधार पर उसने नौ मास विताये। इस कारण वह कुछ दुबला हो गया था और फिर जोरों की वर्षा भी हुई थी। इन कारणों से वह नीचे खिसक गया और गिर पड़ा। सुबह पाखाना साफ करने के लिये भंगिन आई। उसने उसे देखा और तब उसके माता पिता को खबर दी गई। वह अपने घर ले जाया गया। बकरी का दूध पिलाने से धीरे-धीरे वह स्वस्थ होने लगा। एक-दो वर्ष में वह पहले के समान ही सुन्दर दिखलाई पड़ने लगा।

ललितांग की घोड़ी पर सवार होकर सैर करने की आदत अब भी बनी हुई थी। वह फिर घोड़ी पर बैठ कर शान-शोकत के साथ निकलने लगा। एक दिन फिर वह रानी के झरोखे के पास होकर निकला। रानी ने उसे बुलाया मगर इतनी बेहद मुसीबत भुगतने के पश्चात् क्या वह रानी के पास जाना पसंद कर सकता है ? कदापि नहीं।

सुन्दरी ! जिसके अन्त. करण में विवेक की लेश मात्र भी भावना जागृत होगी वह हर्गिज जान-बूझकर ऐसी विपत्ति मे नहीं पड़ना चाहेगा। मैं क्या ललिताग से भी गया बीता हूँ ? यह कथा ललितांग की नहीं प्राणी मात्र की है। जो भोगोपभोग में आसक्त होता है उसे पुन. पुन गर्भ में आना पड़ता है और जन्म-मरण के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। माता के गर्भ मे आने पर प्रत्येक मनुष्य की वही स्थिति होती है जो ललितांग की हुई थी। प्रत्येक को मल-मूत्र के स्थान मे नौ महीने तक औंधा लटका रहना पड़ता है। भला तुम्हीं सोचो कि कौन समझदार आदमी ऐसी स्थिति मे पड़ने को स्वेच्छा से तैयार होगा ?

ज्येष्ठश्री ! संसार में परिभ्रमण करते-करते और कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि की असंख्य पर्यायों में जन्म-मरण करते-करते अतिशय प्रबल पुण्य के उदय से मनुष्य-जन्म की प्राप्ति हुई है। मनुष्य जन्म की प्राप्ति के साथ स्वस्थ शरीर. स्वस्थ मन, सोच विचार की शक्ति और सत्पुरुषों के समागम का भी सुअवसर प्राप्त हुआ है। क्या इन सब को व्यर्थ गँवा कर भोग विलास में यह उत्तम अवसर खो देना योग्य है ?

पुरुष के लिए स्त्री विष के समान है ! बल्कि विष से भी अधिक विषम है। विष को देखने से उसका नशा नहीं चढ़ता, किन्तु स्त्री को देखने मात्र से पुरुष को मोह-नशा चढ़ जाता है। पहले तो स्त्रियाँ अपने लुभावने हावभाव प्रदर्शित करके पुरुष को अपने अधीन करती हैं और जब पुरुष पूरी तरह उनके अधीन हो जाता है तो उसे उसी प्रकार स्वेच्छानुसार नाच नचाती है जैसे मदारी बंदर को नचाता है। अतः आत्म कल्याण करने की इच्छा रखने वाले पुरुष को स्त्रियों के संसर्ग से दूर ही रहना चाहिये। शास्त्र कार कहते हैं:—

इत्थिओ जे न सेवन्ति, आइमोक्खा हु ते जणा।
जे जणा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥

—सूयगडांगसूत्र

अर्थात् जो पुरुष स्त्रियों का सेवन नहीं करते, वे सब से पहले मोक्ष को प्राप्त करते हैं। एक बार बंधन से छुटकारा पाये हुए वे लोग फिर असंयममय जीवन की कदापि इच्छा नहीं करते है।

हिन्दी के कवि ने कहा है:—

सहसानृत चपलता माया,
भय अविवेक अशुचि अदाया।
नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं,
अवगुण आठ सदा उर रहहीं ॥

ज्येष्ठश्री ! यह मत समझना कि पुरुष होने के कारण मैं स्त्री जाति की निन्दा करता हूँ और स्त्री जाति का अपमान करना चाहता हूँ। नहीं, किसी एक स्त्री का अपमान करना भी मैं अच्छा नहीं समझता तो समग्र स्त्री जाति का अपमान करना कैसे पसंद कर सकता हूँ। मगर वस्तु स्वभाव को सही रूप में ही देखना और कहना पड़ता है। और फिर पुरुषों के लिए स्त्रियाँ जिस प्रकार खतरनाक हैं, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए परुष भी खतरनाक हैं। दोनों एक दूसरे के आत्म कल्याण में बाधा पहुँचाते हैं।

प्रिये। तुम कहती हो कि मेरे दीक्षा लेने से तुम्हारा जीवन दु खमय बन जायगा और सारा सुख नष्ट हो जायगा। मगर यह धारणा एकदम भ्रमपूर्ण है और विपरीत है। तुमने सुख और दु ख के असली स्वरूप को समझा नहीं है। तुम समझती हो कि सांसारिक भोगोपभोगों में ही सुख समाया हुआ है। मगर मैं पूछता हूँ कि अगर भोगोपभोग सुख के कारण हैं तो फिर दुःख का कारण क्या है ? "यह आत्मा अनादि काल से किस कारण नाना प्रकार के दुःखों का भाजन बन रहा है ? कभी तुमने इस प्रश्न पर विचार भी किया है ?

भोगोपभोगों में सुख होता तो विवेकशील पुरुष इनका त्याग करके एकान्त वन वास के कष्टों को क्यों स्वेच्छा पूर्वक सहन करते ? वस्तुतः किसी भी पौद्गलिक पदार्थ में सुख नहीं है और न वह आत्मा को सुखी बना सकता है, क्यों कि सुख आत्मा का ही स्वाभाविक धर्म है। जब आत्मा पर पदार्थों से विमुख होकर अपनी ओर उन्मुख होता है और अपने ही सहज स्वरूप में रमण

करता है तब आत्मा का सुख गुण आविर्भूत हो जाता है। इसी लिए ज्ञानी जनों ने कहा है:—

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

उत्त अ.१३ गाथा १६

सर्व गीत एक प्रकार से विलाप मात्र है और नृत्य विडंबना मात्र है। संसार के समस्त आभरण भार रूप हैं और जितने भी काम हैं, सभी दुखों को उत्पन्न करने वाले है।

इस सचाई को समझने के लिए सम्यग्दर्शन की आवश्यकता है। इसी कारण मैं ने पहले इस बात पर जोर दिया है कि अपनी दृष्टि को निर्मल बनाओ। जब तुम्हारी दृष्टि निर्मल हो जायगी तो तुम समझ जाओगी कि "वास्तव में संसार का कोई भी पदार्थ सुखदायी नहीं हो सकता।"

प्रिये! तुम्हारी यह धारणा भी गलत है कि भोगोपभोगों को त्याग देने पर दुःख का अनुभव होता है। अगर यह धारणा सच होती तो कौन समझदार दुःखों का आलिंगन करने के लिए उद्यत होता? सच बात तो यह है कि कामभोगों मे फँसे हुए, गृहस्थी के बंधन में बँधे हुए लोगों को जिस सुख का अनुभव होता है, सब सुख संसार विरक्त तपस्वी जनों को प्राप्त होने वाले निराकुलता के सुख के समक्ष नगण्य है। गृहस्थावस्था में सैकड़ों प्रकार की चिन्ताएँ लगी रहती हैं। कभी कोई कुटुम्बी जन रुग्ण हो गया है, किसी का विवाह करना है, किसी को गहने बनवाने है, किसी

को वस्त्र देने हैं। किसी से रकम वसूल करनी हैं, किसी के खिलाफ दावा दायर करना है, किसी का ऋण चुकाना है, ऋण जैसे-तैसे चुका कर इज्जत बनाये रखना है, कोई कुटुम्बी दुराचारी हो गया है, कोई जायदाद के बँटवारे के लिए झगड़ता है, कभी व्यापार में घाटा लग गया है, आदि-आदि सहस्त्रों चिन्ताओं से गृहस्थ सदैव व्याकुल रहता है। उसे क्षण भर के लिए भी चैन नहीं मिलती। मगर संसार त्यागी को यह सब चिन्ताएँ छू भी नहीं सकती! कैसा मस्ती का जीवन है। न किसी का लेना है, न देना है। चाहे कोई मरे या जीए, साधु के चित्त पर हर्ष-विषाद का कोई चिह्न दृष्टि गोचर नहीं होता। भिक्षा में भोजन मिल गया तो ठीक और न मिला तो और भी ठीक है! इस प्रकार का निरपेक्ष और निराकुल जीवन यापन करने वाले संतों को जो अनिर्वचनीय सुख होता है, वह गृहस्थों के भाग्य में कहाँ है? शास्त्र कहता है: -

> बालाभिरामेसु दुहावहेसु,
> न तं सुहं कामगुणेसु रायं !
> विरत्तकामाणं तवोधणाणं,
> जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥

उत्त. अ १३ गा १७

अर्थात्-हे राजन्! यह कामभोग अज्ञानी जनों को ही रुचिकर प्रतीत होते हैं। ज्ञानी जन इनकी इच्छा तक नहीं करते। कामभोग भोगने का फल दुःखरूप होता है। परिणाम में घोर दुःख देने वाले कामभोगों में वह सुख नहीं है, जो कामभोगों से

विरक्त, तपोधन और भिक्षावृत्ति से शरीर-निर्वाह करने वाले एवं शीलगुण में रमण करने वाले संतों को प्राप्त होता है।

इस गाथा में तपस्वी जनों के और भोगी जनों के सुख की मीमांसा और तुलना की गई है। अगर निष्पक्षभाव से मध्यस्थ वृत्ति से विचार किया जायगा तो मालूम होगा कि त्यागी के सुख के सामने भोगी का सुख तुच्छ है। फिर भी ज्येष्ठश्री ! तुम उलटी ही बात सोचती और कहती हो।

जम्बूकुमार फिर कहते हैं—प्रिये! गंभीर भाव से विचार करो। किसी भी प्रकार के आवेश को चित्त में प्रवेश मत होने दो। आवेश के समय बुद्धि और हृदय ठिकाने नहीं रहते। अतएव जब किसी महत्वपूर्ण बात पर विचार करना हो तो शान्त चित्त होकर ही विचार करना चाहिए।

देखो ललितांगकुमार भोग-लालसा के कारण कितने कष्ट का पात्र बना। इसे नौ महीने तक पाखाने में औंधे लटके रहना पड़ा था। इसी प्रकार जो मनुष्य भोग-विलास में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें भी नौ महीने तक माता के पेट में उल्टे लटके रहना पड़ता है। उन्हे एक बार नहीं, अनेक बार इस प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है।

जैसे रानी ने ललितांग को भोगों की ओर ललचाया था; उसी प्रकार कुमति मनुष्य को भोगविलास की ओर आकर्षित करती है। जैसे राजा अचानक आ पहुँचा था, उसी प्रकार यम-राज यकायक आ कर सारा खेल बिगाड़ देता है और उसके पश्चात गर्भावास में पड़ना पड़ता है। नौ मास के बाद अगर

पुण्य का उदय होता है तो बाहर निकल आता है, अगर पाप का उदय होता है तो पेट में ही काट-काट कर निकाला जाता है।

इस प्रकार भयानक स्थिति उत्पन्न करने वाले भोग-विलासों को तुम सुखजनक मानती हो, यही आश्चर्य की बात है। ज्येष्ठ श्री! अपने नेत्र खोलो, बाहर के नहीं भीतर के नेत्रों से असली तत्त्व का विचार करो।

एक साधु आहार पानी के लिए बाजार में से निकला करते थे। बीच में वेश्या का मकान पड़ता था। वेश्या साधुजी से प्रश्न करती – मर्द या नामर्द? साधुजी उत्तर देते—नामर्द। इस तरह कई बार वेश्या ने प्रश्न किया और हर बार साधुजी ने यही उत्तर दिया।

संयोगवश एक दिन साधु बीमार हो गए। साधु जब समझ लेते हैं कि अब यह शरीर टिकने वाला नहीं है तो वे अपने जीवन की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट और अन्तिम साधना प्रारम्भ कर देते हैं। जब शरीर संयम के पालन के योग्य नहीं रह जाता, बल्कि धर्म की आराधना में विघ्न डालने लगता है, तब निर्मोह साधु अपने शरीर का भी त्याग कर देते हैं। अर्थात् उसके भोजन-पानी रूपी भाड़ा देना बन्द कर देते हैं। उस समय वे अपने जीवन और मरण में समभाव धारण करके, एकाग्र भाव से, परमात्मा में लीन हो जाते हैं, इसे जैन परम्परा में 'संथारा' लेना कहते है। उक्त साधुजी ने भी संथारा ग्रहण कर लिया।

वेश्या को साधुजी के बीमार होने की खबर लगी। वह

उनका स्थान तलाश करती हुई वहाँ पहुँची। उस समय भी उसने अपना वही प्रश्न दोहराया—मर्द या नामर्द ?

मुनि ने अब की बार अपने उत्तर में परिवर्त्तन कर दिया—मर्द, मर्द और फिर मर्द। अब तू मेरा क्या बिगाड़ सकती है।

वेश्या उस वक्त तो आपने यह उत्तर नहीं दिया था।

मुनि—उस समय तेरे मन में स्त्री के सामने मर्द होने का मान आता तो मैं नामर्द हो जाता।

वेश्या-अब क्या परिवर्त्तन आ गया है ?

मुनि—देखो बहिन ! उस समय शरीर मेरा था, पर अब मैंने शरीर का भी परित्याग कर दिया है। पुरुषत्व और स्त्रीत्व का संबंध शरीर के साथ है, आत्मा के साथ नहीं। आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न है और न मर्द है, न औरत है। इस विचार से वास्तव में मैं न मर्द हूँ, न नामर्द हूँ, न औरत हूँ। मगर मर्द शब्द बल और पराक्रम का प्रतीक है। लोक में ऐसा ही माना जाता है। इस लोक व्यवहार की अपेक्षा ही मैं अपने आपको मर्द कहता हूँ।

वेश्या—बीमारी के कारण आप निर्बल हो रहे हैं और फिर बल एवं पराक्रम के प्रतीक भी बनते जाते हैं ? कहाँ है आप में बल ?

मुनि—तुम इतना समझाने पर भी नहीं समझीं ? कह तो चुका हूँ कि मैं शरीर से भिन्न, चैतन्य-स्वरूप आत्मा हूँ। शरीर

भले निर्बल हो, मगर शरीर की निर्बलता के कारण आत्मा तो निर्बल नहीं हो जाती। बल्कि देहाध्यास को पूरी तरह त्याग देने के कारण मेरा आत्मिक बल बढ़ गया है । आज मेरी आत्मा को जगत् का कोई भी प्रलोभन गिरा नहीं सकता।

मुनि का कथन सुनकर वेश्या को प्रतिबोध हुआ । वह आत्मा की ओर झुकी। विषय-वासना के नरक से निकल कर धर्म के सुहावने और मनोरम उद्यान में विचरण करने लगी।

ज्येष्ठ श्री ! जब वेश्या जैसी पतित समझी जाने वाली स्त्री भी तत्त्व का स्वरूप समझ कर सन्मार्ग पर आ सकती है, तो क्या तुम सरीखी कुलीन, सत्संगति करने वाली और सुसंस्कारिणी से ऐसी आशा करना उचित न होगा ?

प्रिये ! अपने तुच्छ स्वार्थ को महत्त्व मत दो, वरन् अपने महान् हित की ओर देखो। जो छोटी-छोटी समस्याओं से उलझ कर महत्त्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा करता है, उसे अन्त में घोर पश्चाताप करना पड़ता है, अगर तुम मेरे कथन की वास्तविकता को समझ कर सही राह पर आ जाओगी तो विश्वास रक्खो, आनन्द ही आनन्द होगा ।

२६-६-४८]

छप गई ! क्या ?

श्री दिवाकर दिव्य ज्योति

भाग १ से २०

मूल्य प्रत्येक भाग का२ रुपया

प्राप्ति स्थान :

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाज़ार, ब्यावर (राजस्थान)

नोट—इसके अलावा धार्मिक पुस्तकें ओघे पूजनी बैठके माला पात्रे की जोडे आदि धार्मिक चीजें किफायत भावसे मिलने का एक मात्र स्थान।

व्यवस्थापक